खंड 4
भारत : छठी शताब्दी बी.सी.ई से 200 बी.सी.ई. तक

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 जनपद एवम् महाजनपद*

इकाई की रूपेरखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 प्राथमिक स्रोत : साहित्यिक एवम् पुरातात्विक

13.3 मुखियातंत्र से राज्य तक – *जनपद, महाजनपद, गणसंघ*

13.4 नगरीकरण के आधार : ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन

13.5 ''द्वितीय नगरीकरण''

13.5.1 नगरीकरण के पुरातात्विक चिन्हक

13.5.2 साहित्य में वर्णित प्रारंम्भिक ऐतिहासिक नगर

13.6 नगरीय केन्द्रों का सामाजिक स्तरीकरण

13.6.1 व्यापार एवम् व्यापारी

13.6.2 नवीन निवेशक – *गहपति* एवम् *सेठी*

13.7 समाज

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इसके बारे में जान सकेंगे :

- छठी शताब्दी बी.सी.ई. भारतीय इतिहास में एक प्रमुख मील का पत्थर क्यों थी;
- राजतंत्रीय और गैर-राजतंत्रात्मक दोनों तरह की विभिन्न प्रकार की राजनीतिक संरचनाएँ अस्तित्व में आई; तथा
- इस अवधि में उभरने वाली आर्थिक और सामाजिक जटिलता।

13.1 प्रस्तावना

लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. तक का समय उत्तरी भारत के इतिहास में ऐतिहासिक युग का प्रारंभ माना जाता है। यह भारतीय इतिहास की एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना थीं, जिसके परिणाम अत्यन्त दूरगामी सिद्ध हुऐ। भारत में राजकीय व्यवस्था का आरम्भ इस काल की सबसे बड़ी विशेषता थी। भारतीय इतिहास में पहली बार प्रदेशाश्रित राजनैतिक संस्थाओं की शुरुआत हुई, ये संस्थायें *महाजनपद* के नाम से प्रचलित हुई तथा लगभग पूरे उत्तरी भारत में इनका विस्तार हुआ। नगर एवं नगरीय जीवन का, जिसका हड़प्पा सभ्यता के पश्चात् पतन हो चुका था, एक बार पुनः गंगा घाटी से लेकर उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र तक में प्रादुर्भाव हुआ।

* प्रीती गुलाटी, इतिहास अध्ययन केन्द्र में पी.एच.डी. छात्रा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

नगरीय जीवन के साथ जुड़ी सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक जटिलतायें भी समाज में परिलक्षित हुई। इस युग में नये धार्मिक सम्प्रदायों तथा दार्शनिक विचारधाराओं का भी उदय हुआ, जिसका अध्ययन पूर्व इकाई में किया जा चुका है। ये धार्मिक समूह और विचार तत्कालीन ब्राह्मणों के अनुष्ठानों तथा धार्मिक वर्चस्व का विरोध करने के उद्देश्य से स्थापित हुऐ थे। इन आन्दोलनों में, जैसा कि हम पूर्व में अध्ययन कर चुके है – सर्वप्रथम बौद्ध और जैन धर्म थे। इस काल में नगरों का उद्भव हुआ और व्यापार का विस्तार हुआ। धातु मुद्रा के प्रयोग के साथ-साथ इस समय में धनाड्य वर्गों का उदय, श्रेणियों, विशिष्ट मृदभांड़ों, सूदखोरी, जनसंख्या वृद्धि, शिल्प और विशिष्टीकरण, तथा लेखन एवं पाठन का आरम्भ इस युग को जीवंत बनाता है। उत्तर भारत में राजनैतिक, भौतिक और सांस्कृतिक जीवन में एक साथ और अन्तः सम्बन्धित परिवर्तनों को भारतीय इतिहास में 'दूसरा शहरीकरण' कहते हैं।

इस इकाई में हम छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उपमहाद्वीप के *जनपदों, महाजनपदों, गणसंघों* आदि के राजनैतिक गठन को देखेंगे। हम यह भी देखेंगे कि ये आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन के साथ कैसे जुड़े थे, मुख्यतः कृषि और वाणिज्य विस्तार से।

अंत में हम उन विभिन्न सामाजिक वर्गों और समूहों को भी देखेंगे, जो इस काल में प्रचलित थे।

इस युग के अंत में, एक राजनैतिक व्यवस्था जैसे मगध के सर्वशक्तिशाली राज्य के रूप में उभरी, जिसका अध्ययन हम आगामी इकाई में करेंगे।

13.2 प्राथमिक स्रोत : साहित्यिक और पुरातात्विक

अब हम उन स्रोतों का अध्ययन करेंगे, जिनका प्रयोग इतिहासकारों द्वारा 600-300 बी.सी.ई. के युग को समझने व इसका पुनर्निर्माण करने में किया जाता है।

हमारे साहित्यिक स्रोत मुख्यतः तीन महत्वपूर्ण धार्मिक साहित्यों से उद्धृत किये गये हैं – जो मुख्यतः बौद्ध, ब्राह्मण, एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित हैं। आरम्भिक बौद्ध साहित्य साधारणतः धर्मवैधानिक और गैर धर्मवैधानिक साहित्य में उपलब्ध है। धर्मवैधानिक साहित्य बौद्ध धर्म अथवा सम्प्रदाय के मूल सिद्धांतों को निर्धारित करता है। यह धर्मवैधानिक साहित्य मुख्यतः *त्रिपिटक* कहलाते हैं (तीन पुस्तकों का संग्रह या पिटारा)। ये तीन हैं – *विनय पिटक, सुत्तपिटक, अभिधम्म पिटक*। *सुत्त पिटक* में बुद्ध के विभिन्न विषयों पर उपदेशों को वार्तालाप के रूप में संग्रहीत किया गया है। *विनय पिटक* में संघ के मठ-निवासियों, भिक्षु एवं भिक्षुणी के लिये अनुशासन सम्बन्धित नियमों का संग्रह है। *अभिधम्म पिटक* बाद में लिखा गया है, इसमें *सुत्त पिटक* की शिक्षाओं को शास्त्रीय ढ़ग से सूचीबद्ध आख्यानों एवं प्रश्नोंत्तर के रूप में समावेश है। बुद्ध के पूर्व जन्मों का वर्णन करने वाली *जातक* कथायें *सुत्त पिटक* का हिस्सा हैं। पाली भाषा में *त्रिपिटकों* का रचनाकाल पांचवी शताब्दी से तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. का था। *पिटक* तीन अन्य पुस्तकों में विभक्त है, जिन्हें *निकाय* कहा जाता है। बौध धर्म वैधानिक ग्रंथों को मध्य गंगा घाटी यानी आधुनिक बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के भौगोलिक संदर्भ में देखा जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक अनुष्ठान करने के तरीकों से संबंधित है। इसी तरह, दार्शनिक समस्याओं से निपटने वाले *उपनिषदों* को भी वैदिक साहित्य का एक हिस्सा माना जाता है। इन ग्रन्थों की रचना 800 बी.सी.ई. से हुयी थी। वे कई *जनपदों* और *महाजनपदों* का उल्लेख करते है और हमें कृषि समुदायों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

उदाहरणस्वरूप, 600 बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. के इतिहास की संरचना में पुरातात्विक स्रोत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विशेषरूप से उस समय में प्रचलित काले-एवं-लाल मृदभांड तथा उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड (NBPW) विशेषरूप से अपनी तकनीकी उत्कृष्टता के लिये प्रसिद्ध है। उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड प्राप्त स्थलों से हमें आहत (Punch marked) सिक्के भी मिले जो भारतीय उपमहाद्वीप में मुद्रा प्रयोग का प्रारम्भ दर्शाते हैं। हम उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांडों का विस्तृत अध्ययन इस इकाई के अन्तिम भाग में करेंगे। ग्रन्थों में उल्लिखित कई स्थलों की खुदाई की गई है जैसे कि अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, उज्जैनी, श्रावस्ती, वैशाली आदि। भौतिक साक्ष्य जो इस अवधि के लिए उपयोगी है, वे हैं घर के अवशेष, लोगों द्वारा उपयोग की जाने वाली वस्तुएं, मृदभांड, सिक्के आदि।

13.3 मुखियातंत्र से राज्य तक : *जनपद, महाजनपद, गणसंघ*

जनपद का शाब्दिक अर्थ – एक ऐसा स्थान जहाँ व्यक्तियों का समूह या जनजातियों (*जन*) के पैर या पद पड़े हों। इस प्रकार *जनपद* इस प्रकार के व्यक्तियों का समूह हैं जो सुनिश्चित क्षेत्रों में निवास करते हों और जिनके ऊपर राजनैतिक वर्ग द्वारा प्रशासन होता हो।

मुखियातंत्र से *जनपद* का स्थानान्तरण दो चरणों में हुआ – सर्वप्रथम यज्ञ और बलि द्वारा जिसमें पुजारी वर्ग ने राजा को दैवीय स्थान दिया। दूसरे चरण में, *जनपदों* और *महाजनपदों* के रूप में राज्यों का उदय हुआ। *महाजनपदों* के शासक *जनपदों* के शासकों से अधिक शक्तिशाली थे।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. के आस-पास इस प्रकार के अनेक नगरों एवं राज्यों का उद्भव देखने को मिलता है। ये नगर और राज्य उत्तर पश्चिम में गंधार से पूर्वी भारत में अंग तथा मध्य भारत और दक्षिण तक फैले हुऐ थे। बौद्ध धर्म की पाली पुस्तकों जैसे *अंगुत्तरनिकाय* में 16 बड़े-बड़े राज्यों का उल्लेख है, जो सोलह *महाजनपद* कहलाये। इनका विवरण निम्नलिखित है –

मध्य गंगा घाटी

1) **अंग** – पूर्वी बिहार के वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले को अंग राज्य के रूप पहचाना गया है। यह गंगा नदी एवं चंपा नदी के संगम पर स्थित था तथा इसकी राजधानी चंपा की पहचान भागलपुर के निकट स्थित आधुनिक चंपापुर या चंपानगर के रूप में की गयी है। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में यह एक महत्वपूर्ण नगर के रूप में विकसित हुआ, तथा यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था जो कि व्यापारिक मार्ग पर स्थित था। चम्पा में उत्खनन से शहर के चारों ओर खंदक (खाई) सहित रक्षात्मक किलेबन्दी (दुर्ग) का पता चलता है। यात्रियों के विवरणों से अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि व्यापारी चंपा से स्वर्णभूमि की यात्रा करते थे (संभवतः दक्षिण-पूर्व एशिया के संदर्भ में)

2) **मगध** – चौथी शताब्दी बी.सी.ई. तक मगध सबसे शक्तिशाली राज्य बन गया था। मगध जनपद में बिहार के आधुनिक पटना और गया जिले आते हैं। यह उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व में क्रमशः गंगा, सोन, तथा चंपा नदियों से तथा दक्षिण में विंध्य पर्वतमाला से घिरा था। इसकी प्रथम राजधानी गिरिव्रज या राजगृह (आधुनिक राजगीर थी)। इस नगर का महावीर और बुद्ध दोनों के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध था। हालाँकि बाद में इसकी राजधानी पाटलीपुत्र स्थानान्तरित हो गयी थी, जो कि आधुनिक पटना से सम्बन्धित है। राजगृह में उत्खनन से कई रक्षा संरचनाओं के निर्माण का पता चलता

है, जैसे कि पत्थर की किलेबन्द दीवारें, जो छठी शताब्दी बी.सी.ई. में बिम्बसार और अजातशत्रु के समय की है।

3) **वज्जि/वृज्जि संघ** – वज्जि गणराज्य पूर्वी भारत में गंगा नदी के दक्षिण भाग में स्थित था, इसकी राजधानी वैशाली थी। यह बिहार के मुजफ्फरपुर के बैसाध क्षेत्र में स्थित था। वज्जी गणराज्य की गिनती बुद्ध कालीन अति प्रसिद्ध *महाजनपदों* में होती है। मगध के राजा बिम्बसार ने भी वज्जि गणसंघ से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। अधिकतर इतिहासकार वज्जी राज्य को आठ या नौ गणों का महासंघ मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के गणराज्यों में सभी गणों का स्थान एक समान था तथा संघ में प्रत्येक का अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। अधिकतर बौद्ध व जैन साहित्यों में गणसंघों, विशेषकर वज्जियों को क्षत्रियों के रूप में वर्णित किया है, परन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं होता है कि वे एक वर्ण व्यवस्था वाले समाज का अनुपालन करते थे। इन्होंने राज्यों से भी अधिक अपनी गण परम्पराओं को बरकरार रखा था। उन्होंने गण प्रतिनिधियों द्वारा गठित सभाओं (यद्यपि से सभायें गणों के मुखिया एवं परिवारों तक सीमित थी) से प्रशासन को चलाया।

4) **मल्ल** – मल्ल नौ गणों का संघ था जो वज्जि राज्य के पश्चिम में स्थित था। मल्लों के राज्य में कुशीनारा और राजधानी पावा दो राजनैतिक केन्द्र थे। कुशीनारा की पहचान कसिया प्रदेश से की गयी, जो गोरखपुर से 77 किमी. पूर्व में स्थित है। 'पावा' के विषय में इतिहासकारों में मतभेद हैं। इतिहासकार इसे आधुनिक बिहार के पावापुरी में मानते हैं, जबकि अन्य इतिहासकारों का मत है कि ये कसिया से 26 किमी. दूर उत्तर-पूर्व में स्थित है। मल्ल वज्जियों के घनिष्ट मित्र थे, परन्तु कभी-कभी दोनों के बीच संघर्ष के उदाहरण भी मिलते हैं।

उनके पश्चिम में

5) **काशी** – सबसे पहले राजनैतिक प्रभुसत्ता प्राप्त करने वाले *महाजनपदों* में काशी राज्य प्रमुख था। यह उत्तर में वरूण नदी तथा दक्षिण में असि नदी से घिरा था। इसकी राजधानी गंगा किनारे बसे वाराणसी का नाम इन दो नदियों के नाम पर पड़ा। *जातक* कथाओं से हमें काशी और कौशल राज्यों की लम्बी प्रतिद्वन्दिता के विषय में जानकारी मिलती है। अन्ततः कोसल के साथ प्रेसनजित (पाली में पसेनदी) के शासन काल में काशी को कोशल राज्य में मिला लिया गया। वर्तमान में काशी उत्तर-प्रदेश के बनारस से जुड़ा है।

6) **कोसल** – शक्तिशाली कोसल *जनपद* राज्य पूर्व में सदानीर (वर्तमान गंडक), पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिक या स्यान्दिक तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियों से घिरा था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी, जिसकी पहचान उत्तर-प्रदेश के सहेत-महेत नामक दो गाँवों से की जाती है, तथा दक्षिण कोसल की राजधानी कुशावती थी। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार बौद्ध अनुयायी अनथपिंडक ने बौद्ध संघ को 'जेतावन' उपहार के रूप में दिया था। इस राज्य में साकेत और अयोध्या अन्य दो महत्वपूर्ण राजनीतिक केन्द्र थे। प्रसेनजित, (जिसे पसेनदी भी कहा जाता है), बुद्ध के समकालीन थे, वह कोशल का अत्यन्त प्रसिद्ध शासक था। कोसल राज्य को वर्तमान उत्तर-प्रदेश के लखनऊ, गोंडा, फैजाबाद तथा बहराइच स्थानों के रूप में पहचाना गया है।

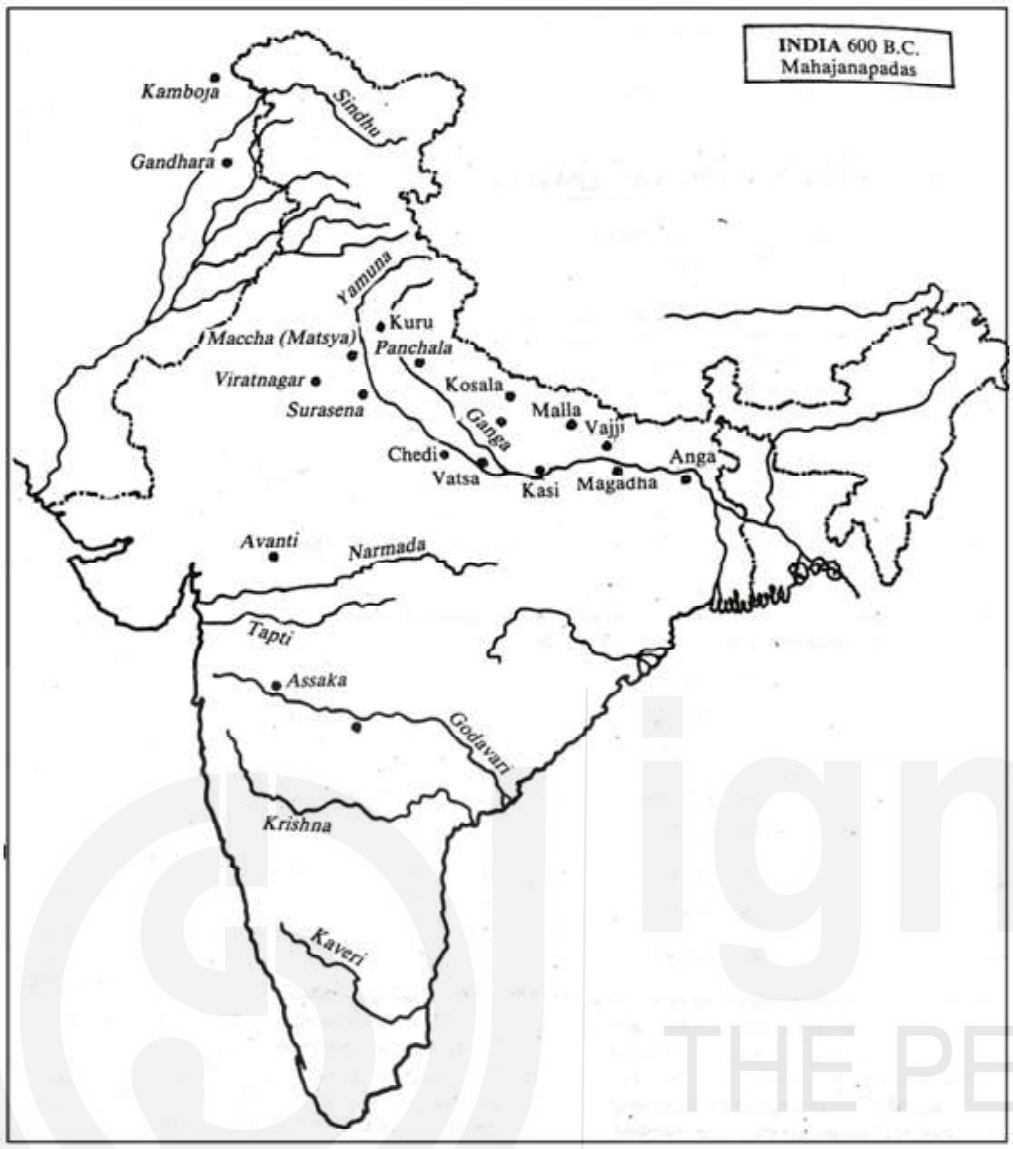

मनचित्र 13.1: महाजनपद. स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4.

7) **वत्स** – वत्स या वंश राज्य सूती कपड़ों के लिये प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी वर्तमान इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी में स्थित थी। व्यापारिक मार्ग पर बसा कौसाम्बी दक्कन, गंगाघाटी तथा उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों को जोड़ता था। जैसा कि उत्खनन से पता चलता है, छठी शताब्दी बी.सी.ई. में राजधानी कौशाम्बी की भव्य किलेबन्दी की गयी थी। वत्स के प्रसिद्ध शासक उदयन के नेतृत्व में शक्तिशाली *महाजनपद* था। इसी समयावधि में अवन्ति में राजा प्रद्योत शासन कर रहा था। हमे इन दोनों राज्यों के मध्य प्रतिद्वन्दिता के अनेकों उदाहरण अनुश्रुतियों में मिलते हैं। विशेषरूप से बाद में लिखे गये लगभग तीन संस्कृत नाटक *स्वप्नवासवदत्ता,* हर्ष द्वारा रचित *रत्नावली* एवं *प्रियदर्शिका* में राजा उदयन को अधिवक्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उसके और आगे पश्चिम

8) **कुरू** – कुरू वर्तमान के गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र में बसे हुए थे। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार कुरू राज्य का शासन युधिथिला गोत्ता (गोत्र) के शासकों ने किया जो कि युधिष्ठिर के परिवार से सम्बन्धित थे। इनकी राजधानी इंद्रपत्त (इन्द्रप्रस्थ) थी। महाकाव्य में कुरू की राजधानी हस्तिनापुर में थी, जिसे बाढ़ आने पर राजधानी कौशाम्बी में बदलनी पड़ी। जैन साहित्य *उत्तराध्ययन सूत्र* में कुरू राज्य का शासक

इसुकारा बताया गया है, जिसने इसुकारा नामक नगर से अपना शासन किया। ऐसा माना जाता है कि बुद्ध के समय तक कुरू राज्य में राजतन्त्र शासन व्यवस्था थी जो कि बाद में एक गणसंघ में बदल गई। यह भी ज्ञात है कि इन्होंने यादवों, भोज एवं पांचालों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे।

9) **पांचाल** – पांचाल *महाजनपद* में वर्तमान रूहेलखण्ड शामिल था, और यह गंगा नदी द्वारा दो भागों में बंटा था। इस राज्य की भी दो राजधानियाँ थी – उत्तरी पांचाल क्षेत्र की राजधानी अहिच्छत्र (वर्तमान उत्तर-प्रदेश के बरेली का रामपुर क्षेत्र) थी, तथा दक्षिण पांचाल की काम्पिल्य थी (उत्तर प्रदेश के फारूखाबाद जिले के कांपिल क्षेत्र)। *अर्थशास्त्र* में पांचाल को आरम्भ में राजतन्त्रीय प्रणाली बताया है जो बाद में गैर-राजतन्त्र में परिवर्तित हुई। इस *महाजनपद* में प्रसिद्ध (महत्वपूर्ण) नगरीय केन्द्र भी थे जैसे – कान्यकुब्ज या कनौज।

चित्र 13.1: अहिच्छत्र के अवशेष. श्रेय : सूनीत 87. स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ahichchhatra_Fort_Temple_Bareilly.jpg

10) **मत्स्य** – मत्स्य वर्तमान राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, अलवर और भरतपुर में स्थित था। इनकी राजधानी विराट नगर (वर्तमान वैराट) का नाम मत्स्य राज्य के संस्थापक राजा विराट के नाम पर पड़ा। बौद्ध साहित्य में इनका सम्बन्ध सूरसेन से बताया गया है।

11) **सूरसेन** – सूरसेन की राजधानी मथुरा में स्थित थी और वे भी यमुना के दोआब क्षेत्र में स्थित थे। बौद्ध स्रोतों के अनुसार सूरसेन का एक शासक अवन्तीपुत्र बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके अपने नाम का अर्थ (अवन्ति का पुत्र) सूरसेन और अवन्ति के मध्य वैवाहिक सम्बन्धों का संकेत देते हैं। अन्य अनेकों राजनीतिक केन्द्रों की तरह मथुरा भी मार्गों के संगम (Junction) पर स्थित था, जो महत्वपूर्ण उत्तरी मार्गों को दक्षिण से तथा पश्चिमी तट से जोड़ता था।

उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों की ओर

12) **गांधार** – पाकिस्तान के आधुनिक पेशावर और रावलपिंडी जिलों ने गांधार राज्य का गठन किया। इसकी राजधानी तक्षशिला या तक्षिला व्यापार और शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र थी। उत्खन्न से प्राप्त यहाँ तीन महत्वपूर्ण पुरातात्विक बसावट का पता चलता है – भीर टीला, सिरकप, और सिरसुख। भीर टीला प्राचीनतम् शहरों में से एक था, इसकी सर्वप्राचीन सतह से चाँदी के आहत सिक्के तथा अन्य सिक्के प्राप्त हुऐ हैं। लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में गांधार राज्य में शासक पुक्कुसती या पुष्करासरीन शासन कर रहा था जिसने अवन्ति के विरूद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त की। उसके मगध से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

13) **कम्बोज** – (पाकिस्तान के हज़रा जिले में) कम्बोज प्रदेश, गांधार से घनिष्ट रूप से जुड़ा था। कम्बोज पाकिस्तान के हज़रा जिले के वर्तमान राजौरी क्षेत्र का हिस्सा था। लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक कम्बोज एक राजतन्त्रीय राज्य था, परन्तु बाद के साहित्य जैसे – *अर्थशास्त्र* में उन्हें *गणसंघ* कहा गया है।

मध्य एवं दक्षिण क्षेत्र

14) **अवन्ति** – अवन्ति *महाजनपद* मध्य भारत के मालवा क्षेत्र में स्थित था। अवन्ति की दो राजधानियाँ थी, एक उज्जैयनी (मध्य प्रदेश का वर्तमान उज्जैन के पास) और दूसरी महिश्मति (मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित वर्तमान मन्धाता)। ये दोनों नगर महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे जो ऐसे व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे, जो उत्तरी भारत को दक्षिण तथा पश्चिमी तटों के बन्दरगाहों से जोड़ते थे। अवन्ति का सर्वप्रसिद्ध शासक प्रद्योत था, जिनका सैन्य संघर्ष वत्स, मगध और कोसल राज्यों से हुआ।

15) **चेदि** – (राजधानी सुक्तिमती – मध्य प्रदेश के वर्तमान जबलपुर क्षेत्र में स्थित) चेदि राज्य मध्य भारत में बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग में स्थित था, विद्वान इसकी राजधानी सोथीवतीनगर को *महाभारत* के शुक्तिमती या शुक्तिसहवाय से जोड़ते हैं। सम्भवतः नर्मदा घाटी में स्थित जबलपुर के निकट का प्राचीन नगर त्रिपुरी और सागर के निकट स्थित एराकिना (एरण) चेदि राज्य का हिस्सा थे।

16) **अस्सक या अस्मक** – (महाराष्ट्र के गोदावरी घाटी में नन्देर के निकट राजधानी गोवर्धन) अस्सक राज्य का विवरण अनेकों स्रोतों में मिलता है, जैसे – पाणिनीकृत *अष्टाध्यायी, मारकण्डेय पुराण, बृहतसंहिता* आदि। बौद्ध साहित्य इन्हें महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के निकट बताते हैं। इसकी राजधानी पोतना/पोदना थी जो कि वर्तमान बोधान है। *जातक* कथाओं से यह ज्ञात होता है कि एक समय में अस्सक काशी के अधिकार में था और उसने पूर्वी भारत में कलिंग पर सैन्य विजय प्राप्त की।

यह एक अत्यन्त रोचक विषय है कि सोलह *महाजनपदों* का उल्लेख कुछ विविधताओं से विभिन्न स्रोतों में उपलब्ध है। उदाहरणार्थ – *महावस्तु* में गांधार और कम्बोज के स्थान पर पंजाब के शिबि और मध्य भारत के दशर्न को बताया गया है। इसी प्रकार *भगवती सूत्र* में दी गयी *महाजनपदों* की सूची निम्न है – अंग, बंग (वंग), कोच्छ, मगाह (मगध), मलय, मालवा, अच्छ, वच्छ (वत्स), लढ़, पढ़ (पाण्ड्य या पौन्द्र), बज्जि (वज्जि), मोलि (मल्ल), कासी (काशी), कोसल, अवाह और सम्भुत्तर (सिंह, 2008 : 261)।

मोटे तौर पर ये राज्य संरचना में दो भागों में विभक्त हो सकते हैं : राज्यतन्त्रीय राज्य एवं गैर राजतन्त्रीय राज्य जिन्हें *गणसंघ* कहा गया है। राजतन्त्रीय *महाजनपद* अधिकतर उपजाऊ गंगा के मैदानों में स्थित थे, जबकि *गणसंघ* हिमालय की तलहटी या उत्तर पश्चिमी भारत, पंजाब या सिन्ध या मध्य या पश्चिमी भारत, की परिधि में स्थित थे। उनकी अवस्थिति से प्रतीत होता है कि *गणसंघ* राज्य *महाजनपदों* से पहले के हैं, क्योंकि निचली पहाड़ियों में रहने के लिये उन्हें साफ करना आसान होगा अपेक्षाकृत मैदानी क्षेत्रों के दलदली जंगली के। यह भी हो सकता है कि उदारवादी सोच के व्यक्ति उस समय की रूढ़िवादी सोच और जटिल जाति व्यवस्था से असंतुष्ट होकर जमीन की समतल क्षेत्र से पहाड़ियों की तरफ़ एक समरस समाज की स्थापना हेतु स्थानान्तरित हुए। वास्तव में उस समय के दो विधर्मिक सम्प्रदायों के शिक्षक इन्हीं गणसंघों से थे जैसे जैन धर्म के महावीर, वज्जि के जन्त्रिक सम्प्रदाय से थे जबकि बुद्ध शाक्य वंश में जन्मे थे।

गणसंघों का विवरण इतिहासकार गणतंत्रों अथवा कुलीनतन्त्रों के रूप में करते हैं। गणसंघात्मक ढांचे में राजतन्त्र व्यवस्था के विपरीत सत्ता विसरित थी अर्थात व्यक्तियों के समूह द्वारा सामूहिक रूप से प्रशासन व्यवस्था क्रियान्वित होती थी। *गण* उस समय के क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित होते थे और उनके सदस्य या तो उस से मूल रूप से जुड़े होते थे अथवा उनसे नातेदारी सम्बन्ध का दावा करके जुड़ जाते थे। इस प्रकार की व्यवस्था में सामाजिक स्तरीकरण बहुत कम देखने को मिलता है। *गणसंघ* में केवल दो सामाजिक स्तर थे – *क्षत्रिय राजकुल*, जिनमें शासन करने वाले परिवार सम्मिलित थे, तथा दास कर्मकार जैसे – श्रमिक एवं दास। भूमि का आधिपत्य सामूहिक रूप से *गण* का होता था जिस पर श्रमिक और दास-*दास कर्मकार*-कार्य करते थे। यहाँ यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि ये नातेदारी के संबंधो से जुड़े रहते थे, जबकि श्रमिक और कर्मकार गैर-नातेदारी श्रम था। प्रशासनिक क्षेत्र में राजा वंशानुगत नहीं थे, अपितु वे मुखिया के रूप में होते थे, जिन्हें *गणपति*, *गणराज* या *संघमुखिया* के नाम से जाना जाता था।

हालांकि अधिकतर *महाजनपद* राजतन्त्रीय थे, परन्तु *गणसंघ* के विपरीत इन राज्यों का शासन प्रभुसत्ता प्राप्त राजा द्वारा होता था जो सत्ता के एक परिवार में संकेद्रित होने से अन्ततः एक वंश बन गये थे। शासन वंशानुगत हो गये, जिनका आधार सदैव नहीं परन्तु अधिकतर ज्येष्ठा के सिद्धांत पर आधारित था। इसके अतिरिक्त शक्तिशाली राजतन्त्रों के पास एक शक्तिशाली सेना होती थी, इस सेना की नियुक्ति एवं निर्वाह राज्य द्वारा किया जाता था, इस प्रकार के इन राज्यों एवं आद्य राज्यों के उद्भव की प्रक्रिया नगरीकरण की प्रक्रिया से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित थी। इस प्रक्रिया की स्थापना को वास्तव में उस समय के जीवन निर्वाह में हुऐ परिवर्तन के परिवेश में देख सकते हैं। छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक आते-आते समाज व्यवस्थित कृषि से परिचित हो गया था। परन्तु इसके पश्चात् क्या परिवर्तन हुऐ?

13.4 नगरीकरण के आधार : ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन

जनपद ग्रामीण क्षेत्र को भी लक्षित करता है जो कि *पुर* या नगरों जैसे शहरी केन्द्रों से भिन्न थे। यह क्षेत्र संसाधन समृद्ध था, विशेषकर कृषि संवर्धित संसाधनों से। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि अधिकतर *महाजनपदों* का विकास उपजाऊ गंगा के मैदानी क्षेत्रों में हुआ था। राज्यों का उदय केवल कृषि संसाधनों पर नहीं बल्कि कृषि अधिशेष पर भी निर्भर था। इस अधिशेष का प्रबन्ध एवं पुनर्वितरण सत्ता और शक्ति का आधार बना।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. तक भारतीय ऊपरी गंगा घाटी और गंगा-यमुना दोआब, में कृषि आधारित समाज स्थापित हो चुका था। भारी वर्षा तथा उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी ने क्षेत्र को धान की उपज के लिये उपयुक्त बनाया। पाणिनी की व्याकरण की पुस्तक से भी हमें उस समय की कृषि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ – व्याकरण में इस बात का उल्लेख है कि अच्छी तरह से जोती गई भूमि को *सुहाली* कहा जाता था। *वृहया* भूमि धान (वृद्धि) के लिये प्रयुक्त थी, *यव्य*, गेहूँ (*यव*) तथा *तिल्या* (तिल) के लिये उपयुक्त भूमि थी। सभी स्रोतों में धान की उपज को प्राथमिकता दी गयी है और सर्वश्रेष्ठ धान को '*साली*' कहा गया है। उपजाऊ भूमि की उपलब्धता के साथ-साथ तकनीकी विकास अधिकतम उपज के लिये उत्तरदायी था।

फसल उत्पादन में बढ़ोतरी के महत्वपूर्ण परिणाम हुए। प्रथम, उत्पादन में बढ़त से *महाजनपद* के शासकों को कृषि करों में बढ़ोतरी से लाभ हुआ। बढ़े हुए करों से प्राप्त धनराशि का प्रशासनिक एवं सैनिक शक्ति पर व्यय किया गया। इस प्रकार से यह राज्य

व्यवस्था की नींव का आधार बना। द्वितीय, अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि धान (चावल) प्रयोग करने वाले समाज की प्रजनन दर अधिक होती है। गंगा घाटी के उपजाऊ क्षेत्र में धान की अधिक उपज का प्रभाव जनसंख्या वृद्धि पर पड़ा होगा। नगरीय केन्द्रों में अधिक निवासी थे और जनसंख्या का घनत्व अधिक था। तृतीय, इन नगरवासियों को जीवनयापन के लिये कृषि अधिशेष की आवश्यकता थी क्योंकि ये स्वयं कृषि नहीं करते थे। जैसा कि हम अगले भाग में विमर्श करेंगे कि नगरों में अनेक गैर कृषि व्यवसायी निवास करते थे, जैसे – चिकित्सक, लिपिक, मनोरंजनकर्ता, शिल्पकार, कारीगर इत्यादि। अगले भाग में हम व्यवसायिक विभिन्नताओं पर विचार करेंगे।

13.5 'द्वितीय नगरीकरण'

भारतीय इतिहास में 600 बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. का लगभग तीन शताब्दियों का काल 'द्वितीय नगरीकरण' कहा जाता है। हड़प्पा के नगरीकरण के लगभग एक सहस्राब्दि पश्चात् छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तर भारत में नगर एवम् नगरीय जीवन के उदाहरण प्राप्त होते हैं। द्वितीय चरण में नगरीकरण के संदर्भ में भौगोलिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। नगरीकरण का केन्द्र सिन्धु घाटी (प्रथम चरण) से अब गंगा घाटी (द्वितीय चरण) की तरफ़ खिसक गया। दक्षिण भारत में यही प्रक्रिया कुछ समय उपरान्त हुई। अनेक विद्वान तमिलनाडु में नगरीकरण और ऐतिहासिक चरण के आरम्भ का समय लगभग 400 बी.सी.ई. निश्चित करते हैं। नगरों और शहरों का उद्भव एक समान नहीं था। कुछ नगर जैसे – हस्तिनापुर, मगध में राजगृह, कोसल में श्रावस्ती तथा वत्स में कोशाम्बी का उदय राजनैतिक एवं प्रशासनिक केन्द्रों के रूप में या सत्ता के केन्द्र के रूप में हुआ। अन्य नगर व्यापार के केन्द्रिय स्थल और पड़ोसी क्षेत्रों के लिये विनिमय का केन्द्र भी थे। इन केन्द्रों पर विनिमय की वस्तुएं नमक एवं अनाज के अतिरिक्त ज्यादातर लौकिक थी। उज्जैन जैसे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी हुए जिनमें कीमती एवं महत्वपूर्ण वस्तुयें विनिमय की जाती थी। कुछ शहरी केन्द्रों का उद्भव धार्मिक स्थलों के रूप में हुआ। जैसे – 'वैशाली', जहाँ व्यक्ति धार्मिक अनुष्ठानिक उद्देश्यों के लिये आते थे। इन नगरीय केन्द्रों की विशेषता थी कि इनमें लोगों का संकेदूण अधिक था और यहाँ पर उत्पाद एवं रोजगार के अवसर अधिक थे।

साहित्यिक स्रोतों में यह भी विवरण मिलता है कि नगर अकसर गांव के ऐसे समूहों से मिलकर बने जहाँ लोहारगिरी, मृदभांड निर्माण, बढ़ईगिरी, कपड़े-बुनाई, टोकरी-बुनाई इत्यादि व्यवसायों का विशेषीकरण था। जहाँ या तो कच्चा माल (जैसे – कुम्हार के लिए मिट्टी या बढ़ई के लिये लकड़ी) नजदीक में उपलब्ध हो या उन्हें उत्पाद बेचने के लिये बाज़ार भी मिलता हो। उन स्थानों पर शिल्पकार कारीगर एकत्रित होते हैं। उनके एक स्थान में संकेन्द्रित होने से नगरों की नींव पड़ी तथा इस प्रकार के एक स्थान पर समूह के रहने से उत्पादन एवं वितरण में सहायता मिली और ये नगर वाणिज्यिक केन्द्रों के रूप में स्थापित हुऐ। वैशाली, श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, कौशाम्बी और काशी (मानचित्र 13.2) इस प्रकार के वाणिज्यिक केन्द्रों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं जिनका गंगा घाटी के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसी प्रकार उज्जैन, तक्षशिला, एवं भड़ौच के बन्दरगाह जैसे शहरों ने गंगा के मैदानी क्षेत्रों से भी आगे के बाजारों के भौगोलिक दरवाजे खोल दिये।

इस प्रकार हम यह देखते है कि विभिन्न आयामों और समरूपता वाले शहर उभर कर सामने आये। इनमें से कुछ राजनैतिक सत्ता के केन्द्र बने, अन्य केन्द्र शिल्प उत्पादन एवं विर्निमाण के केन्द्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य व्यापार के महत्वपूर्ण केन्द्र और कुछ इन तीनों कार्यों का सम्मिश्रण करते थे।

13.5.1 नगरीकरण के पुरातात्विक चिन्हक

पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात होता है कि समस्त नगरों का सुंसगत और असाधारण रूप से लगभग एक समान अभिन्यास या खाका होता था। अक्सर ये नगर एक खाई या प्राचीर से घिरे होते थे और कभी-कभी इनकी किलेबन्दी भी होती थी। किले की दीवारों में या तो मिट्टी भरी होती थी जैसा कि राजघाट में देखा जा सकता है या बाद में ईंटों द्वारा बनाया जाता था, जैसे कि कौशाम्बी में। जो नगर नदियों के किनारे बसे थे, किले की दीवारें एक ओर उन्हें बाढ़ से बचाती थी और दूसरी ओर हिसंक जानवरों एवं लूटमार से रक्षा करती थी।

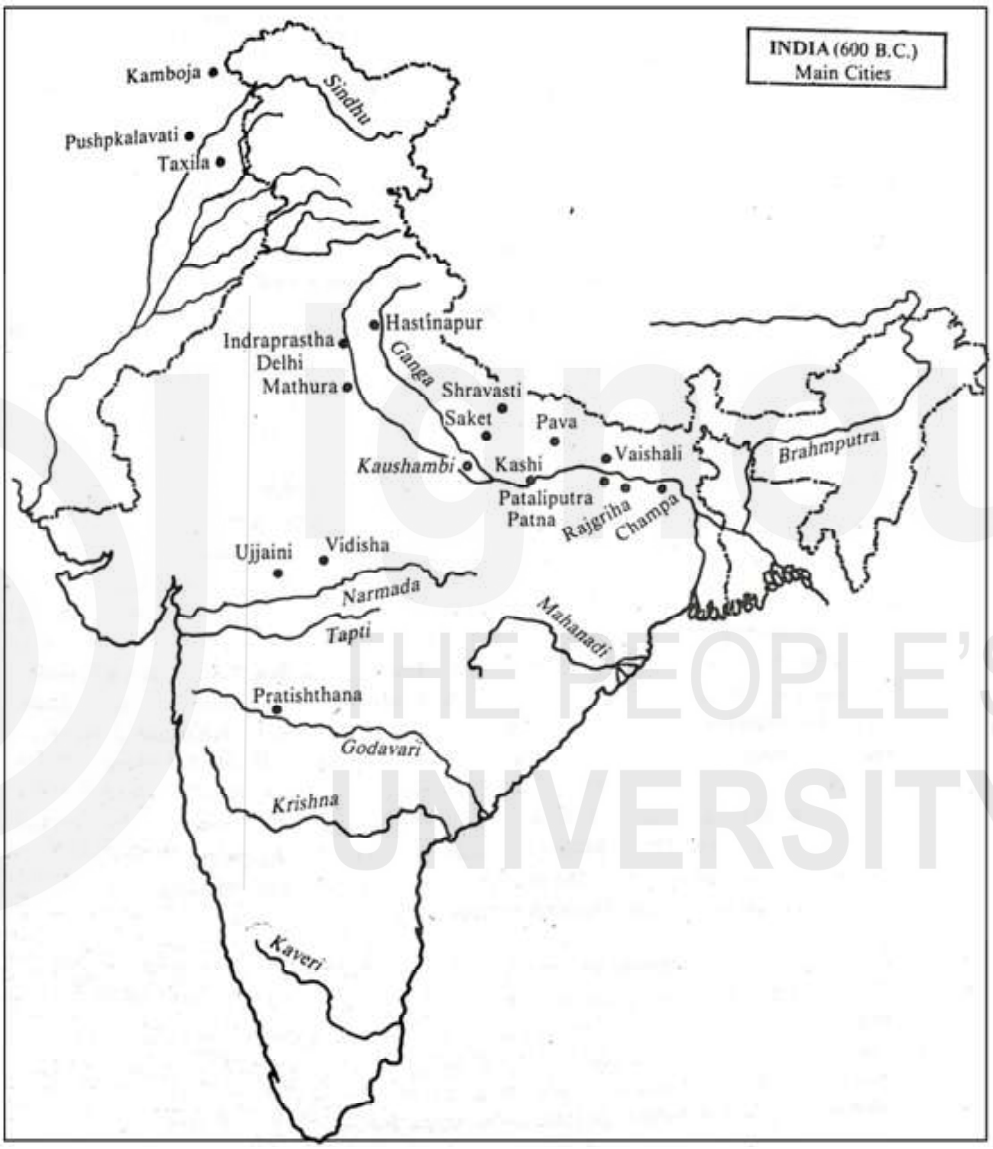

मानचित्र 13.2 : छठी शताब्दी बी.सी.ई. के प्रमुख नगर। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-4

नगरों को सैनिक संरक्षण की आवश्यकता क्यों थी?

प्रशासनिक केन्द्र होने के अतिरिक्त, इन्हीं केन्द्रों के कोषागार में आसपास के क्षेत्रों से एकत्र किये गये राजस्व जमा किये जाते थे। जिसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों पर आक्रमण का डर रहता था, इसलिये इस प्रकार की रक्षात्मक किलों की दीवारों का निर्माण हुआ। इस प्रकार किलेबन्दी ने भौतिक सीमाओं के रूप में काम किया, जो गांव से शहरों को स्पष्ट रूप से सीमांकित करती थी।

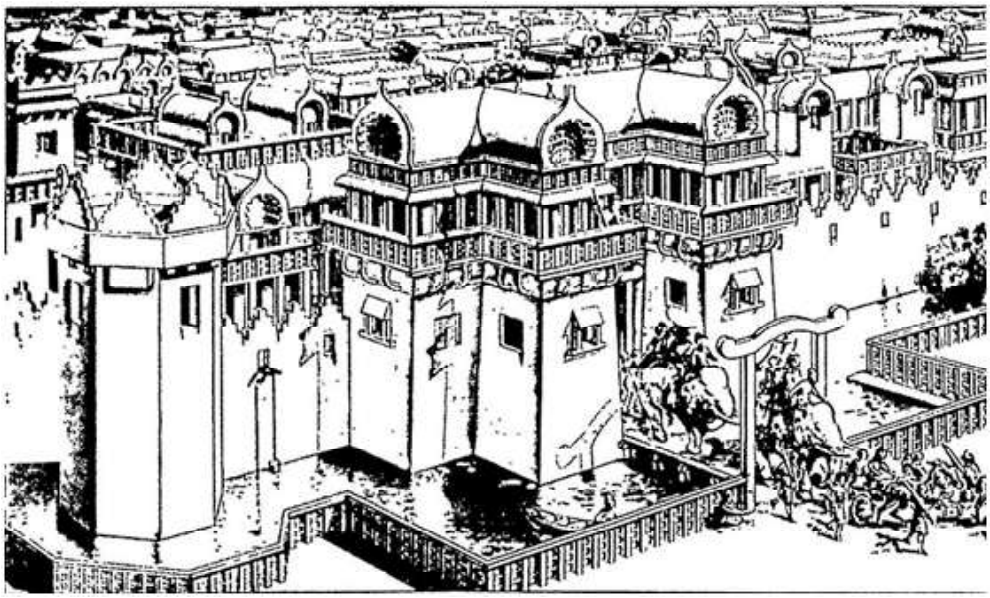

चित्र 13.2: लगभग 500 बी.सी.ई. में कुशीनगर के मुख्य द्वार का अनुमानित पुनर्निर्माण। सांची के महान स्तूप के दक्षिणी प्रवेश द्वार पर उभारी नक्काशी से अनुकूलित। स्रोत : पर्सी ब्राउन, विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Conjectural_reconstruction_of_the_main_gate_of_ Kusinagara_circa_500_BCE_ adapted_from_a_relief_at_ Sanchi.jpg)

इसके अतिरिक्त उत्खननों ने नगरीकरण के विशिष्ट लक्षणों को भी उजागर किया है। इनमें इस प्रकार की सुविधायें शामिल थी जैसे भट्टे में पकी इंटें, जल निकासी व्यवस्था, छल्लेदार कुएं, शोष-गर्त (soak pit) जो हड़प्पा कालीन संरचनाओं से भिन्न थे। घरों का निर्माण भी पूर्व काल के घरों से बेहतर था। उदाहरण के लिये भीर के टीले में एक प्रांगण के चारों ओर घरों का निर्माण किया गया था। विद्वानों का मत है कि घरों में जो कमरे सड़क की ओर खुलते थे वे दुकाने रही होगीं (थापर : 2002 : 141)। सड़कें भी समतल थी, जिससे प्रतीत होता है कि पहियेदार यातायात का प्रयोग होता था।

नगरीकरण के साक्ष्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य उत्तरी काले पालिश वाले मृदभांड (NBPW) थे। आरम्भिक ऐतिहासिक नगरों के पुरातात्विक उत्खनन अधिकाशतः यह दर्शाते है कि NBPW चरण नगरीकरण का सहमियादी था। उदाहरण स्वरूप दिल्ली में पुराने किले की खुदाई से NBPW चरण का तिथिक्रम तीसरी और चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में निर्धारित किया गया है। इसी सतह से कुछ अन्य कलाकृतियां उपलब्ध हुई हैं जैसे पक्की मिट्टी (Terra-cotta) के बने हुऐ मनुष्य एवं जानवरों की लघुमूर्तियां, मिट्टी की मुहरें, पत्थर की बनी मूर्तियों के टुकड़े, पक्की मिट्टी के बने घोड़े और घुड़सवार आदि। इसी प्रकार हस्तिनापुर में उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदंभाड चरण, जिसे 'पीरियड तृतीय' के नाम से जाना जाता है, उस चरण में सुनियोजित योजना के तत्व, पक्की ईटों की संरचनाएं तथा टेराकोटा के छल्लेदार कुएँ दिखते हैं। इस प्रकार इन खुदाई स्थलों से उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड की सतह नगरीय विशेषताओं से सम्बन्धित हैं।

13.5.2 साहित्य में वर्णित प्रारंभिक ऐतिहासिक नगर

साहित्यकारों ने नगरों की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं को और सुदृढ़ करते हुऐ *पुर* (नगर) एवं *जनपद* (गांव) में स्पष्ट भेद प्रदर्शित किया है। यह भेद अनेकों तरीके से देखा गया है – नगर और इसके लोकाचार ने जीवन में स्थापित मानदंडों और प्रतीकों पर संदेह करने के लिए प्रोत्साहित किया, विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को अलग-अलग स्थानों में न रह कर एक साथ सामीप्य स्थानों पर रहने के लिये प्रोत्साहित किया। सम्भवतः इसी

विविधता के परिणामस्वरूप अधिकांश साहित्यिक स्रोत अत्यधिक सतर्क है और कभी-कभी उनके दृष्टिकोण नगर के प्रति तिरस्कार पूर्ण हैं। उदाहरणार्थ *अपस्तम्ब धर्मसूत्र* में नगरों में वेदों के अध्ययन को मना किया गया है। इसमें यह भी निर्देशित किया गया है कि स्नातकों (व्यक्ति जिसने ब्रह्मचारी के रूप में अपना अध्ययन पूर्ण किया हो) को नियमित रूप से नगरों में नहीं जाना चाहिए।

दूसरी ओर हम देखते है कि बुद्ध और उनके बिरादरी के भिक्षु, यहाँ तक कि आम अनुयायी भी नगरों के तौर तरीकों से भली-भाँति परिचित थे। बौद्ध धर्म के स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि नगर और ग्राम साधारणतः विरोधाभासी नहीं थे। अपितु मानव निवास अधिकाशतः सतत था, जिनका *ग्राम, निगम* और *नगरों* में पदानुक्रमित वर्गीकरण किया गया था। यहाँ ग्राम का अभिप्राय गाँव या ग्रामीण इलाकों से था जबकि *निगम* बाजार वाले कस्बे थे जो कि व्यापारिक गतिविधियों से सम्बन्धित थे तथा *नगर,* शहर को कहा जाता था।

नगरों में भी वर्गीकृत पदानुक्रम था। उदाहरणार्थ – *'पुर'* का अभिप्राय उन नगरों से था जिनके चारों ओर किलेबन्दी थी। प्रत्येक राज्य में किलेबंद राजधानी होती थी, जिन्हें *दुर्ग* कहा जाता था – इनका वर्णन योजनाबद्ध शहरी नगर के रूप में होता था। ये *दुर्ग,* समस्त देश को शाही मार्गों से जोड़ता था, जिन्हें *राजमार्ग* कहा जाता था। इस समय के *महानगरों* के विषय में भी जानकारी उपलब्ध है। बुद्ध के समर्पित शिष्य आनन्द ने चम्पा, राजग्रह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा बनारस जैसे भव्य *महानगरों* को बुद्ध के अन्तिम विश्राम स्थल के लिये उपयुक्त बताया। *निगमों* से सम्बन्धित अन्य स्थान *पूतभेदन* थे जिनका अर्थ था ऐसे स्थान जहाँ व्यापार या अन्य वस्तुओं के बक्से तोड़े या खोले जाते थे। इस प्रकार *निगम* और *पूतभेदन* वास्तव में स्थानीय बाजार या विनिमय केन्द्र थे। इस प्रकार के स्थानों में बुद्ध ने पाटलीग्राम का वर्णन किया है जिसे *महापरिनिबानसूत्त* में *पूतभेदन* कहा गया है। ये विनिमय केन्द्र अधिकाशतः नदियों को पार करने वाले स्थान पर स्थित थे जैसे – श्रृंगवेरपुर। *राजधानी, दुर्ग* के समान प्रमुख नगर था। साहित्यिक स्रोतों में अक्सर दीवारों, द्वारों, नगर के पहरे की मीनारों तथा शहर की भीड़-भाड़ वाले जीवन का वर्णन है। इन महान शहरों के लिये अन्य शब्द *अग्गनगर* प्रयुक्त किया गया है। *महापरिनिबानसूत्त* में पाटलीग्राम में बुद्ध के आगमन पर लिखा है कि वे यहाँ *पूतभेदन* से अत्यधिक प्रभावित हुए तथा इस नगर को भविष्य में एक महत्वपूर्ण *अग्गनगर* बनने की भविष्यवाणी की। इस प्रकार ऐतिहासिक साक्ष्य विभिन्न प्रकार के नगरीय केन्द्रों की जानकारी प्रदान करते हैं।

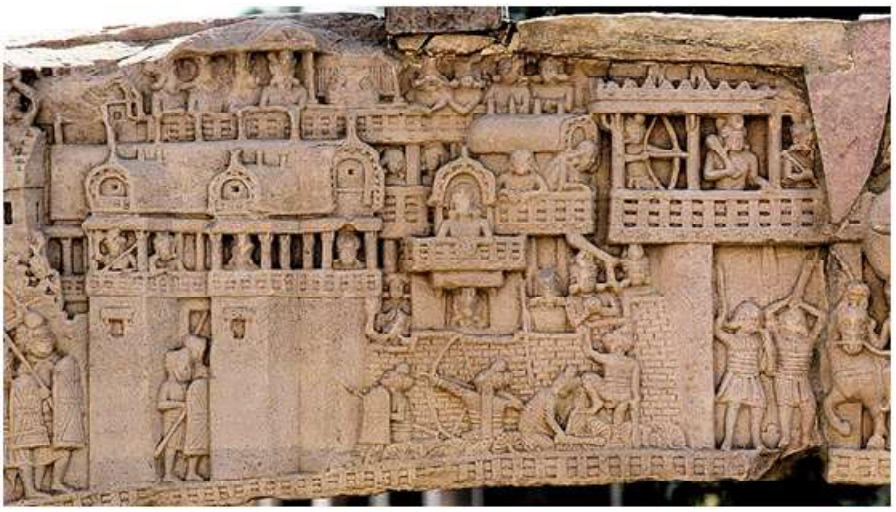

चित्र 13.3 : सांची स्तूप के दक्षिणी द्वार पर चित्र वल्लरी में अंकित 5वीं शताब्दी बी.सी.ई. में कुशीनारा का नगर। श्रेयः असित जैन. स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स https://commons.wikimedia.org/wiki/File:City_of_Kushinagar_in_the_5th_ century_BCE_according_to_a_1st_ century_BCE_frieze_in_Sanchi_Stupa_1_ Southern_Gate. jpg

1) महाजनपद और उसकी राजधानी के नाम का मिलान कीजिए :

i)	काशी	क)	वैशाली
ii)	अंग	ख)	वाराणसी
iii)	वज्जी	ग)	कौशाम्वी
iv)	वत्स	घ)	चम्पा

2) समकालीन साहित्य में उल्लेखित नगरों के प्रकारों पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

13.6 नगरीय केन्द्रों में सामाजिक स्तरीकरण

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि नगर विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमियों से लोगों को एक साथ लाते थे।, बौद्ध स्रोतों से हमें विशिष्ट रूप से नगरीय व्यवसायों का वर्णन मिलता है। हमें चिकित्सकों (*वैज्ज, भिसक्क*), शल्य चिकित्सक (*सल्लकट*) तथा लेखकों (*लेख*) का वर्णन मिलता है। लेखांकन (गणना) तथा मुद्रा विनिमय अन्य व्यवसाय थे। संस्कृत और पाली साहित्य में मनोरंजन करने वालों का भी उल्लेख है जैसे अभिनेता (*नट*), नृतक (*नाटक*), जादूगर (*सोकाज्जियक*), कलाबाज (*लंघिक*), ढोलकिया (कुंभथूनिक) तथा महिला ज्योतिश (*इक्कानिका*) कहा जाता था। इनमें से कुछ अन्य अवसरों के अतिरिक्त मेलों में भी अपना हुनर दिखाते थे। बौद्ध स्रोतों में प्रख्यात गणिका आम्रपाली (आंबपाली) का वर्णन है, जिसका वैशाली के वैभव में विशेष योगदान माना जाता है।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों के अनुसार इस काल के गंगा घाटी में शिल्प उत्पादन में विविधताओं का वर्णन है। इनमें से कुछ शिल्पकार नगरों के बाहर अपनी बस्तियों में रहते होंगे और नगरों के निवासियों को अपने उत्पाद बेचते थे। इन शिल्पकारों में वाहन निर्माता *(यानकार)*, हाथीदांत काम (*दंतकार*), धातुकार (कम्मर), सुनार (*स्वर्णकार*), रेशम के बुनकर (*कोसियाकार*), बढ़ई (*पलगंड*), सुईकार (सुचिकार), सरकंडों पर काम करने वाला (नलकार), माला निर्माता (*मालाकार*) तथा कुम्हार (*कुम्भकार*) शामिल थे। हम अगले भाग में कुछ विशेष व्यवसायों पर ध्यान देंगे। नगर राजतन्त्रीय शक्ति के आधार केन्द्र के रूप में विकसित हुए। इन्हें अक्सर ऐसे आर्दश केन्द्र के रूप में प्रदर्शित किया गया जो कि नैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के आदर्शों पर स्थापित थे, जिनमें राजा का स्थान सर्वोच्च था। अनेक स्रोतों में ऐसा वर्णन है कि राजा का परिवार और परिचारक वर्ग विविध था और इसमें काफ़ी लोग काम करते थे। जैसे विभिन्न प्रकार के सिपाही, पैदल, धनुर्धर, घुड़सवार, गजराज तथा सारथी। राजा के कर्मचारियों में – मन्त्री, राजपाल (*रथिक*), सम्पत्ति प्रबन्धक (*पेट्ठानिक*), राजमहल अधिकारी (*थापति*), हाथीप्रशिक्षक (*हाथीरोहा*), पुलिस (*राजभट*), जेलर (*बन्धनगरिका*), दास शामिल थे। इस इकाई के अन्त में बाद की दो श्रेणियों का विस्तृत विवरण दिया गया है।

13.6.1 व्यापार एवं व्यापारी

इस काल में व्यापार इतना अत्यधिक महत्वपूर्ण था, कि पाली साहित्य में व्यापार (*वाणिज्य*) को सर्वोत्कृष्ट व्यवसाय (*उक्कठ कम्म*) के रूप में बारबार बताया गया है। इसके अतिरिक्त केवल कृषि और पशुपालन को इस प्रकार सम्मानजनक व्यवसाय माना गया है। हमारे अध्ययन का काल अतः व्यापारिक गतिविधियों के उदय एवं विकास से सम्बन्धित है। इस काल में *महाजनपदों* के युग में व्यापार में वृद्धि का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण विनिमय का माध्यम सिक्कों का आरम्भ था। पाली साहित्य में सिक्कों का प्रथम निश्चित संदर्भ मिलता है जैसे – *कहापण, निक्ख, कंस, पद, माशक, ककनिक* कहा जाता था।।

चित्र 13.4 : आहत (Punch marked) सिक्के, कोसल, कार्शपण लगभग 525-465 बी.सी.ई. श्रेय : क्लासिकल न्यूमिस्मैटिक ग्रुप। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kosala_Karshapana.jpg

साहित्यिक स्रोतों की पुरातात्विक स्रोतों से पुष्टि होती है। अनेक स्थलों से आहत सिक्के प्राप्त हुऐ हैं। ये अधिकांशतः चांदी के सिक्के थे। धातु मुद्रा के साथ-साथ विनिमय में गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है। इसके साथ नवीन व्यवसायों जैसे – सूदखोरी (साहूकारी) उभरे। पाली साहित्य में हमें अनेकों व्यवसायों के संदर्भ प्राप्त होते है, और – ऋण के साधन, तथा व्यक्तियों द्वारा अपनी धरोहारों को गिरवी रखना, कभी-कभी देनदार द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों को जमानत के रूप में रख देना और दिवालियापन के संदर्भ भी मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में ऋणी व्यक्ति संघ में तभी सम्मिलित हो सकता था जब वह अपना ऋण पूर्णतः चुका दे, अन्यथा नहीं। तेजी से बढ़ते हुए व्यापार के परिणामस्वरूप उपयोग के लिये अनेकों भौतिक वस्तुएं भी उपलब्ध हुई। व्यापार के लिये अनेकों लोहे की वस्तुएं, जैसे – फावड़े, कुल्हाड़ी, चाकू तथा कील, खूटी, तीर, बर्तन तथा दर्पण उपलब्ध थे। उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र के पोटवार पठार में नमक का खनन होता था तथा वह गंगा के मैदान तक का लम्बा रास्ता तय करता था। कस्बों में कारीगरों ने वस्त्र, मनके, मृदभांड, हाथीदांत की वस्तुएँ, चीनी मिट्टी के बर्तन, काँच के पदार्थ और अन्य धातुओं की कलाकृतियों का उत्पादन किया जो सभी व्यापार की वस्तुएँ थी।

चित्र 13.5 : अवन्ति महाजनपद के चांदी के आहत सिक्के, लगभग 400 बी.सी.ई. -312 बी.सी.ई.। श्रेय : जौ मिशेल मूलै। स्रोत : बंगाली विकिमीडिया। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:I13_12karshapana_Avanti_1ar_(8481304617).jpg

शिल्पियों द्वारा बनाई गई वस्तुएं उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों तक जाती थी, जहाँ से सम्भवतः घोड़े वापस लाये जाते थे। साहित्यिक स्रोतों में कम्बल और ऊनी वस्त्रों का भी उल्लेख है, जिन्हें व्यापार के लिये उपयोग में लाया जाता था। वस्तुतः इस काल में दो महत्वपूर्ण परा-क्षेत्रीय मार्गों का वर्णन है – *उत्तरापथ* एवं *दक्षिणापथ*। *उत्तरापथ* उत्तरी भारत का परा-क्षेत्रीय व्यापार मार्ग था। यह गंगा के मैदानों से उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों से होकर बंगाल की घाटी में ताम्रलिप्ति बंदरगाह तक फैला हुआ था। *उत्तरापथ,* उत्तरी एवम् दक्षिणी भाग में विभाजित था। उत्तरी भाग लाहौर, जालन्धर, सहारनपुर तथा गंगा के मैदान के साथ बिजनौर और फिर गोरखपुर से होते हुऐ बिहार और बंगाल की ओर जाता था। दक्षिण भाग लाहौर, रायविंद, भटिंडा, दिल्ली, हस्तिनापुर, कानपुर, लखनऊ, बनारस तथा इलाहाबाद को जोड़ते हुऐ पाटिलपुत्र एवं राजग्रह पहुँचा। *दक्षिणापथ* जो कि एक महत्वपूर्ण दक्षिण का व्यापार-मार्ग था – इसका वर्णन *अर्थशास्त्र* में मिलता है। यद्यपि यह मार्ग आरम्भिक ऐतिहासिक युग में भी सक्रिय था। यह मार्ग मगध के पाटिलीपुत्र से गोदावरी पर स्थित प्रतिष्ठान तक फैला था। यह मार्ग पश्चिम तट के बन्दरगाहों को भी जोड़ता था। ऐसा माना जाता है कि उस समय जीवक चिकित्सक *दक्षिणापथ* मार्ग से आवंति तक गया। मालवा क्षेत्र से प्राप्त PGW तथा मध्य भारत और दक्षिण भारत से प्राप्त NBPW इस मार्ग की पुरातात्विक पुष्टि करता है।

इन मार्गों से व्यापार भी बड़ी मात्रा में होता था। बौद्ध स्रोतों से हमें ऐसे 1000 गाड़ियों के कारवों का वर्णन मिलता है, जो निर्जन स्थानों से एक *जनपद* से दूसरे *जनपद* पहुँचते थे। यह भी ज्ञातव्य है कि ये कारवां राजा के व्यक्तियों को वर्तमान टोल राजमार्ग की भांति 'कर' देते थे। आरम्भिक ऐतिहासिक भारत के व्यापार मार्ग यहाँ तक कि बौद्ध साहित्य में ऐसे विशिष्ट सीमा-शुल्क अधिकारी (*कम्मिका*) का उल्लेख करते हैं, जो इन व्यापारियों पर कर लगाते थे, यहाँ तक कि कर न देने वाले व्यापारियों की वस्तुएं जब्त कर ली जाती थी (उपिन्दर सिंह, 2008 : 289)। इस प्रकार के व्यापार के विस्तार का अर्थ न केवल माल का विविधकरण था बल्कि उन वर्गों का भी विधिकरण था जो उनका उत्पादन कर रहे थे या उनका व्यापार कर रहे थे।

13.6.2 नवीन निवेशकः *गहपति एवं सेठि*

1) *गहपति* – पाली साहित्य में हमें बार-बार *गहपति* शब्द का प्रयोग धनी सम्पत्ति-स्वामी के लिए मिलता है, जो कृषि और भूमि से विशेषरूप से सम्बन्धित थे। *गहपति* का शाब्दिक अर्थ गृह स्वामी या गृह का मुखिया था। *गहपति* के पास अपार सम्पति थी

और वह कोई मामूली व्यक्ति नहीं था। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि उसके इस बड़े धन का आधार क्या था? पाली साहित्य में साधारणतयः उन्हें एक कृषक (*कस्सक*) कहा गया है – परन्तु *गहपति* कोई साधारण कृषक नहीं था। उसकी भूमि संपत्ति इतनी अधिक थी कि उसकी देखभाल के लिये गैर-परिजन श्रमिक भी रखने पड़ते थे। इसका वर्णन हमें *दीघनिकाय* में वर्णित 'मेंडक' के विवरण से प्राप्त होता है। *गहपति* मेंडक के बारे में वर्णित कहानी परोक्ष रूप से हमें *गहपति* के सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक धरोहर की जानकारी देती है। ऐसा माना जाता है कि *गहपति* मेंडक के पास इतनी विशाल भूमि थी कि, उसने दासों, नौकरों और श्रमिक (*दासकर्मकारपोरिस*) कार्य पर रखे थे। इन सभी को मेंडक न केवल वस्तु रूप में भुगतान, जैसे – खाने की वस्तुयें प्रदान करते थे बल्कि इन्हें अर्धवार्षिक वेतन भी देते थे। मेंडक के पास लगभग 1200 चरवाहे (*गोपालक*) थे, जिससे अनुमान लगाया जाता था कि वह दूध का व्यापार करते थे। इसी प्रकार मेंडक, राजा को सहायता भी प्रदान करते थे। वे शाही सेना के लिये रसद उपलब्ध कराते थे। इससे *गहपति* द्वारा प्राप्त राजनैतिक सत्ता और प्रतिष्ठा की जानकारी मिलती है। अन्य अनेकों स्रोत हमें *गहपति* द्वारा दिये गये करों की जानकारी प्रदान करते हैं, जो राज्य के खजाने के संवर्धन के लिये उत्तरदायी थी। *गहपति* के राजनैतिक महत्व की इस तथ्य से भी पुष्टि होती है कि उन्हें चक्रवर्त्ती या विश्व के आदर्श राजा की सात निधियों में से एक माना जाता था।

पाली साहित्य में *गहपति* वर्ग के विषय में प्रशंसात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वास्तव में बौद्ध धर्म के वैधानिक ग्रंथों में *गहपति* वर्ग को एक उत्कृष्ट सामाजिक समूह (*उक्कठकुल*) की संज्ञा दी गयी है।

2) **सेट्ठी** : *सेट्ठी* उच्चस्तरीय उद्योगपति थे जो व्यापार एवं साहूकार से सम्बन्धित थे। विद्वानों के मतानुसार सेठी वर्ग में निवेश, वित्तदाता एवं सौदागर तीनों के सम्मिलित दायित्व थे। *गहपतियों* की भांति *सेट्ठी* भी नये वैधार्मिक सम्प्रदायों के संरक्षक थे। हमें इस प्रकार के अनेक संदर्भ प्राप्त हैं, जिसमें धनी सेट्ठियों का राजगृह और वाराणसी जैसे नगरों में समृद्धिपूर्वक निवास था। *महावग्ग* में *कोलिविसा* नामक सेट्ठी-पुत्र वर्णन मिलता है। इस युवा के विषय में कहा जाता है कि इनका पालन-पोषण इतना आरामदेह भव्य वातावरण में हुआ कि जब वह नंगे पाव भिक्षु का जीवन जीने लगा तो उस नायक के पाव से खून निकलने लगा। इससे भिक्षुओं के जीवन के विषय में भी पुनर्विचार करना पड़ा। बुद्ध ने उसके पश्चात् भिक्षुओं को पैरों में पादुकाओं की अनुमति से इस समस्या का समाधान किया। बुद्ध साहित्य में कहा गया है कि *सेट्ठी* नगरीय समुदाय के प्रभावशाली सदस्य थे, जिनकी राजा तक पहुँच और सम्पर्क था। *सेट्ठी* एवं *सेट्ठी गहपतियों* की सम्पन्नता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वे राजाओं के साथ-साथ प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक के सेवार्थीवृंद थे तथा चिकित्सा के भुगतान के रूप में हजारों *कहापण* दिया करते थे।

13.7 समाज

कृषि के विस्तार एवं शिल्पकारों के उद्भव के लिए अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता हुई। विभिन्न व्यवसायों से शिल्पकारों, कृषकों एवं श्रमिकों की पृथक श्रेणियों को प्रोत्साहन मिला। इनमें से प्रत्येक को अलग जाति के रूप में देखा जाने लगा। जाति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के '*जात*' मूल से हुई, जिसका अर्थ है 'जन्म' और इसका वर्ण की तुलना में अभिप्राय भिन्न है (थापर, 2002 : 123)। वर्णों का सम्बन्ध अनुष्ठानिक स्थिति से था। शूद्रों को इन सभी धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेना मना था। दूसरी ओर, अन्य तीन वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)

द्विज थे। 'द्विज' (दो बार जन्म) जो कि उपनयन के अधिकारी थे जो उनके दूसरे जन्म को दर्शाता है। जाति और वर्ण दोनों सामाजिक समूहों के रूप में विवाह को विशेष दायरे में नियमित करते थे तथा पैत्रक व्यवसाय अपनाते थे। प्रश्न उठता है कि फिर वर्ण और जाति में क्या अन्तर था?

प्रथम जबकि वर्ण की संख्या चार निश्चित थी, जातियों की संख्या असंख्य थी तथा उनकी संख्या व्यवसायों और नये क्षेत्रों के विकास के साथ ब्राह्मणवादी समाज में बढ़ती गयी। इसी प्रकार वर्णव्यवस्था में पदानुक्रम स्थाई था। जहाँ ब्राह्मण का स्तर सर्वश्रेष्ठ था, शूद्र का निम्नतम था। हालांकि जातियों का स्तर क्षेत्रों के अनुसार लचीला था। जिसका आधार मुख्यतः भूमि धन, राजनैतिक एवं सैनिक सत्ता पर अधिकार पर निर्भर करता था। तीसरा – यद्यपि दोनों समूहों में अन्तर्विवाह आदर्श माना जाता था, (जाति अपने ही वर्ण में या समूह में विवाह) कुछ अंर्तवर्ण विवाह भी मान्य थे। उदाहरणार्थ, *धर्मशास्त्रों* में उच्च वर्ण के पुरुष का विवाह निम्न वर्ण की कन्या के साथ हो सकता था, इस प्रकार के विवाह को अनुलोम विवाह कहा जाता था। दूसरी ओर *धर्मशास्त्रों* में प्रतिलोम विवाह, जिसमें निम्न वर्ण से उत्पन्न पुरुष उच्च वर्ण की कन्या से विवाह करता था निन्दित था। इस प्रकार के विवाहों की ग्रंथों में चर्चा यह दर्शाती हैं कि यद्यपि नकारात्मक तरीके से परन्तु यह सत्य है कि इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे तथा वर्ण पूणतः अन्तर्विवाह पर आधारित नहीं थे। दूसरी ओर जातिय कठोरता अन्तर्विवाह पर टिकी थी।

इसी प्रकार जाति व्यवस्था में खाने-पीने की वस्तुओं का लेन-देन, भागेदारी तथा छुआ-छूत के नियम भी स्पष्ट रूप से परिभाषित थे। विभिन्न वर्गों में कुछ खाने से सम्बन्धित वस्तुओं को उच्च वर्ण निम्न सामाजिक वर्णों से विशेष परिस्थिति में ग्रहण कर सकते थे। इसके अतिरिक्त वर्ण अनेक प्रकार के व्यवसायों से जुड़े थे जबकि जाति कुछ विशिष्ट व्यवसायों को ही अपना सकती थी।

दोनों व्यवस्थायें एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित थे। उदाहरणार्थ – पालि साहित्य में इस बात का उल्लेख प्राप्त है कि *उक्कट्ट* (उच्च) जातियों के व्यवसाय (कम्म) और शिल्प (सिप्प) उच्च थे और इसी प्रकार निम्न जाति (हीन) के छोटे व्यवसाय और शिल्प में संलग्न होने का वर्णन है। उच्च जाति में *खातिय, ब्राह्मण* और *गहपति* शामिल थे। इन वर्णों का सम्बन्ध उत्कृष्ट व्यवसायों से था, जैसे – कृषि, पशुपालन एवं व्यापार। इसके साथ-साथ अन्य उच्च श्रेणी के व्यवसाय लेखाकार, गणनाकार तथा शाही कार्यकर्त्ता (राजपोरिस) थे। निम्न हीन जातियों के व्यवसायों में टोकरी बनाना (वेना जाति), धोबी (*रजक*), नाई (*नाहपित*), शिकारी (*निशाद* जाति) मेहत्तर (पुक्कुस जाति) तथा चंडाल आदि थे।

चंडाल, जिन्हें पांचवें वर्ण में रखा गया है, उनका स्थान शूद्रों से भी निम्न बना दिया गया था। चंडालों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता था, वे लोग बस्तियों के बाहर रहने को विवश थे और मुख्यतः शिकार करके और खाने की अन्य वस्तुओं को एकत्र कर अपना पालन पोषण करते थे। उनके व्यवसायों जैसे – दर्री बुनना, शिकार करना अत्यन्त निम्न व्यवसायों में से था।

समाज में इसी प्रकार के निम्न स्तर में एक अन्य सामाजिक समूह था जिन्हें दास (*दास* और *कर्मकार*) कहा जाता था। बौद्ध ग्रंथ *दीघनिकाय* में कहा गया है कि दास वह व्यक्ति है, जिसका अपने उपर कोई अधिकार नहीं है, वह दूसरों पर निर्भर होता है। जहाँ वह स्वयं जाना चाहे वह नहीं जा सकता। इस समय के ग्रंथों में हमें महिला और पुरुष दास एवं दासियों का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ – *विनय पिटक* में तीन प्रकार के दासों का

उल्लेख है – *अन्तोजातको* – जो कि महिला दासी से जन्मे थे, *धनक्कितो* – जिसे दास की भांति खरीदा गया हो तथा *कर-मर-अनितो,* जिसे अन्य किसी राज्य से (देश) लाकर दास बनाया गया हो।

चूंकि हमारे ऐतिहासिक स्रोत भी मुख्यतः अभिजात वर्ग से सम्बन्धित हैं, अतः इतिहासकारों के लिए इन उपेक्षित वर्गों के जीवन, विचार, राय की पुर्नरचना अत्यन्त कठिन है। हमारे समक्ष सबसे बड़ी चुनौती समस्त स्रोतों को सावधानी पूर्वक एवं सृजनात्मक तरीके से प्रयोग करना है, ताकि हम प्राचीन अतीत के अंतराल को भर सकें।

बोध प्रश्न 2

1) सोलह *जनपदों* को सूचीबद्ध करें। क्या इन सोलह राज्यों में केवल राजतंत्रीय व्यवस्था थी? अगर नहीं तो गैर-राजतंत्रीय राज्य व्यवस्थायें कौन कौन सी थी? वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) इस अवधि में शूद्र और *दासों* की क्या स्थिति थी?

.....

.....

.....

.....

.....

3) सही या गलत चिन्हित करें :

क) गाँवों की तुलना में नगरीय समाज अधिक लचीला था और लोगों को उनकी प्रथागत परम्पराओं से परे पेशेवर और व्यक्तिगत विविधता की अनुमति देता था।

ख) सभी *जनपदों* की शक्ति और स्थिति समान थी।

13.8 सारांश

इस इकाई में हमने उन राज्यों और नगरों के विषय में पढ़ा जिनका उद्भव विशेष रूप से गंगा घाटी में हुआ। इस अवधि में कृषि की वृद्धि या विस्तार, व्यापार की व्यापक शुरुआत व विभिन्न राजव्यवस्थाओं में संघर्ष हुए। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में आते-आते सोलह *महाजनपदों* में से चार राज्य अत्यन्त शक्तिशाली राज्यों के रूप में उभरें, ये वृज्जि गणसंघ के अतिरिक्त मगध, कोसल, वत्स, अवन्ति थे। समय के साथ-साथ इन राज्यों के मध्य युद्ध, युद्ध सन्धि, सैनिक, वैवाहिक सम्बन्धों आदि क्षेत्रों में भी उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। शक्ति के लिये लम्बे समय तक संघर्ष में मगध सर्वशक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. में सामाजिक स्तरीकरण एवं राज्य गठन को महत्वपूर्ण गति प्राप्त हुई। इस समय में अधिशेष की प्रचुर मात्रा गैर उत्पादक समूहों को भी बनाये रखने के लिए

पर्याप्त था। इसमें व्यापारी, सौदागर, प्रशासनिक वर्ग, ब्राह्मण, मठाधीश सम्मिलित थे। व्यापार के विस्तार में शिल्प के विशेषीकरण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तु विनिमय का युग समाप्ति की ओर था। अब साधारणतः विनिमय का माध्यम मुद्रा हो गयी थी, जिसे *कार्शपण* कहते थे। यह मुद्रा तांबा व चांदी से निर्मित थी, तथा उनकी मानकता के लिये उन पर राजा या व्यापारियों के श्रेणी (Guild) के चिन्ह अंकित होते हैं। धन के विनिमय में आयी वृद्धि से सूदखोरी का आरम्भ हुआ तथा धन को उधार देने वाले व्यवसायों का भी उदय हुआ जिसने समाज में वर्ण व्यवस्था के परे सामाजिक वर्गों को जन्म दिया।

13.9 शब्दावली

अनुलोम : उच्च वर्ग के पुरुष और निम्न वर्ण की महिला के बीच विवाह।

गहपति : धनी भूस्वामी, जिनके पास बड़ी भू-सम्पतियाँ थी। ये अपने नातेदारी से बाहर श्रमिकों से काम लेते थे।

गणसंघ : ऐसे गैर-राजतंत्रीय व्यवस्था जिसमें सत्ता समूह द्वारा निर्धारित हो।

जनपद : सुनिश्चित क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग, जो राजनैतिक सत्ता द्वारा शासित थे।

जाति : वर्ण से भिन्न व्यवसायिक समूह। इनमें से जातियों और उपजातियों के समूह विशेष व्यवसायों से सम्बन्धित थे। वे संख्या में इतने अधिक थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी।

महाजनपद : ऐसे बड़े व शक्तिशाली *जनपद*, जिनके शासक अधिक शक्तिशाली क्षेत्रीय सत्ता का उपयोग करते थे।

NBPW : उत्तरी काले पॉलिश वाले मृदभांड, सातवी शताब्दी बी.सी.ई.– दूसरी ओर प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. तक।

प्रतिलोम : एक उच्च वर्ण की स्त्री और निम्न वर्ण के पुरुष के बीच विवाह।

सेट्ठि : व्यापार, वित्तपोषक, व्यापारियों के उद्यमी।

नगरीय केन्द्र : वे क्षेत्र जो गांवो की अपेक्षाकृत अधिक जनसंख्या वाले थे, जहाँ गैर-कृषि व्यवसाय किये जाते थेः यह शक्ति का केन्द्र या शिल्प से बनी वस्तुएं के उत्पादन व वितरण के केन्द्र अथवा व्यापारिक मार्गों पर बने ऐसे स्थान जहाँ पर व्यापारी बाजार में अपने उत्पाद को बेच या खरीद सकते थे।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) ख
   ii) घ
   iii) क
   iv) ग

2) आपके उत्तर में आपको *पुर, दुर्ग, निगम* और *नगर* जैसे विभिन्न शब्दों को जिस तरह साहित्य में प्रयोग किया गया है, उल्लेख करना है। उप-भाग 13.5.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 13.3

2) देखें भाग 13.7

3) क) सही

   ख) गलत

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

चक्रवर्ती, रणबीर (2016). ऐक्सप्लोरिंग अर्ली इंडिया अप टू ऐ.डी. 1300. थर्ड ऐडिशन, दिल्ली : प्राईमस बुक्स.

झा, डी.एन. (2010). *ऐशियंट इंडिया : इन हिस्टोरिकल आऊटलाईन.* रिवाईज्ड एंड ऐनलार्जड ऐडिशन. दिल्ली : मनोहर.

कौल, शोनालिका (2010). *ईमेज़िनिंग द अर्बन : संस्कृत ऐंड द सिटि इन अर्ली इंडिया.* नई दिल्ली : पर्मानेंट ब्लैक.

शर्मा, आर. एस. (1983). *मैटिरियल कल्चर एंड सोशल फार्मेशन इन ऐशियंट इंडिया.* दिल्ली : मैकमिलन बुक्स.

सिंह, उपिन्दर (2008). *ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडिया : फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.* दिल्ली : पियरसन लौंगमैन.

थापर, रोमिला (2002). *द पेन्गुईन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया. फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ऐ. डी. 1300.* लंडन : पेन्गुईन बुक्स.

इकाई 14 उत्तर पश्चिम में सिकंदर का आक्रमण*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 स्रोत

14.3 मैसिडोनिया का अलेक्ज़ेंडर (सिकंदर)

14.4 एरियन की *इंडिके*

14.5 अलेक्ज़ेंडर के उत्तराधिकारी और सेल्यूकस निकेटर

14.6 अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण का प्रभाव

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रंथ

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- पश्चिमोत्तर भारत में अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण की जानकारी;
- अलेक्ज़ेंडर के बारे में विभिन्न स्रोत और उनके महत्व;
- पोरस समेत भारत के विभिन्न गणराज्यों से साथ अलेक्ज़ेंडर के युद्ध के बारे में;
- एरियन के *इंडिके* के विषय में;
- अलेक्ज़ेंडर के भारत पर आक्रमण के प्रभाव के बारे में; तथा
- चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक (यूनानी) राजदूत मेगस्थनीज़ के बारे में।

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में से एक इकाई में आपने लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. में उत्तर भारत में उभरे *जनपदों* और *महाजनपदों* के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र की ओर ध्यान देंगे और जानेंगे कि कैसे यह चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर (सिकंदर) के आक्रमण से संबंधित घटनाओं के कारण जीवंत गतिविधियों का क्षेत्र बन गया।

14.2 स्रोत

विभिन्न स्रोतों द्वारा अलेक्ज़ेंडर के युग के इतिहास की जानकारी मिलती है। प्रारम्भिक तौर पर ये स्रोत प्रभावशाली और उल्लेखनीय लगते हैं। एरियन और कर्टियस रूफस द्वारा लिखा इस काल का लंबा इतिहास, प्लूटार्क द्वारा लिखी जीवनी, डायोडोरस सिरिकुलस की

* डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली।

बिब्लियोथिका और स्ट्रैबो की *जियोग्राफ़ी* (*Geography*) के अंत के अनुभागों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। परन्तु ये सभी अनुवर्ती काल में लिखे गए इसलिए पर्याप्त होने के बावजूद इन प्राथमिक स्रोतों पर सवाल उठाया जाता है। उदाहरणतया, प्रथम सदी बी.सी.ई. की तीसरी तिमाही में डियोडोरस की रचनाओं को दिनांकित किया जाता है, एवं लगभग दूसरी शताब्दी में प्लूटार्क और एरियन की। इस प्रकार अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु और उसके शासनकाल से जुड़े प्रथम सारख्यानों के बीच दो-तीन शताब्दियों का अंतर है। इनमें से कुछ विवरणों पर काल्पनिक होने का आरोप लगाया गया है कि यह बयानबाज़ी, तुच्छ विवरणों से ओतप्रोत एवं अतिरंजित हैं, और अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त हैं। फिर भी भारत के संदर्भ में विद्वानों को विश्वसनीय और उपयोगी जानकारी उपलब्ध करने में ये स्रोत महत्वपूर्ण हैं। एरियन का वर्णन अलेक्ज़ेंडर के युग के सम्बन्ध में सबसे गंभीर व्याख्या है। एरियन एक आम सैनिक था जिसने अलेक्ज़ेंडर की याद में विश्वसनीय स्रोतों का चयन करके उन्हें ईमानदारी से पेश करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उसकी पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ अलेक्ज़ेंडर* टॉलेमी, एरिस्टोबुलस, नियरकस और एराटोस्थिनिस के विवरणों पर आधारित थी। टॉलेमी, एरिस्टोबुलस और नियरकस अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के प्रत्यक्षदर्शी और कभी-कभी सक्रिय भागीदार भी थे। एराटोस्थिनिस, मेगस्थनीज़ और नियरकस के स्रोतों पर आधारित '*इंडिके*' दक्षिणी महासागर में अलेक्ज़ेंडर के बेड़े की यात्रा का वर्णन करता है।

कुछ प्रमुख क्लासिकल व्यक्ति जो अलेक्ज़ेंडर के साथ जुड़े थे

क्युन्ट्स कर्टियस रूफ़स (लगभग प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.) – वह अलेक्ज़ेंडर महान पर एकमात्र मौजूद *लैटिन* (*Latin*) *मोनोग्राफ* (विनिबंध) का लेखक है, जिसे आमतौर पर *हिस्टोरिया अलेक्ज़ेंड्री मैगनी* कहा जाता है। यह एशिया में अलेक्ज़ेंडर के कारनामों का सबसे प्राचीन वर्णन है।

प्लूटार्क (जन्म 46 बी.सी.ई.) – प्लूटार्क एक यूनानी लेखक, मुख्यतः जीवनी लेखक था। इनकी रचनाओं ने 16वीं-19वीं शताब्दियों से यूरोप में इतिहास लेखन के विकास को काफ़ी प्रभावित किया।

स्ट्रैबो (जन्म 64 बी.सी.ई.) – स्ट्रैबो एक यूनानी भूगोलशास्त्री और इतिहासकार था जिसका विख्यात *जियोग्राफ़ी* एक ऐसा कार्य है जो ऑगस्टस (27 बी.सी.ई. – 114 बी.सी.ई.) के शासनकाल के दौरान रोमन और ग्रीक (यूनानियों) को ज्ञात सभी प्रकार के लोगों और देशों की जानकारी समेटे हुए है।

कैसेंड्रेया के एरिस्टोबुलस – यह अलेक्ज़ेंडर के अभियानों में उसके साथ रहा। इसने एक वास्तुकार और सैन्य अभियन्ता के रूप में अलेक्ज़ेंडर को सेवाएँ प्रदान कीं।

डायोडोरस सैल्यूकस (प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.) – यूनानी इतिहासकार।

नियरकस (जन्म 312 बी.सी.ई.) – यह अलेक्ज़ेंडर की मैसेडोनियन सेना में सैन्य अधिकारी था। अलेक्ज़ेंडर के आदेश पर इन्होंने पश्चिमी भारत में हाइडैस्पीस नदी से फ़ारस की खाड़ी तक और यूफ़्रेट्स से बेबीलोन तक का सफर तय किया।

एरैसटोसथिनिस (जन्म 276 बी.सी.ई.) – साइरेन के एरैसटोसथिनिस एक यूनानी वैज्ञानिक लेखक, खगोलशास्त्री और कवि थे।

14.3 मेसिडोनिया का अलेक्ज़ेंडर (सिकंदर)

छठी शताब्दी बी.सी.ई. में भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र विभिन्न रियासतों के बीच संघर्ष का स्थल था। कंबोज, गांधार और मद्रस आपस में एक-दूसरे के साथ लड़ते रहे। चूँकि एक शक्तिशाली राज्य का अभाव था इसलिए पश्चिमोत्तर क्षेत्र की रियासतों को एक राज्य में संगठित नहीं किया जा सका। इसी राजनीतिक अस्थिरता के कारण फ़ारस के एकेहमिनियन राजा इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हुए। 516 बी.सी.ई. में एकेहमिनियन (हखमनी) शासक डेरियस ने भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र पर आक्रमण किया और पंजाब, सिंध और सिन्धु नदी के पश्चिम भूभाग को जीत लिया। इस समय ईरान के पास कुल 28 *क्षत्रप* थे जिनमें से भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र बीसवाँ प्रांत था। भारतीय *क्षत्रपों* में सिन्धु नदी का पश्चिम भाग था जिसमें सिंध, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश और पंजाब का हिस्सा शामिल था। ईरान द्वारा एशिया क्षेत्र से प्राप्त राजस्व का एक तिहाई हिस्सा बहुमूल्य सोने के रूप में अकेले इसी क्षेत्र से आता था। लगभग पाँचवीं शताब्दी बी.सी.ई. में ग्रीक (यूनानियों) के खिलाफ लड़ने वाली फ़ारसी सेनाओं में भारतीय प्रांतों ने अपने सैनिकों की सेवाएँ प्रदान कीं। 330 बी.सी.ई. में एलेक्ज़ेंडर के आक्रमण तक भारतीय क्षेत्र का यह हिस्सा ईरानी साम्राज्य का अंग बना रहा।

ईरानियों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप ईरान और उत्तर-पश्चिम भारत के बीच बहुत सारे सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए। ईरानी विद्वानों द्वारा एक नई लिपि की शुरुआत हुयी जिसे खरोष्ठी लिपि कहा जाता है। यह अरबी की तरह दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी। यह एकेहमिनियन (हखमनी) साम्राज्य की एरामाइक लिपि पर आधारित है। उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश में प्राप्त फ़ारसी सिक्कों के आधार पर इन दो क्षेत्रों के बीच व्यापार के संकेत भी मिलते हैं।

मैसेडोनिया

प्राचीन यूनानी संसार में ओलम्पस पर्वत के दक्षिण में रहने वालों और इसके उत्तर में रहने वाले मैसेडोनियन लोगों के बीच अंतर था। उत्तर में रहने वाले लोगों को 'मकेडोन्स' कहा जाता था, यह मूल से एक यूनानी शब्द है। चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के अंत तक यूनानी लोगों ने उन्हें 'बर्बर लोगों' के रूप में देखा जो यह दर्शाता था कि वे लोग उन्हें यूनानियों के रूप में नहीं देखते थे।

मैसेडोनिया को कभी-कभी मैसेडोन भी कहा जाता है। यह प्राचीन काल में एक नृवंशतया रूप से मिश्रित क्षेत्र था, इसके दक्षिण में यूनानी राज्य और अन्य दिशाओं में आदिवासी राज्य थे। उत्तर और पश्चिम में बाल्कन के पहाड़ी क्षेत्र थे जबकि दक्षिणी क्षेत्र उपजाऊ जलोढ़ मैदान था। ये दोनों क्षेत्र आपस में संघर्षरत थे। पहली बार इन दोनों क्षेत्रों को अलेक्ज़ेंडर के पिता फिलिप ने एकजुट किया था। चौथी शताब्दी बी.सी.ई. में मैसेडोनियन और यूनानी नृवंश प्रतिद्वंद्विता में संलग्न थे। ये दोनों वर्ग एक-दूसरे से भिन्न एवं पृथक थे। फिलिप द्वितीय ने 337 बी.सी.ई. में यूनानियों पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। अलेक्ज़ेंडर को अक्सर या गलती से यूनानी के रूप में जाना जाता है जो वह नहीं था। वह हमेशा यूनानियों से सावधान रहता था। मेसेडोनियन लोगों की उपेक्षा यूनानी अधिक परिष्कृत थे और इनकी सांस्कृतिक विरासत भी अलग थी।

अलेक्ज़ेंडर का जन्म जुलाई 356 बी.सी.ई. में हुआ। वह मैसेडोनिया के शासक फिलिप द्वितीय का बेटा था। 337 बी.सी.ई. तक फिलिप द्वितीय ने यूनानी राज्यों का *संघ* बनाकर

यूनानी क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित किया जिसे *लीग ऑफ द कोरिन्थ* कहा जाता था। इस मेसीडोनियन शासक के अंतर्गत यह *संघ* एकजुट हुआ और लीग के प्रति निष्ठावान भी। फ़ारस के युद्ध के दौरान आर्थेनियन लोगों की पीड़ा और उनके मंदिरों के विनाश का बदला लेने के लिए फिलिप ने फ़ारस पर आक्रमण की घोषणा की ताकि एशिया माइनर के यूनानी क्षेत्रों को मुक्त करवा सके। 336 बी.सी.ई. में उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु के बाद यूनानी राज्यों ने मैसेडोनियन शासन से विद्रोह कर दिया जिसे अलेक्ज़ेंडर द्वारा कुचल दिया गया। 334 बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर ने एक शक्तिशाली सेना के साथ फ़ारस पर आक्रमण किया और फ़ारस के राजा डेरियस को हराया।

ए. के. नारायण ने टार्न की कृति को आधार मानकर कहा है कि उस समय चूँकि भारत ईरानी साम्राज्य का हिस्सा था, इसलिए फ़ारसी साम्राज्य के अपने विजय अभियान में अलेक्ज़ेंडर की दिलचस्पी भारत के इस क्षेत्र में बढ़ गयी। हालाँकि एरियन ने अलेक्ज़ेंडर को इससे कहीं अधिक महत्वाकांक्षी माना है तथा उसे भारत पर अधिकार प्राप्त करने का इच्छुक बताया है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह सिंधु नदी पार नहीं करता, क्योंकि सिंधु नदी भारत और एरियाना के बीच की सीमा थी। उसमें भारत को जीतने का जोश था। एरियाना भारत के पश्चिम में स्थित क्षेत्र था जो फ़ारसियों के कब्ज़े में था। डेरियस प्रथम के साम्राज्य की पूर्वी सीमा सिन्धु नदी थी।

भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान अत्यधिक उल्लेखनीय हैं जिनमें कई विजय शामिल हैं। 327 बी.सी.ई. में अलेक्ज़ेंडर बेक्ट्रिया से हिंदुकुश पर्वत पार कर सिन्धु नदी के मैदान की ओर बढ़ा। उसकी सेना के एक हिस्से ने हिंदुकुश के संचार मार्ग पर अधिकार कर लिया और सेना के दूसरे हिस्से ने, जिसका नियंत्रण स्वयं उसके पास था, स्वात क्षेत्र में प्रवेश कर लिया। इसके लिए उसे इन पहाड़ी इलाकों के लोगों के साथ भयंकर लड़ाई लड़नी पड़ी। उसने स्वात को अपने अधीन कर लिया। 326 बी.सी.ई. में दोनों सेनाएँ सिंधु पर मिलीं और सिंधु को पार कर तक्षशिला तक पहुँच गईं। भारतीय उत्तर-पश्चिम क्षेत्र की राजनीतिक स्थिति अलेक्ज़ेंडर के लिए उपयुक्त थी क्योंकि यह भूभाग छोटे स्वतंत्र राजशाही और काबिलाई गणराज्यों में विभाजित था। झेलम और चेनाब के मध्य क्षेत्र पर शासन करने वाले पोरस सबसे प्रसिद्ध राजा थे। पोरस और अलेक्ज़ेंडर की भिडंत और उनके बीच का संवाद इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। सिकंदर ने सिंध को पार किया और तक्षशिला के राजकुमार अम्भी से मिला। अम्भी और पोरस दोनों मिलकर अलेक्ज़ेंडर को हरा सकते थे लेकिन वे एक संयुक्त मोर्चा नहीं बना सके। अम्भी ने अलेक्ज़ेंडर का विरोध नहीं किया बल्कि भव्य उपहारों के साथ उसका स्वागत किया। अलेक्ज़ेंडर ने अम्भी राज्य को कोई क्षति न पहुँचाते हुए वहाँ से शांतिपूर्व पलायन किया परन्तु फिलिप्स को वहाँ का *क्षत्रप* नियुक्त किया और अपना सैन्य दुर्ग निर्मित किया। वह झेलम (हाइडस्पिस) के लिए रवाना हुआ। वह पोरस से मिलने का इच्छुक था जिसने आत्मसमर्पण करने से मना कर दिया था। मौसम की स्थिति अनुकूल नहीं थी, पूरा क्षेत्र बर्फ से ढ़का हुआ था। इन कठिन परिस्थियों में भी वह झेलम को पार करने में कामयाब रहा और नदी के दूसरे तट पर तैनात पोरस की सेना पर हमला कर दिया। पोरस घायल होकर पीछे हट गया किन्तु वह पोरस के सैन्य कौशल और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ और उसने पोरस को उसका क्षेत्र वापिस करने का फैसला किया (चित्र 14.1)। तत्पश्चात् वे सहयोगी बन गये। अलेक्ज़ेंडर की जीत महत्वपूर्ण थी, उसने अपनी जीत का उत्सव मनाने के लिए दो नगरों 'नैसिया' और 'ब्यूसेफला' की स्थापना की (मानचित्र 14.1)। उसने अपने प्रिय घोड़े ब्यूसेफला के नाम पर इस नगर का नाम रखा था जो युद्ध की थकान के कारण मर गया था।

मानचित्र 14.1: भारत में अलेक्ज़ेंडर के विजयाभियान। स्रोतः द लोएब क्लासिकल लाइब्रेरी, एरियन 'एनाबसिस ऑफ़ अलेक्ज़ेंडर'। चित्र सौजन्यः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://en.wikipedia.org/wiki/File:AlexanderConquestsInIndia.jpg).**

चित्र 14.1: 'अलेक्ज़ेंडर और पोरस' : चार्ल्स ले ब्रुन (1673) द्वारा बनाई तस्वीर जिसमें हाइडस्पिस की लड़ाई में अलेक्ज़ेंडर और पोरस (पुरु) को दिखाया गया है। चित्र सौजन्यः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://en.wikipedia.org/wiki/File:Le_Brun,_Alexander_and_Porus.jpg)**

एलेक्ज़ेंडर ने बेबीलोन में एक टकसाल से युद्ध के स्मरण में सिक्के भी जारी किये (चित्र 14.2)।

चित्र 14.2: लगभग 322 बी.सी.ई. में भारतीय उपमहाद्वीप में अभियानों की स्मृति में बेबीलोन में मुद्रित अलेक्ज़ेंडर का विजय सिक्का। अग्र.भाग: नाइक द्वारा अलेक्ज़ेंडर की ताजपोशी। पार्श्व. भाग : अपने हाथी पर बैठा सिकन्दर राजा पोरस पर हमला करते हुए। चांदी धातु। ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन। श्रेय: पी.एच.जी.कॉम। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Alexander_victory_ coin_Babylon_silver_c_322_BCE.jpg)।

अलेक्ज़ेंडर अपने अभियान में आगे बढ़ता रहा और चेनाब तथा रावी नदी (एससिनेस और हाइड्रोटस) पार कर ली। उसने कई राज्यों को हराया और पंजाब के कथ राजाओं के साथ भयानक लड़ाई लड़ी। उन्होंने आत्मसर्मपण नहीं किया और वे बहादुरी से लड़े किन्तु अलेक्ज़ेंडर ने उनका पहाड़ी किला जीत लिया और उसको तहस-नहस कर दिया। एक पड़ोसी राजा ने उसको ब्यास नदी के पूर्व में नंद वंश की शक्ति के बारे में बताया। पोरस ने भी इस जानकारी को पुख्ता किया। अलेक्ज़ेंडर आगे बढना चाहता था लेकिन उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया (चित्र 14.3)।

चित्र 14.3: भारत में घर लौटने के लिए अलेक्ज़ेंडर के सैनिकों की याचना। प्लेट 3। एन्टोनियो टेम्पैस्टा ऑफ फ्लौरैंस, 1608. श्रेय ''अलेक्ज़ेंडर. कॉम. स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Alexander_troops_beg_to_return_home_from_India.jpg)

इसलिए उसे झेलम की ओर लौटने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसने झेलम और ब्यास के बीच का प्रदेश पोरस को सौंप दिया और अपनी वापसी यात्रा के लिए झेलम की ओर रवाना हुआ। झेलम और चेनाब के संगम पर उसने अपना आखिरी महत्वपूर्ण अभियान मालव राजतंत्रों (मल्लोई) के खिलाफ़ लड़ा। मालव और शुद्रक् गणराज्यों ने उसके खिलाफ एकजुट होने की कोशिश की किन्तु सफल नहीं हो सके। उसने शुद्रकों को मालवों का साथ देने से रोक दिया। मालवों ने बहादुरी से लड़ाई लड़ी लेकिन हार गए। शुद्रक भी अलेक्ज़ेंडर के आगे टिक नहीं सके।

ऐसा माना जाता है कि बेबीलोन में अलेक्ज़ेंडर के आखिरी दिनों के दौरान पोरस के साथ मिलकर चाणक्य और चंद्रगुप्त मौर्य ने पंजाब को एकजुट करने का प्रयास किया। बाद में मौर्यों ने गंगा घाटी के नंद वंश पर आक्रमण करके अपना साम्राज्य स्थापित किया।

324 बी.सी.ई. में भारत में अपने अभियानों के तीन साल बाद अलेक्ज़ेंडर फ़ारस में सूसा में वापस आ गया। अगले वर्ष बेबीलोन में उसकी मृत्यु हो गई। मृत्युशैया पर जब उससे पूछा गया कि उसके साम्राज्य को किसे सौंपा जाए तो उसने जवाब दिया "सबसे शक्तिशाली को"। बाद में उसके विशाल साम्राज्य के नियंत्रण के लिए उसके सेनापतियों और राज्यपालों के बीच संघर्ष की एक लंबी श्रृंखला शुरू हो गयी। उतराधिकार को लेकर दायदोची कहे जाने वाले उसके उत्तराधिकारियों के बीच हुए संघर्ष ने इस क्षेत्र पर यूनानी आधिपत्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। 317 बी.सी.ई. भारत में यूनानी सीमा चौकियों को भी छोड़ दिया गया।

बोध प्रश्न 1

1) अलेक्ज़ेंडर के भारत पर आक्रमण के पुनर्निर्माण के लिए इस्तेमाल किये गये स्रोतों पर नोट लिखें।

.....

.....

.....

2) अलेक्ज़ेडर के भारत पर आक्रमण पर कुछ पंक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

चित्र 14.4: दक्षिणी एशिया में उसके विजय अभियानों के प्रतीक के रूप में हाथी की खाल पहने अलेक्ज़ेडर को दर्शाता टॉलेमी का सिक्का। ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन। श्रेयः मारी-लैन न्गयूयन (2011)। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/ File:PtolemyCoin WithAlexander WearingElephantScalp.jpg).

एरियन – लुसियस फ्लेवियस एरियनस या एरियन, जैसा कि उन्हें आमतौर पर अंग्रेज़ी भाषा में कहा जाता है, का जन्म 85-90 सी.ई. के बीच निकोमीडिया (रोमन साम्राज्य में एक यूनानी शहर) में हुआ। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि अलेक्ज़ेंडर से सम्बन्धित सभी आख्यान उसकी मृत्यु से तीन शताब्दियों बाद के हैं। ये सभी अब लुप्त हो चुके प्राथमिक स्रोतों पर आधारित हैं जो त्रुटिपूर्ण एव पक्षपाती हैं। 334-323 बी.सी.ई. के बीच की घटनाओं के लिए विद्वान एरियन के विवरणों पर निर्भर हैं। वह रोमन साम्राज्य में एक बड़ी सेना का अध्यक्ष/नायक था। साहित्यिक झुकाव के कारण उसने शिकार, घुड़सवारी, सेना की रणनीति पर कई लेख लिखे और अलेक्ज़ेंडर की जीवनी भी लिखी। उसने दावा किया है कि अलेक्ज़ेंडर पर लेखन कार्य करने के लिए उसने विश्वसनीय प्राथमिक स्रोतों के रूप में अलेक्ज़ेंडर के पूर्वी अभियान में शामिल टॉलेमी और ऐरिस्टोबुलस की कृतियों को आधार बनाया है। उसने अलेक्ज़ेन्डर पर *''ऐनाबेसिस''* ("देश भ्रमण") भी लिखा जिसमें सात पुस्तकें शामिल हैं। भारत पर लिखी उसकी पुस्तक *इंडिके* ऐनाबेसिस का ही एक छोटा भाग है।

स्रोत: जेम्स रॉम द्वारा संपादित *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट: सलैक्शन्स फ्रॉम एरियन, डियोडोरस, प्लूटार्क एंड क्युटस*, हैकेट प्रकाशन कंपनी, इंडियानापोलिस/केम्ब्रिज।

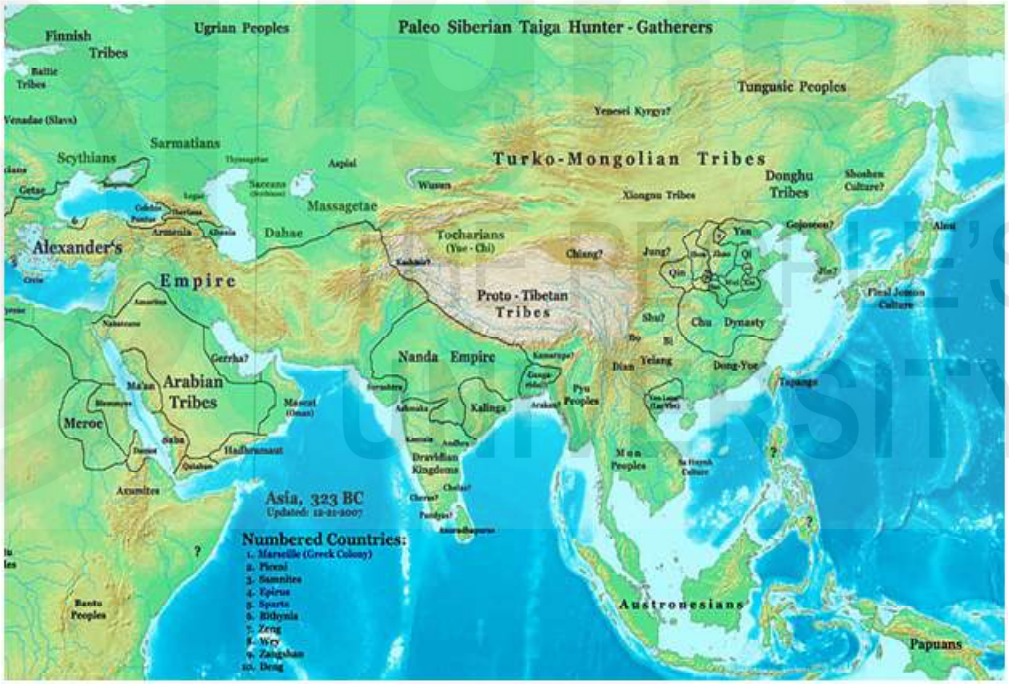

मानचित्र 14.2: 323 बी.सी.ई. में एशिया का मानचित्र: अलेक्ज़ेंडर के साम्राज्य और पड़ोसी राज्यों के संबंध में नंद साम्राज्य। स्रोत: विकिपीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Asia_323bc.jpg).।

14.4 एरियन की *इंडिके*

एरियन ने स्वयं को एक दार्शनिक, राजनेता, सैनिक और इतिहासकार के रूप में वर्णित किया है। यह अलेक्ज़ेंडर के एशियाई अभियान के साथी के रूप में अधिक विख्यात हैं। इनकी लेखनी में सटीकता और स्पष्टता उल्लेखनीय है। भारत पर इनकी पुस्तक *इंडिके* आयोनी बोली (ग्रीक) में लिखी गयी है। इसमें तीन भाग सम्मिलित हैं:

- मेगस्थनीज़ और एराटोस्थिनिस द्वारा भारत के विवरणों पर आधारित पहला भाग भारत का एक सामान्य विवरण है;
- दूसरा भाग नियरकस की सिन्धु यात्रा का लेखा-जोखा है; और
- तीसरा भाग यह प्रमाणित करता है की अत्यधिक गर्मी के कारण ही दुनिया के दक्षिणी हिस्से आबादी के योग्य नहीं थे।

इंडिके के पहले भाग का अनुवाद जे. डब्ल्यू. मैक क्रिंडल द्वारा किया गया है और यह इतिहास, भूगोल, पुरातत्व और ग्रीक मूल शब्दों के साथ संस्कृत के मूल नामों के भी संदर्भ प्रस्तुत करता है। मेगस्थनीज़ और नियरकस के विवरणों के आधार पर एरियन भारत के बारे में संक्षिप्त और रोचक विवरण प्रस्तुत करता है। वह भारत विशेष की सीमाओं की जानकारी से आरम्भ करता है जो उसके अनुसार सिन्धु के पूर्व में पड़ती थीं। वह उत्तर में हिंदुकुश, पश्चिम में सिंधु नदी और दक्षिण में पट्टल का उल्लेख करके भारत की सीमाओं को चित्रित करता है। अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने पट्टल की पहचान निरंकोल या हैदरबाद से की है जिसका पुराना नाम पाटशिला था। उनके अनुसार गंगा घाटी के पूर्वी भाग प्रसियाका के विपरीत पश्चिमी भाग को ब्राह्मण पाताल शब्द से पुकारते थे। "पाताल" संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है पाताललोक। और यही संज्ञा पश्चिम की भूमि को भी दी गई है।

मैक क्रिंडल के अनुसार स्ट्रैबो द्वारा दिए गए नापतोल के परिमाण एरियन की तुलना में अधिक सटीक हैं। हालाँकि कनिंघम की टिप्पणी है कि एरियन द्वारा बताए गए माप देश के वास्तविक आकार के निकट और बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये दर्शाते हैं कि भारतीयों को अपने इतिहास के शुरुआती चरण में ही अपनी मातृभूमि के आकार और सीमा का बहुत सटीक ज्ञान था।

सिंधु और गंगा की विभिन्न सहायक नदियों, भारत की जातियों एवं जनजातियों का उल्लेख करने के लिए उसने मेगास्थनीज़ के विवरण से सहायता ली है। एरियन बहुत विस्तार से नदियों, प्राचीन "बर्बर भारतीयों" और खानाबदोश जीवन पर उनकी निर्भरता की चर्चा करता है। वह शक्तिमान अलेक्ज़ेंडर के आगमन से पहले भारत आये डायोनिसस का उल्लेख करता है जिसने भारत को जीता और भारतीयों को कानूनों, कृषि और हल से परिचित कराया।

एरियन ने पाटलिपुत्र का भी वर्णन किया है जिसे वह 'पालिम्बोथरा का सबसे बड़ा शहर' कहता है। अलेक्ज़ेंडर कनिंघम का कहना है कि एरियन द्वारा पालिबोथरा के लोगों को 'प्रासी' नाम देने पर स्ट्रैबो और प्लिनी सहमत थे। आधुनिक लेखकों ने इसकी तुलना संस्कृत शब्द प्राच्य या 'पूर्वी' से की है। कनिंघम का यह भी मानना है की 'प्रासी' शब्द ग्रीक भाषा के 'पलासा' से लिया गया है जो मगध, जिसकी राजधानी पालीबोथरा थी, को संबोधित करता है।

एरियन बताता है की भारत में गुलामी की प्रथा नहीं थी। वह हाथियों द्वारा शिकार करने के तरीकों और सोने की खुदाई करने वाली चींटियों के बारे में भी लिखता है हालाँकि वह खुद इस बारे में विश्वस्त नहीं है क्योंकि मेगस्थनीज़ द्वारा सोने की खुदाई करने वाली चींटियों का वर्णन कहासुनी पर आधारित था।

14.5 अलेक्ज़ेंडर के उत्तराधिकारी और सेल्यूकस निकेटर

भारत और फ़ारस से वापिस आने के बाद अलेक्ज़ेंडर ने अपने साम्राज्य का संगठन व्यवस्थित ढंग से नही किया। अधिकांश विजित राज्यों को उनके शासकों को ही दे दिया गया जिन्होंने उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया था। उसके विजित भूखंड को यूनानी नियंत्रकों के अधीन तीन भागों में विभाजित कर दिया गया। अस्थिरता और अराजकता शीघ्र ही साम्राज्य में फ़ैल गयी। विभिन्न क्षत्रपों के अधीन कई उत्तराधिकारी राज्य उभरे और मैसिडोनिया ने अपना महत्व खो दिया।

अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु के समय क्षत्रपों की संख्या 20 थी। 308 बी.सी.ई. तक आते-आते उन्होंने मैसेडोनियन साम्राज्य के साथ सभी संबंधों को समाप्त कर दिया और एंटीगोनस, सेल्यूकस और टॉलेमी के नेतृत्व में तीन अलग-अलग समूह बन गये। बेबीलोनिया के *क्षत्रप* के शिखर पर सेल्यूकस निकेटर था। एंटीगोनस द्वारा बेबीलोन से बाहर निकाले जाने के बाद उसने पुनः अपना राज्य प्राप्त किया और अपने प्रभुत्व को सिंधु तक पहुँचाने में सफल रहा। उसने पूर्व के सभी क्षत्रपों को अपने अधीन कर लिया। इस बीच चंद्रगुप्त मौर्य गंगा के मैदान पर अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। वह अलेक्ज़ेंडर के प्रस्थान के बाद पश्चिमोत्तर क्षेत्र में उभरी अनिश्चितता का लाभ उठाते हुए सिंधु तक पहुंच गया। वहाँ उसका सामना सेल्यूकस निकेटर से हुआ जिसका प्रभुत्व उस क्षेत्र में था। सिंध के मैदान में दोनों की सेनाओं का आमना-सामना हुआ, यह क्षेत्र सेल्यूकस निकेटर का गढ़ था किन्तु लड़ाई में चन्द्रगुप्त की जीत हुयी। 303 बी.सी.ई. की संधि की शर्तों के अनुसार पूर्वी अफ़गानिस्तान, मकरान और बलूचिस्तान के सेल्यूसीड प्रदेश चंद्रगुप्त को मिल गए, बदले में सेल्यूकस ने 500 हाथी प्राप्त किए। सेल्यूकस ने अपनी बेटी का विवाह चंद्रगुप्त से करवाया। इस जीत के साथ पश्चिमोत्तर क्षेत्र के महत्वपूर्ण मार्ग मौर्य नियंत्रण में आ गए।

अंततः चन्द्रगुप्त व सेल्यूकस (यूनानियों) के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित हुए। यूनानी विवरणों में चन्द्रगुप्त 'सैंड्राकोटोस' के नाम से प्रसिद्ध था। सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज़ ने चंद्रगुप्त के दरबार में समय बिताया और *इंडिका* नामक ग्रन्थ लिखा। *इंडिका* मूल रूप से लुप्त हो गयी है किन्तु इसके कई अध्यायों को बाद के लेखकों जैसे डियोडोरस, स्ट्रैबो और एरियन ने अपनी कृतियों में प्रतिलिपित किया है। कई यूनानी राजदूतों जैसे मेगस्थनीज़, डायमाकोस, हेजिसेंड्रोस ने चन्द्रगुप्त के दरबार का दौरा किया और आपसी मैत्रीपूर्ण संबंध सावधानीपूर्वक आगे बढ़े।

14.6 अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण का प्रभाव

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान उतने महत्वपूर्ण नहीं थे जितने कि वह स्वयं विश्वास करता होगा। आर.के. मुखर्जी के अनुसार भारत में अलेक्ज़ेंडर के अभियान किसी शानदार सैन्य उपलब्धि का उदाहरण नहीं थे क्योंकि उसका सामना किसी भी शक्तिशाली भारतीय सम्राट के साथ नहीं हुआ। उसके अभियानों का प्रभाव मुख्यतः अप्रत्यक्ष था। ए.के. नारायण के अनुसार अलेक्ज़ेंडर के अनुशासित और संगठित अभियानों का छोटे राज्यों और रियासतों से कोई मुकाबला ही नहीं था यह तथ्य उत्तर-पश्चिम के लोगों ने समझ लिया था। चंद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य खड़ा करने के महत्व को समझा और नंद वंश को उखाड़ फेंकने के बाद संपूर्ण पंजाब और उत्तरी भारत को एकजुट किया। उसने न केवल दक्षिणी राज्यों को जीता, बल्कि चार क्षत्रपों – अरिया, अराकोशिया, गेड्रोशिया और पेरोपमिसेडिया – को भी एकीकृत किया जिन्हें सेल्यूकस ने अलेक्ज़ेंडर की मृत्यु के बाद चंद्रगुप्त को सौंप दिया था।

इस तरह यूनानियों और भारतीयों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने हुए थे। ग्रीक लेखक एथेनेअस के अनुसार भारतीय शासक एमिटोकट्स ने सीरिया के एंटिओकस प्रथम को मीठी शराब, अंजीर और एक सोफिस्ट (तार्किक-बुद्धिजीवी) भेजने के लिए लिखा था। इस संदर्भ में सीरियाई राजा ने जवाब दिया कि वह खुशी से मीठी शराब और अंजीर भेजेगा, किन्तु ग्रीस में एक सोफ़िस्ट नहीं बिकता। स्टैबो सैंड्रोकोट्टोस के बेटे एलिट्रोकैड्स के दरबार में डीयामकस को भेजने का उल्लेख करता है। प्लिनी मिस्र के टॉलेमी द्वितीय द्वारा एक और दूत डायोनिसियस के भेजे जाने का उल्लेख करता है। इसके अलावा, अशोक ने पश्चिम एशिया और मिस्र के यवनों के साथ भी करीबी संबंध बनाए रखे। ग्रीस के कांधार प्रदेश में पाए गए उसके तेरहवें शिलालेख में सीरिया के एंटिओकस द्वितीय, मिस्र के टॉलेमी फिलाडेल्फ़स द्वितीय, मैसिडोनिया के एंटीगोनस गोमातास, साइरेन के मगास और कोरिंथ के अलेक्ज़ेंडर के राज्यों में अशोक के धम्मविजय का उल्लेख है। अशोक द्वारा एंटीओकस द्वितीय और उसके पड़ोसी राज्य के मवेशियों और मनुष्यों की चिकित्सा एवं उपचार के भी संकेत मिलते हैं। देवानामप्रिय पियदस्सी के रूप में अशोक का वर्णन न केवल यूनानी राजाओं के बीच उसकी वर्तमान स्थिति को दर्शाता है, बल्कि पश्चिम के यूनानी राजाओं के मध्य उनके देवता-सदृष्य पद को भी दर्शाता है। अशोक के शिलालेखों की शैली डेरियस के शिलालेखों से प्रभावित प्रतीत होती है। कौटिल्य और मेगस्थनीज़, दोनों विदेशियों के कल्याण की देखरेख करने वाले एक राजविभाग का उल्लेख करते हैं जो अधिकतर यवन और फ़ारसी थे। तक्षशिला, सारनाथ, बसढ़ और पटना में प्राप्त पकी मिट्टी की कलाकृतियों में स्पष्ट यूनानी प्रभाव दिखाई देता है।

अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण ने बैक्ट्रिया और वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के हिस्सों में ग्रीक सत्ता की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। पुरातात्विक सिक्कों से लगभग 40 यवन वंश के शासकों की जानकारी मिलती है। स्ट्रैबो कहता है की इन राजाओं ने अलेक्ज़ेंडर से अधिक संख्या में जनजातियों को अपने वश में किया। इनमें मिनांडर और यूथीडेमस का पुत्र व बैक्ट्रियन जनता के राजा के रूप में विख्यात डेमेट्रियस सर्वाधिक उल्लेखनीय शासक थे। ये इंडो-ग्रीक राजा भारतीय धर्म और संस्कृति से समान रूप से प्रभावित थे। उनके कई सिक्कों पर भारतीय आकृतियाँ मिलती हैं। इंडो-ग्रीक राजा एंटियालकिडस ने तक्षशिला के निवासी तथा डायोन के पुत्र हीलियोडोरस को भारतीय राजा भागभद्र के दरबार में अपना राजदूत नियुक्त किया था। इसका विवरण मध्य प्रदेश में भिलसा के समीप स्थित बेसनगर में प्राप्त हीलियोडोरस के शिलालेख में मिलता है जिसमें उल्लेख किया गया है कि वह हिंदू धर्म के *भागवत* संप्रदाय का अनुयायी था। मिनांडर के कुछ सिक्कों पर पहिए की छवि अंकित है, विद्वानों का मानना है कि यह धार्मिकता का पर्याय समझे जाने वाले बौद्ध प्रतीक *'धर्मचक्र'* से सम्बन्धित है।

अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के कारण भारत का पश्चिमोत्तर क्षेत्र यूनानी संसार के साथ सीधे संपर्क में आया। समुद्र और भूमि मार्ग खुल गए, जिनके माध्यम से यूनानी व्यापारी और शिल्पकार दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचे। इस क्षेत्र में यूनानी बस्तियों की स्थापना की गई, उदाहरण के लिए काबुल क्षेत्र में अलेक्ज़ेंड्रिया, झेलम पर बाऊकेफला, सिंध में अलेक्ज़ेंड्रिया। अलेक्ज़ेंडर ने सिंधु के मुख से लेकर यूफ्रेट्स के बंदरगाहों और तटों की भौगोलिक खोज भी की। उसके इतिहासकारों ने उसके अभियानों की भौगोलिक योग्यता के संबंध में बहुमूल्य जानकारी दी है। भारतीय कालक्रम को एक ठोस आधार प्रदान करने के अतिरिक्त यूनानी वर्णन हमें भारतीय प्रथाओं जैसे *सती*, गरीब माता-पिता द्वारा बाजार में लड़कियों की बिक्री और बैलों की अच्छी नस्लों के बारे में बताते हैं। वास्तव में, अच्छी किस्म के 2,00,000 बैलों को अलेक्ज़ेंडर द्वारा भारत से मैसेडोनिया भेजा गया था। भारतीयों द्वारा बनाये रथ, नाव और जहाज़ों के आधार पर यूनानियों ने पाया की भारतीयों ने काष्ठकला के क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की थी।

बोध प्रश्न 2

1) एरियन की *इंडिके* पर कुछ पंक्तियाँ लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अलेक्ज़ेंडर के भारत पर आक्रमण का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

.....

14.7 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि भारतीय इतिहास के आरम्भ से ही भारत के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र ने आक्रमणकारियों का ध्यान आकर्षित किया। एकेमेनिड हमलों के बाद अलेक्ज़ेंडर ने उत्तर-पश्चिमी भारत की रियासतों और राज्यों पर विजय प्राप्त की। भारतीयों के वीरतापूर्ण संघर्ष और विरोध के बावजूद वह भारतीय शक्तियों को अपने अधीन करने में सफल रहा। उसने रात में ही हाइडस्पिस (झेलम) को पार किया और पोरस को हराया किन्तु उसकी वीरता से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने पोरस को अपना राज्य बनाए रखने की अनुमति दी। परन्तु वह चेनाब और रावी (एसेसीन्स, हाइड्रोटिस) से आगे नहीं जा पाया क्योंकि उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। हमने यह भी जाना कि एरियन के वर्णन अलेक्ज़ेंडर के अभियानों के इतिहास का मुख्य स्रोत हैं। एरियन ने अपनी पुस्तक *इंडिके* में कुछ तथ्यात्मक और कुछ काल्पनिक विवरण दिए हैं जो अन्य यात्रियों के विवरणों पर आधारित हैं। अलेक्ज़ेंडर के उत्तराधिकारियों में सबसे उल्लेखनीय सेल्यूकस निकेटर था जो चंद्रगुप्त मौर्य के साथ लड़ा किन्तु हार गया। उन्होंने मौर्य राजा के दरबार में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ को भेजा जिसने अपनी *इंडिका* में चन्द्रगुप्त के शासनकाल का दिलचस्प वर्णन किया है।

14.8 शब्दावली

एकेमेनिड : एकेमेनियन राजवंश के सदस्य जिन्हें एकेमेनिड (फ़ारसी में हखमनिशिया) भी कहा जाता है (559-330 बी.सी.ई.)। यह प्राचीन ईरानी राजवंश था जिसके राजाओं ने एकेमेनिड साम्राज्य की स्थापना और उस पर शासन किया।

दायादोची : अंग्रेज़ी ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार, *दायादोची* सिकंदर महान के छह सेनानायकों – एंटीगोनस, एंटीपेटर, कैसेंडर, लाइसीमेकस, टॉलेमी तथा सेल्यूकस को संदर्भित करता है

जिनके बीच 323 बी.सी.ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य विभाजित हो गया। यह ग्रीक शब्द 'दायादोखोई' (*diadokhoi*) से लिया गया है जिसका अर्थ है, 'उत्तराधिकारी'।

क्षत्रप : प्राचीन फ़ारसी साम्राज्य के प्रांतों के नियंत्रक।

यवन : प्रारंभिक भारतीय साहित्य में इस शब्द का अर्थ ग्रीक (यूनानी) या किसी अन्य विदेशी से है।

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 14.2

2) देखें भाग 14.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 14.4

2) देखें भाग 14.6

14.10 संदर्भ ग्रंथ

बोसवर्थ ए. बी. (1996). द हिस्टॉरिकल सैटिंग ऑफ़ मेगास्थनीज़ इंडिका. *क्लासिकल फिलोलॉजी.* वॉल्यूम 91 (2), अप्रैल 1996, पृ. सं. 113-127।

बोसवर्थ बी. (2002). *द लिगेसी ऑफ अलेक्ज़ेंडर : पॉलिटिक्स, वॉरफ़ेयर एंड प्रोपेगेंडा अंडर द सक्सेस्सर्स.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मैकक्रिंडल, जे. डब्ल्यू. (1877). *एंशियंट इंडिया एज़ डिस्क्राइब्ड बाय मेगस्थनीज़ एंड एरियन* मेगस्थनीज़ की *इंडिका* के एक भाग का अनुवाद जिसे डॉ. श्वान्बैक द्वारा संकलित किया गया और एरियन की *इंडिके* का पहला भाग. थैकर स्पिंक एंड कंपनी।

नारायण, ए.के. (1965). अलेक्ज़ेंडर एंड इंडिया, ग्रीस एण्ड रोम. *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट.* वाल्यूम 12, नं. 2, अक्टूबर 1965. केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. सं. 155-165।

रॉम जेम्स (सं.) (2005). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट : सेलेक्शन्स फ्रॉम एरियन, डियोडोरस, प्लूटार्क एंड क्युंटस कर्टियस.* हैकेट प्रकाशन कंपनीः इंडियानापोलिस/केम्ब्रिज।

शवार्ज़ फ्रांज फर्डिनेंड (1975). एरियन'स इंडिके ऑन इंडियाः इंटेंशन एंड रियलिटी, *ईस्ट एंड वेस्ट.* वाल्यूम 25, नं. 1/2 (मार्च-जून 1975), पृ. सं. 181-200।

टार्न, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1948). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट, वॉल्यूम 1, नैरेटिव.* केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

वर्थिंगटन, इयान (स.) (2003). *अलेक्ज़ेंडर द ग्रेट : ए रीडर.* रॉउटलेज।

इकाई 15 मगध का उदय*

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 स्रोतों पर एक नज़र

15.3 मगध के उदय के कारण

15.4 मौर्यों से पहले मगध का राजनीतिक इतिहास

15.5 मौर्य शासकों के अधीन मगध

15.6 अशोक की मृत्यु के समय मगध

15.7 सारांश

15.8 शब्दावली

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.10 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम संक्षेप में मगध साम्राज्य के राज्य-क्षेत्र के विस्तार की चर्चा करने जा रहे हैं। इससे आपको यह समझने में मदद मिलेगी कि मगध एक ''साम्राज्य'' के रूप में क्यों और कैसे विकसित हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- उन स्रोतों का उल्लेख कर सकेंगे, जिनकी सहायता इतिहासकार इस काल के इतिहास-लेखन के लिए लेते हैं;
- मौर्य शासन से पूर्व मगध के दो शताब्दियों के राजनीतिक इतिहास का संक्षेप में वर्णन कर सकेंगे;
- चंद्रगुप्त और बिंदुसार जैसे आरंभिक मौर्य शासकों और उनके राज्य-विस्तार संबंधी कार्यकलापों की जानकारी दे सकेंगे;
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण और राज्याभिषेक के संदर्भ को स्पष्ट कर सकेंगे और कलिंग युद्ध का महत्व बता सकेंगे; और
- यह जान सकेंगे कि अशोक की मृत्यु के समय मगध ''साम्राज्य'' की सीमाएं क्या थीं।

15.1 प्रस्तावना

इकाई 13 में आप *जनपद* और *महाजनपद* से परिचित हो चुके हैं। इनकी जानकारी हमें आरंभिक बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलती है। ये *जनपद* और *महाजनपद* विंध्य के उत्तर में स्थित थे। इनका काल प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। इस इकाई में हम एक महत्वपूर्ण *महाजनपद* मगध के विकास पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे हैं। पिछले दो सौ वर्षों से इतिहासकारों का ध्यान मगध की ओर जाता रहा है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि यह जाने-माने मौर्य साम्राज्य का केन्द्र-बिन्दु था।

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-5 से ली गई है।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. से ही मगध राज्य का विस्तार शुरू हो गया था, हालांकि नंदों और मौर्यों के अधीन इसमें तेजी आई। विभिन्न भागों में अशोक के अभिलेखों की उपस्थिति से यह संकेत मिलता है कि सुदूर पूरब और दक्षिण के क्षेत्रों को छोड़कर भारतीय उपमहाद्वीप का अधिकांश भाग मगध संप्रभुता के अधीन था। मगध के क्षेत्रीय विस्तार पर विस्तार से चर्चा करने के बाद हम इस तथ्य पर भी विचार करेंगे कि मगध साम्राज्य की बनावट और संरचना में इतनी विविधता थी और इसका फैलाव इतना व्यापक था कि प्रत्यक्षतः राजनीतिक नियंत्रण रखना संभवतः बहुत कठिन था। इससे शायद यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्यों अशोक ने समाज में व्याप्त तनाव को कम करने के लिए *धम्म* का सहारा लिया। इसकी विस्तार से चर्चा इकाई 17 में की गई है।

15.2 स्रोतों पर एक नज़र

आरम्भिक बौद्ध और जैन साहित्य में मध्य गंगा के मैदान, जहां मगध स्थित था, की घटनाओं और परम्पराओं का काफ़ी उल्लेख किया गया है। बौद्ध परम्परा का कुछ साहित्य *त्रिपिटकों* और *जातकों* में संगृहित है। जैन परम्परा के दो ग्रंथ – *अचारंग सूत्र* और *सूत्रकृतांग* – अन्य ग्रन्थों से पुराने माने जाते हैं, हालांकि ये सभी ग्रंथ छठी शताब्दी बी.सी.ई. के बाद विभिन्न चरणों में लिखे और संगृहित किए गए। जैन और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थ आरंभिक राजनीतिक गतिविधियों को बाद में संगृहित हुये ब्राह्मण ग्रंन्थों (जैसे *पुराण*) से अधिक प्रामाणिक रूप में और सीधे तौर पर प्रस्तुत करते हैं। *पुराणों* में गुप्तकाल तक के शाही राजवंशों का इतिहास प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। *महावंश* और *दीपवंश* प्रमुख परवर्ती बौद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ हैं, जिनका संग्रहण श्रीलंका में हुआ। ये ग्रंथ अशोक के शासनकाल के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त, *दिव्यवदान* भारत के बाहर तिब्बत और चीनी बौद्ध स्रोतों में सुरक्षित एक महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ है। परन्तु इन स्रोतों का उपयोग काफ़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि इनकी रचना भारत से बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के संदर्भ में हुई थी।

विदेशी स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक और लगभग समकालीन हैं। इनमें यूनानी और लैटिन के ''क्लासिकल ग्रंथों'' से प्राप्त सूचनाएं उल्लेखनीय हैं। ये उन लोगों के लिखे यात्रावृतांत हैं जिन्होंने उस समय भारत का भ्रमण किया। इनमें मेगस्थनीज़ काफ़ी चर्चित और जाना-पहचाना नाम है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत आया था और वह राजा के दरबार में भी गया था। मेगस्थनीज़ का वृतांत हमें प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. के स्ट्रैबो और डियोडोरस तथा द्वितीय शताब्दी सी.ई. के एरियन के यूनानी ग्रंथों के द्वारा मिलता है। छठी से चौथी शताब्दी बी.सी.ई. तक उत्तर-पश्चिमी भारत विदेशी शासकों के अधीन था। अतः अकेमेनी (ईरानी) शासन और बाद में सिकन्दर के आक्रमण के विषय में जानकारी हमें फ़ारसी अभिलेखों और डियोडोरस की रचना जैसे यूनानी स्रोतों से मिलती है।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* की खोज 1905 में हुई। यह मौर्य काल से संबंधित महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। हाल ही में *अर्थशास्त्र* के लेखन-काल के संबंध में नए विचार सामने आए हैं, जिनके अनुसार इस ग्रंथ का लेखन पूर्ण रूप से मौर्य काल में नहीं हुआ था। सांख्यिकीय गणना के आधार पर यह मान्यता सामने आई है कि *अर्थशास्त्र* के कुछ अध्यायों का लेखन सामान्य युग की प्रथम दो शताब्दियों में हुआ होगा। इसके बावजूद कई अन्य विद्वान इस ग्रन्थ के अधिकांश हिस्से को मौर्य काल का लेखन मानते हैं। उनकी मान्यता है कि मूल ग्रन्थ चंद्रगुप्त के मंत्री कौटिल्य द्वारा लिखा गया था; बाद के वर्षों में अन्य विद्वानों ने इसका विस्तार और सम्पादन किया।

अभिलेख और सिक्के मौर्य काल की जानकारी के अन्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो प्राचीन भारत में मौर्य काल की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। हालांकि इस काल के सिक्कों पर राजा का नाम अंकित नहीं है और उन्हें आहत (Punch Marked) सिक्के कहा जाता है क्योंकि उन पर कई प्रकार के चिन्ह अंकित होते थे। हालांकि इस प्रकार के पंच मार्क्ड सिक्के लगभग पांचवी शताब्दी बी.सी.ई. से ही मिलते लगते हैं, परन्तु मौर्य काल के पंच मार्क्ड सिक्के इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थे कि वे शायद एक केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा जारी किए जाते थे क्योंकि उनके चिन्हों में एकरूपता है। सिक्कों के अलावा अन्य अभिलेखीय सामग्री, खासकर अशोक मौर्य के शासन के संदर्भ में, महत्वपूर्ण सूचनाएं देती है और यह अपने आप में एक विशेष बात है। अशोक के 14 वृहत शिलालेख, सात लघु शिलालेख, सात स्तम्भ लेख और अन्य अभिलेख पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के महत्वपूर्ण नगरों और व्यापार मार्गों पर पाए गए हैं। ये अभिलेख अशोक के शासन के अंतिम चरण में मौर्य साम्राज्य के विस्तार के साक्षात प्रमाण हैं।

हाल के वर्षों में, पुरातात्विक जानकारी एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में सामने आई है और इससे गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं। हम जानते हैं कि उत्तरी काली पॉलिश किए बर्तनों के काल के पुरातात्विक साक्ष्य उस समय से सम्बद्ध हैं जब शहरों और नगरों का उदय हुआ। पुरातात्विक साक्ष्य इस तथ्य को सामने लाते हैं कि मौर्य काल में लोगों के भौतिक जीवन में और भी परिवर्तन आए। पुरातत्व की सहायता से ही हम यह भी जान पाते हैं कि भौतिक संस्कृति के कई तत्व गंगा घाटी से बाहर फैलने लगे और वे मौर्य शासन से संबंधित माने जाने लगे।

15.3 मगध के उदय के कारण

इकाई 13 में आपको आमतौर पर मगध के राज्य को 16 *महाजनपदों* में से एक के रूप में अवगत कराया जा चुका है। ये *महाजनपद* गंगा घाटी में एक बड़े क्षेत्र पर स्थित थे। कुछ उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में भी स्थित थे। हालांकि, चार सबसे शक्तिशाली राज्यों में से तीन – कोसल, वज्जि संघ और मगध – मध्य गंगा घाटी में स्थित थे और चौथा, अवन्ति पश्चिमी मालवा में था। मगध को चारों ओर से घेरने वाले राज्यों में पूर्व में अंग, उत्तर में वज्जि संघ, इसके तत्काल पश्चिम में काशी का राज्य और पश्चिम में कोसल राज्य थे।

मगध की पहचान वर्तमान बिहार राज्य में पटना, गया, नालंदा और शाहबाद के कुछ भागों से की जा सकती है। भौगोलिक रूप से मगध की स्थिति ऐसी थी कि इसके आसपास बड़े इलाकों में जलोढ़ मिट्टी वाली ज़मीनें थीं। यह भूमि काफ़ी उपजाऊ साबित हुई और लोहे के औज़ारों की मदद से इसको आसानी से जोता जा सकता था। प्रारंभिक बौद्ध ग्रन्थों में ऐसा वर्णन है कि धान की विभिन्न किस्मों को उगाया जाता था। इसने किसानों को पर्याप्त अधिशेष पैदा करने में सक्षम बनाया जिसने करों की मात्रा को बढ़ाया।

मगध को हाथियों की आसान आपूर्ति का लाभ भी था। वास्तव में, मगध उन कुछ क्षेत्रों में से एक था जिन्होंने युद्धों में बड़े पैमाने पर हाथियों का इस्तेमाल किया और इस तरह से दूसरे क्षेत्रों पर बढ़त हासिल कर ली थी। हाथी आसानी से पूर्व दिशा के क्षेत्रों से प्राप्त किये जा सकते थे। ग्रीक (यूनानी) स्रोतों के अनुसार, नन्दों ने 6000 हाथियों की सेना कायम की थी। घोड़ों और रथों पर हाथियों की श्रेष्ठता इसलिए भी थी क्योंकि उनका उपयोग दलदली भूमि और क्षेत्रों में कूच के लिए किया जा सकता था जहाँ कोई सड़क या परिवहन के अन्य साधन नहीं थे।

आर. एस. शर्मा का मानना है कि मगध के अपराम्परागत सामाजिक ढाँचे के स्वरूप के कारण यह शासकों की विस्तारवादी नीतियों के प्रति ज़्यादा संग्रहणशील था। मगध में वैदिक और गैर-वैदिक लोगों का एक सुखद मिश्रण था जिनका दृष्टिकोण रूढ़िवादी वैदिक समाजों की तुलना में अलग था। दिलचस्प बात यह है कि मगध की प्राचीनतम राजधानी राजगृह (गिरिव्रज) नदी के दक्षिण में स्थित थी न कि उसके करीब। राजगृह पाँच पहाड़ियों से घिरा हुआ था और अभेद्य साबित हुआ। इससे ना केवल रणनीतिक स्थिति का लाभ मिला, बल्कि लोहे से घिरे पपड़ीदार पहाड़ी क्षेत्र भी इसके आस-पास मौजूद थे। यह भी सुझाव दिया गया है कि तांबे के साथ-साथ वर्तमान दक्षिण बिहार क्षेत्र के जंगलों तक इसकी पहुँच प्रभावी रूप से बता सकती है कि प्रारंभिक मगध नरेशों ने गंगा घाटी के सबसे उपजाऊ मैदानों को अपनी राजधानी के रूप में नहीं चुना बल्कि उसे अपेक्षाकृत एक अलग-थलग क्षेत्र में बनाया। मगध की राजधानी हालांकि पाटलिपुत्र (मूल रूप से पाटली ग्राम) में स्थानान्तरित कर दी गई जो गंगा, गंडक, सोन और पुनपुन जैसी कई नदियों के संगम पर स्थित था। उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व की दिशा में गतिशील सेना के द्वारा नदियों को संचार मार्ग के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता था। इसके अलावा, नदियों से घिरे होने के कारण यह भूमि अभेद्य हो गयी जिससे वास्तव में यह *जलदुर्ग* के रूप में काम कर रही थी। मौर्यों के अन्तर्गत पाटलिपुत्र मगध की राजधानी बन गयी। इसने मगध को *उत्तरापथ* को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने में सक्षम बनाया, जो हिमालय की तलहटी के साथ-साथ गंगा नदी के उत्तर में स्थित था। मगध को विभिन्न क्षेत्रों से जोड़ने और नदी में भारी परिवहन को संभव बनाने के लिए नदी ने एक प्रमुख संचार मार्ग के रूप में कार्य किया। इस प्रकार मगध को अपने समकालीन राज्यों पर कुछ स्वाभाविक अनूकूल परिस्थितियाँ प्राप्त थीं, हालांकि इनमें से कुछ, जैसे इसके दक्षिण-पश्चिम में अवन्ति, उत्तर-पश्चिम में कोसल और उत्तर में वज्जि संघ छठी शताब्दी बी.सी.ई. की शुरुआत में समान रूप से शक्तिशाली थे।

हाल के शोधों ने सुझाव दिया है कि मगध और अवन्ति जैसे राज्यों की लोहे के खनन क्षेत्रों तक पहुंच ने इन्हें ना केवल युद्ध के लिए अच्छे हथियारों का उत्पादन करने में सक्षम बनाया, बल्कि कई अन्य तरीकों से भी फ़ायदा पहुँचाया। इसने कृषि व्यवस्था के विस्तार को सुविधाजनक बनाया और इस प्रकार करों के रूप में पर्याप्त अधिशेष के उत्पादन में भी मदद की। इसकी बदौलत इसने उन्हें अपने क्षेत्रीय आधार को विस्तृत और विकसित करने में सक्षम बनाया। अवन्ति, यह ध्यान दिया जाना चाहिए, काफ़ी समय के लिए मगध का एक गंभीर प्रतिद्वन्द्वी बन गया और वह पूर्वी मध्य प्रदेश में लोहे की खानों से अधिक दूर स्थित नहीं था। अवन्ति ने कौशाम्बी के वत्सों को हराया और मगध पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अजातशत्रु ने इस खतरे की प्रतिक्रिया में राजगीर की किलाबन्दी शुरू की, जिसकी दीवारों के अवशेष आज भी देखें जा सकते हैं। हालांकि अन्ततः आक्रमण नहीं हुआ।

मगध एक ऐसे क्षेत्र में स्थित था जिसमें इमारती लकड़ी की प्रचुरता थी। मेगस्थनीज़ ने मगध में लकड़ी की दीवारों और घरों के बारे में टिप्पणी की है। छठी शताब्दी बी.सी.ई. के लकड़ी के घेरे के अवशेष पटना के दक्षिण में पाये गये हैं। इमारती लकड़ी का उपयोग आसानी से नावों के निर्माण के लिए किया जा सकता था जिसके द्वारा मगध की सेना पूर्व और पश्चिम में आगे बढ़ सकती थी।

बोध प्रश्न 1

1) पांच पंक्तियों में उन महत्वपूर्ण स्रोतों का उल्लेख कीजिए जिनसे मगध के इतिहास की पुनर्रचना में सहायता मिली है।

.....

.....

.....

.....

.....

2) उन तीन महत्वपूर्ण कारकों का उल्लेख कीजिए जिनसे मगध राज्य के विकास में सहायता मिली।

.....

.....

.....

.....

.....

15.4 मौर्यों से पहले मगध का राजनीतिक इतिहास

छठी-पांचवी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान बिम्बिसार के नेतृत्व में मगध मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में तेजी से उभरा। बिम्बिसार बुद्ध का समकालीन था। बिम्बिसार मगध का प्रथम महत्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने कोसल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस विवाह में उसे काशी का एक जिला दहेज के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका संबंध सौहार्दपूर्ण था। इन कूटनीतिक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। मगध के उत्तर में अंग राज्य था, जिसकी राजधानी चम्पा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थी। चम्पा एक महत्वपूर्ण नदी-बंदरगाह था। कहा जाता है कि बिम्बिसार के आधिपत्य में 80,000 गांव थे। परम्परागत सूत्रों से पता चलता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को बंदी बना लिया था और वह (बिम्बिसार) भूख से तड़प-तड़प कर मर गया था। ऐसा माना जाता है कि यह घटना 492 बी.सी.ई. के आसपास घटी होगी।

आंतरिक समस्याओं और गद्दी पर अजातशत्रु के बैठने से मगध की नियति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मगध के नए राजा ने आक्रामक नीति अपनाई और अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार किया। उसने काशी पर अधिकार कर लिया और अपने मामा, कोसल के नरेश प्रसेनजित से सौहार्द का संबंध समाप्त कर उन पर आक्रमण कर दिया। गंगा के दक्षिण तक फैला हुआ वज्जि गणराज्य अजातशत्रु के आक्रमण का अगला निशाना बना। वज्जि संघ के साथ युद्ध का सिलसिला लगभग 16 वर्षों तक चलता रहा। अंत में अजातशत्रु वहां आंतरिक कलह पैदा कर धोखे से उसे पराजित करने में सफल हुआ। अपने शक्तिशाली शत्रु अवंति पर आक्रमण की पूरी तैयारी अजातशत्रु ने कर ली थी परन्तु आक्रमण किन्हीं कारणों से सम्पन्न न हो सका। फिर भी, उसके शासनकाल में काशी और वैशाली (वज्जि *महाजनपद* की राजधानी) मगध के अधीन आ चुके थे। इस प्रकार, मगध गांगेय प्रदेश में सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा।

यह माना जाता है कि अजातशत्रु ने 492 से 460 बी.सी.ई. तक राज किया। उदयन (460-444 बी.सी.ई.) उसका उत्तराधिकारी था। उदयन के राज्यकाल में मगध का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। यह कहा जाता है कि उसने गंगा और सोन के मुहाने पर एक किला बनवाया था। उदयन के शासनकाल

में राज्य क्षेत्र काफ़ी विस्तृत था, परन्तु वह इन पर कुशल शासन करने में असक्षम था। उदयन के बाद चार शासक एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, परन्तु वे अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसा माना जाता है कि अंतिम राजा को मगध की जनता ने राज सिंहासन से उतार दिया। 413 बी.सी.ई. में बनारस के राज्यपाल शिशुनाग को राजा नियुक्त किया गया। शिशुनाग वंश ने थोड़े समय तक राज्य किया और महापद्मनन्द ने राज्य पर अधिकार कर नंद वंश की शुरुआत की।

326 बी.सी.ई. उत्तर-पश्चिमी भारत पर सिकन्दर के समय मगध और लगभग सम्पूर्ण गंगा के मैदान में नन्द वंश का शासन था। यहीं से भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक काल शुरू होता है। इस कारण नन्दों को कभी-कभी भारत का प्रथम साम्राज्य-निर्माता कहा जाता है। उन्हें केवल मगध का राज्य विरासत में मिला था और उसके बाद उन्होंने उसकी सीमा का और विस्तार किया।

परवर्ती *पुराण* ग्रंथों में महापद्मनन्द का उल्लेख क्षत्रियों के विनाशकर्त्ता के रूप में हुआ है। यह भी कहा गया है कि उसने समकालीन सभी राजघरानों से शक्ति छीन ली। यूनानी ग्रन्थ नंद साम्राज्य की शक्ति का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि नंदों के पास विशाल सेना थी जिसमें 20,000 घुड़सवार, 2,00,000 पैदल सैनिक, 2,000 रथ और 3,000 हाथी थे। इस बात के भी संकेत मिले हैं कि नंदों के संबंध दक्कन और दक्षिण भारत से भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में इस बात का संकेत है कि कलिंग (आधुनिक उडीशा) के कुछ हिस्सों पर नंद वंश का अधिकार था। राजा खारवेल का शासनकाल प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. के मध्य में था।

दक्षिण कर्नाटक के कुछ बाद के अभिलेखों से भी पता चलता है कि नंद वंश के नेतृत्व में दक्कन के कुछ हिस्सों पर मगध का अधिकार था। अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना है कि महापद्मनंद के शासनकाल के अंतिम चरण में मगध साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण का पहला चरण समाप्त हो गया। सिकन्दर के आक्रमण का हवाला देते हुए यूनानी ग्रंथ उल्लेख करते हैं कि इस समय उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र छोटे-छोटे राज्यवंशों के बीच विभक्त था। यह भी स्पष्ट है कि मगध राज्य और यूनानी विजेता के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ।

321 बी.सी.ई. में नंद वंश का पतन हो गया। इस दौरान नौ नंद राजाओं ने शासन किया और यह कहा जाता है कि अपने शासन के अंतिम दिनों में वे काफ़ी अलोकप्रिय हो गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस स्थिति का फ़ायदा उठाया और मगध के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद मगध गंगा घाटी का सर्वशक्तिमान राज्य बना रहा। मगध की भौगोलिक स्थिति उसकी सफलता के कारणों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त, लोहा उसे सहज सुलभ था और प्रमुख स्थल और जल व्यापार मार्ग पर उसका नियंत्रण था। इन सभी का उल्लेख इस इकाई में पहले किया जा चुका है।

15.5 मौर्य शासकों के अधीन मगध

डी. डी. कोसाम्बी का यह मानना है कि सिकन्दर के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर आक्रमण का तात्कालिक और अप्रत्याशित परिणाम यह हुआ कि इसने सम्पूर्ण देश पर मौर्यों की विजय का रास्ता प्रशस्त कर दिया। उनका तर्क है कि इससे पंजाब के गणराज्य कमज़ोर हो गए और चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मगध की सेना को संपूर्ण पंजाब पर विजय हासिल करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। गंगा घाटी के अधिकांश भाग पर मगध का पहले से ही अधिकार था। प्राचीन ग्रंथ इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त

सिकन्दर से मिला था और उसने सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने की सलाह दी थी जो उस समय अलोकप्रिय नंदों के अधीन था। हालांकि इस तथ्य की जांच करना कठिन कार्य है, परन्तु भारतीय और अन्य ''क्लासिकल स्रोत'' इस बात का हवाला देते हैं कि सिकंदर के वापस जाने से एक रिक्तता का माहौल कायम हो गया और इसके बाद चन्द्रगुप्त के लिये यूनानी दुर्गों पर अधिकार जमाना कठिन कार्य नहीं रहा। इसके बावजूद यह स्पष्ट नहीं है कि चन्द्रगुप्त ने यह कार्य गद्दी प्राप्त करने के बाद किया या उससे पहले ही उसने इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया था। कुछ विद्वान उसके राज्यारोहण का वर्ष 324 बी.सी.ई. मानते थे परन्तु अब 321 बी.सी.ई. का समय सर्वमान्य है।

भारतीय परम्परागत स्रोत इस बात का हवाला देते हैं कि चन्द्रगुप्त ने एक ब्राह्मण, कौटिल्य जो चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम से भी जाना जाता था, की सहायता से मगध का राज सिंहासन प्राप्त किया था। छठी शताब्दी सी.ई. में लिखे एक नाटक में भी यह कहा गया है कि 25 वर्ष की आयु में जिस समय चन्द्रगुप्त ने नंद वंश को अपदस्थ किया था, उस समय चन्द्रगुप्त एक कमज़ोर शासक था और वास्तविक सत्ता चाणक्य के हाथ में थी। *अर्थशास्त्र* के लेखक चाणक्य के बारे में बताया जाता है कि वह न केवल युद्ध के राजनीतिक सिद्धांतों का ज्ञाता था बल्कि वह साम्राज्य को ध्वस्त होने से बचाने के लिए उपयुक्त राज्य और समाज के गठन के विषय में भी अच्छी जानकारी रखता था।

हालांकि चंद्रगुप्त के शासन के आरंभिक वर्षों के बहुत कम तथ्य प्रकाश में आए हैं, परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि मौर्य परिवार का संबंध किसी निम्न जाति या कबीले से था। कुछ तथ्य इस बात का संकेत करते हैं कि चन्द्रगुप्त अंतिम नंद राजा और निम्न जाति की स्त्री मुरा का पुत्र था, इसी से उस परिवार का नाम मौर्य पड़ गया। बौद्ध स्रोतों के अनुसार वह पिप्लिवन के मोरिया वंश के परिवार का सदस्य था। इन स्रोतों के अनुसार चन्द्रगुप्त का संबंध उस शाक्य कबीले से था जिसमें बुद्ध का जन्म हुआ था। इस मत के अनुसार मौर्य नाम उसी कबीले के नाम से उद्भूत हुआ है। अप्रत्यक्ष रूप से इसका अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त एक पुराने सरदार का वंशज था और इस प्रकार उसका संबंध किसी न किसी प्रकार क्षत्रिय कुल से था। *पुराणों* में नंद वंश और मौर्य राजवंश में कोई संबंध नहीं बताया गया है, परन्तु वे भी मौर्यों को शूद्र का दर्जा देते हैं। हालांकि ब्राह्मण ग्रंथों की यह समझ उस आरंभिक मगध के समाज पर आधारित थी जिसमें अनैतिकता का बोलबाला था और जाति मिश्रण विद्यमान था। क्लासिकल ग्रंथों में भी अंतिम नंद राजा और चंद्रगुप्त (सैंड्राकोटस के रूप में) का उल्लेख है, परन्तु वे इन दोनों राज्य वंशों में किसी संबंध की बात नहीं करते। यह भी कहा गया है कि चन्द्रगुप्त के नाम में ''गुप्त'' लगा होना और अशोक द्वारा अपनी बेटी की शादी विदिशा के व्यापारी से करना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मौर्यों का संबंध वैश्य जाति से था।

हालांकि मौर्यों की जाति के संबंध में स्थिति अस्पष्ट है, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस राजवंश के अधिकांश महत्वपूर्ण राजाओं ने अपने जीवन के अंतिम प्रहर में असनातनिय धर्मों को ही अपनाया। दूसरी तरफ़, इस तथ्य को भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है कि चंद्रगुप्त के परामर्शदाता और प्रेरक शक्ति के रूप में ब्राह्मण कौटिल्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। *पुराणों* में तो यहां तक कहा गया है कि चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजा नियुक्त किया था। ऐसा कहा जा सकता है कि मौर्यों ने उस समाज में सत्ता प्राप्त की जो कभी भी रूढ़िवादी नहीं था। उत्तर-पश्चिम में विदेशियों के साथ काफ़ी सम्पर्क बना रहा। रूढ़िवादी ब्राह्मण परम्परा में मगध को हमेशा नीची दृष्टि से देखा गया है। मगध बुद्ध और महावीर के विचारों से भी काफ़ी प्रभावित था। इस प्रकार, एक सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्था के बीच चंद्रगुप्त मगध का सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ।

बहुत से इतिहासकार मौर्य राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के कारण ही उसे साम्राज्य का दर्जा देते हैं। इनके विचार से साम्राज्य निर्माण में चंद्रगुप्त की भूमिका काफ़ी महत्वपूर्ण थी क्योंकि उसने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विदेशी आक्रमणकारियों की बाढ़ को रोका और पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में स्थानीय राजाओं को कुचल दिया। इन सैनिक कार्यवाहियों का ठीक-ठाक और सीधा ब्यौरा कहीं नहीं मिलता है। अतः केवल मगध के परवर्ती शासकों से संबंधित स्रोतों में उसकी विजयों संबंधी यत्र-तत्र बिखरी सूचनाओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

भारतीय और ''क्लासिकल स्रोत'' इस बात का हवाला देते हैं कि चंद्रगुप्त ने नंद वंश के अंतिम राजा को अपदस्थ कर राजधानी पाटलिपुत्र पर अधिकार जमाया और 321 बी.सी.ई. में मगध के राज सिंहासन पर बैठा। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, चंद्रगुप्त के राजनीतिक उत्थान का संबंध उत्तर-पश्चिम में सिकन्दर के आक्रमण से भी था। 325 बी.सी.ई. से 323 बी.सी.ई. का काल इस दृष्टि से निर्णायक था क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के बाद उत्तर-पश्चिम में नियुक्त उसके सारे सेनापतियों का या तो कत्ल हो चुका था या वे वापस लौट गए थे। चन्द्रगुप्त ने इस स्थिति का फ़ायदा उठाया और इन इलाकों पर अधिकार जमा लिया। यहाँ इस बात को लेकर विवाद है कि चंद्रगुप्त ने पहले नंदों को उखाड़ फेंका या पहले विदेशियों को हराया। कुछ भी हो, यह कार्य 321 बी.सी.ई. तक सम्पन्न हो चुका था और राज्य के सुदृढ़ीकरण का रास्ता प्रशस्त हो गया था। सैनिक विजय की दृष्टि से चंद्रगुप्त मौर्य की पहली उपलब्धि 305 बी.सी.ई. के आसपास सेल्यूकस निकेटर से युद्ध करना था। सेल्यूकस सिंधु नदी के पश्चिमी प्रदेश पर राज करता था। 303 बी.सी.ई. में अंततः लम्बे युद्ध के बाद चंद्रगुप्त की विजय हुई और इस यूनानी दूत के साथ एक संधि हुई। इस संधि के मुताबिक चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी दिए, बदले में सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु का पश्चिमी इलाका दे दिया।

एक वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुआ। सेल्यूकस का राजदूत मेगस्थनीज़ कई वर्षों तक चंद्रगुप्त के दरबार में रहा। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, क्योंकि इस प्रकार सिंधु एवं गंगा का मैदान चंद्रगुप्त के नियंत्रण में आ गए और मौर्य साम्राज्य की सीमाएं निर्धारित हो गयीं।

अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि चंद्रगुप्त ने केवल उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और गंगा के मैदान पर ही अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित किया था बल्कि पश्चिमी भारत और दक्कन के क्षेत्रों पर भी उसका नियंत्रण था। केवल आधुनिक केरल, तमिलनाडु और भारत के उत्तर-पश्चिमी इलाके उसके राज्य-क्षेत्र में शामिल नहीं थे। परन्तु इन विजय-अभियानों का विस्तृत ब्यौरा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। यूनानी लेखकों ने अपने ग्रंथों में केवल इस बात का संकेत दिया है कि चंद्रगुप्त मौर्य ने 6,00,000 की अपनी विशाल सेना की सहायता से पूरे भारत को रौंद डाला था। दूसरी शताब्दी सी.ई. के मध्य के रुद्रदमन के जूनागढ़ शिला अभिलेख से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने सुदूर पश्चिम में सौराष्ट्र या काठियावाड़ पर विजय प्राप्त की थी और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इसमें चंद्रगुप्त के राजदूत पुष्यगुप्त का उल्लेख है जिसने प्रसिद्ध सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। इससे यह भी पता चलता है कि मालवा क्षेत्र भी चंद्रगुप्त के नियंत्रण में था। बाद के स्रोतों से यह भी पता चलता है कि दक्कन के क्षेत्र पर भी उसका अधिकार था। कुछ मध्ययुगीन पुरालेखों में इस बात का उल्लेख है कि चंद्रगुप्त ने कर्नाटक के कुछ हिस्सों को सुरक्षा प्रदान की थी।

संगम ग्रंथों में प्रारंभिक तमिल लेखकों (सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों में) ने ''मोरियार'' का उल्लेख किया है। यह माना जाता है कि यह मौर्यों का ही उल्लेख है जिनका दक्षिण से संपर्क हुआ था; परन्तु संभवतः यह चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के शासन

का हवाला देता है। अंततः जैन परम्परा से सूचना मिलती है कि अपने अंतिम दिनों में चंद्रगुप्त ने जैन धर्म अपना लिया था। उसने राजसिंहासन त्याग दिया और एक जैन साधु भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर चला गया। दक्षिण कर्नाटक में स्थित जैनों के तीर्थ स्थान श्रवणबेलगोल में उसने अपने अंतिम दिन बिताए और एक कट्टर जैन की तरह भूखे रहकर धीरे-धीरे प्राण त्याग दिए।

चंद्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार 297 बी.सी.ई. में गद्दी पर बैठा। भारतीय और क्लासिकल स्रोतों में उसका कम उल्लेख हुआ है। यूनानी बिन्दुसार को अमिट्रोकेट्स के नाम से पुकारते थे। यूनानी स्रोतों में इस बात का भी उल्लेख है कि बिन्दुसार का संबंध सीरिया के सेल्यूसिड वंश के राजा एंटियोकस प्रथम के साथ था, जिससे उसने मीठी मदिरा, सूखा अंजीर और एक तार्किक (प्राचीन यूनानी दर्शन तथा अलंकार या भाषणशास्त्र का शिक्षक) भेजने का आग्रह किया था।

सोलहवीं शताब्दी में तिब्बत के एक बौद्ध पुजारी तारानाथ ने अपनी रचना में बिंदुसार का युद्ध-संबंधी वर्णन लिखा है। कहते हैं उसने पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच का भाग जीत लिया जाता था और 16 नगरों के राजाओं और सरदारों को हरा दिया था। दक्षिण के प्रारंभिक तमिल कवियों ने भूमि पर मौर्यों के रथों के गरजते हुए चलने का ज़िक्र किया है। शायद यह बिदुसार का ही शासनकाल होगा। बहुत से इतिहासकारों का मानना है कि चूंकि अशोक ने केवल कलिंग पर ही विजय प्राप्त की थी, तुंगभद्रा तक का प्रदेश उसके पूर्व शासकों के काल में ही मगध का अंग बन चुका होगा। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि बिंदुसार ने दक्कन पर अपना नियंत्रण स्थापित किया और मौर्य साम्राज्य को प्रायःद्वीप में सुदूर दक्षिण स्थित मैसूर तक विस्तारित किया।

हालांकि बिदुसार को ''शत्रु का संहारक'' कहा जाता है, उसके शासनकाल का ब्यौरा भी ठीक से नहीं मिलता है। उसके विजय अभियानों का अनुमान केवल अशोक के साम्राज्य के विस्तार को देखकर लगाया जा सकता है क्योंकि अशोक ने केवल कलिंग (उडीशा) पर विजय प्राप्त की थी। उसका धार्मिक झुकाव *आजीविकों* की तरफ़ था। बौद्ध स्रोतों के अनुसार बिंदुसार की मृत्यु 273-272 बी.सी.ई. के आसपास हुई थी। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के बीच राजसिंहासन के लिए चार वर्षों तक संघर्ष होता रहा। अंततः 269-268 बी.सी.ई. के आसपास अशोक बिंदुसार का उत्तराधिकारी बना।

अशोक मौर्य

1837 तक अशोक मौर्य के बारे में लोगों को कुछ विशेष मालूम नहीं था। किन्तु 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मी लिपि में लिखा एक शिलालेख पढ़ा। इस शिलालेख में *देवनामपिय पियदस्सी* (देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी) नामक एक राजा का उल्लेख था। इसकी तुलना श्रीलंका के इतिवृत *महावंश* में उल्लिखित पियदस्सी से की गई और वस्तुतः तब यह साबित हो सका कि शिलालेख में वर्णित राजा अशोक मौर्य ही था। युद्ध से विमुखता और *धम्म* के सिद्धांतों के आधार पर शासन की स्थापना ने अशोक को विशेष प्रसिद्धि दी। आगे, हम उसके आरंभिक जीवन की प्रासंगिक घटनाओं, कलिंग युद्ध और उसके शासनकाल में मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर चर्चा करेंगे।

कलिंग युद्ध

अपने पिता के शासनकाल में अशोक ने उज्जैन और तक्षशिला में राजदूत के रूप में कार्य किया था। यह बताया जाता है कि उसे तक्षशिला में एक विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा गया था। बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि तक्षशिला में सफलता प्राप्त करने के बाद उसे उज्जैन भेजा गया था। यह भी कहा जाता है कि उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं,

जैसे विदिशा के व्यापारी की पुत्री से उसका विवाह और उससे महेन्द्र और संघमित्रा नामक दो संतानों की प्राप्ति, ने भी अशोक को बौद्ध धर्म अपनाने की दिशा में प्रवृत किया। उसके आरंभिक जीवन की जानकारी ज़्यादातर बौद्ध इतिवृत्तों से होती है। अतः इसकी प्रामाणिकता कुछ संदिग्ध है।

अशोक के राज्यारोहण से संबंधित भी कई किवदंतियां प्रचलित हैं, परन्तु इस तथ्य पर मोटे तौर पर सहमति है कि अशोक युवराज नहीं था। इसलिए सिंहासन प्राप्त करने के लिए उसे अन्य राजकुमारों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। बौद्ध स्रोतों में यह बताया गया है कि बौद्ध धर्म अपनाने से पूर्व अशोक एक दुष्ट राजा था। यह निश्चित रूप में बढ़ा-चढ़ाकर कही हुई बात है। इसका उद्देश्य अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति निश्ठा को प्रतिष्ठित करना है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अशोक के परवर्ती जीवन में बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही, परन्तु उसे कट्टर और दुराग्रही बताने वाले कथनों की सही जांच-परख करनी होगी। अशोक के व्यक्तित्व और विचारों का उल्लेख विस्तृत रूप में उसके कई अभिलेखों में हुआ है, जिसमें उसकी सार्वजनिक और राजनीतिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। उनसे यह भी पता चलता है कि कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया था।

हालांकि अशोक के पूर्वजों ने दक्कन और दक्षिण के प्रदेशों में प्रवेश पा लिया था और शायद कुछ हिस्सों को जीत भी लिया था, परन्तु कलिंग (आधुनिक उडीशा) अभी तक अविजित था और उसे मौर्य साम्राज्य के नियंत्रण के अधीन लाने का कार्य शेष था। इस इलाके का सामरिक महत्व था क्योंकि स्थल और समुद्र, दोनों से, दक्षिण भारत को जाने वाले मार्गों पर कलिंग का नियंत्रण था। अशोक ने खुद शिलालेख XIII में यह बताया है कि उसके अभिषेक के आठ वर्ष बाद, अर्थात् 260 बी.सी.ई. के आसपास, कलिंग के साथ युद्ध हुआ था। इस युद्ध में कलिंगवासियों को पूरी तरह कुचल दिया गया और ''एक लाख व्यक्ति मारे गए और इससे कई गुना नष्ट हो गए''। अभिलेखों में आगे बताया गया है कि अशोक इस युद्ध में विजयी हुआ, परन्तु युद्ध की विनाशलीला ने सम्राट को शोकाकुल बना दिया और तब उसने अचानक बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। युद्ध विजय का स्थान *धम्म* विजय ने ले लिया। यह नीति व्यक्तिगत और राजकीय, दोनों स्तरों पर अपनाई गई और प्रजा के प्रति सम्राट और उसके अधिकारियों में मूलभूत परिवर्तन आया।

15.6 अशोक की मृत्यु के समय मगध

विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले पाषाण शिलालेखों और स्तम्भ अभिलेखों, जिनमें अशोक ने अपनी *धम्म* नीति की चर्चा की है, से अशोककालीन मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय - विस्तार पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। अशोक के 14 बृहद शिलालेख, सात स्तम्भ लेख और कुछ लघु शिलालेख प्राप्त हुए हैं। बड़े शिलालेख पेशावर के निकट शहबाज़ गढ़ी और मनसहेरा में, देहरादून के निकट कलसी में, जिला थाणे में सोपारा, काठियावाड़ में, भुवनेश्वर के निकट धौली में और उडीशा के गंजम जिले के जौगदा में पाए गए हैं। लघु शिलालेख कर्नाटक के सिद्धपुर, जतिंगा-रामेश्वर ओर ब्रह्मगिरि नामक स्थानों में मिले हैं। इसके अतिरिक्त, अन्य लघु शिलालेख मध्य प्रदेश में जबलपुर के निकट रूपनाथ में, बिहार के ससाराम में, जयपुर के निकट बैराट में और कर्नाटक के मस्की में मिलते हैं। स्तम्भ लेख, जिसमें अशोक के फ़रमान हैं, दिल्ली में पाया गया है। मूल रूप में इसकी प्राप्ति अम्बाला और मेरठ के निकट टोपरा नामक स्थान से हुई थी। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के अभिलेख उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी में लौरिया अरराज, बिहार में लौरिया नन्दनगढ़ और रामपूर्वा, भोपाल के समीप सांची, बनारस के निकट सारनाथ और नेपाल के रूम्मिनडै नामक स्थानों पर मिले हैं। इन स्थलों को इस इकाई में दिए गए नक्शे में दिखाया गया है। इसमें आपको अशोक के शासनकाल में मगध साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार की सही स्थिति का पता लगेगा। इन

अभिलेखों के स्थापन पर गौर करने से यह बात भी स्पष्ट हो जाएगी कि प्रयत्नपूर्वक इन्हें महत्वपूर्ण स्थल व्यापारिक मार्गों पर स्थापित किया गया था। इसके आधार पर आधुनिक इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसके पीछे उपमहाद्वीप पर नियंत्रण रखना भी एक उद्देश्य था, परन्तु मूल उद्देश्य कच्चे माल के स्रोत पर अधिकार बनाए रखना था।

ये लेख साम्राज्य की सीमा पर रहने वाले लोगों की भी चर्चा करते हैं, इससे ऊपर वर्णित राज्य की सीमा-रेखा की पुष्टि होती है। दक्षिण में चोल, पांड्य, सत्यपुत्र और केरलपुत्रों का उल्लेख हुआ है जो मौर्य साम्राज्य की परिधि से बाहर थे। साम्राज्य के भीतर भी लोगों के मूल और संस्कृति में काफ़ी भिन्नता थी। उदाहरण के लिए, उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कम्बोजों और यवनों का उल्लेख मिलता है। उनकी चर्चा के साथ-साथ भोजों, पितनिकों, आंध्रों और पुलिंदों का भी उल्लेख किया गया है जो पश्चिमी भारत और दक्कन में बसे हुए थे।

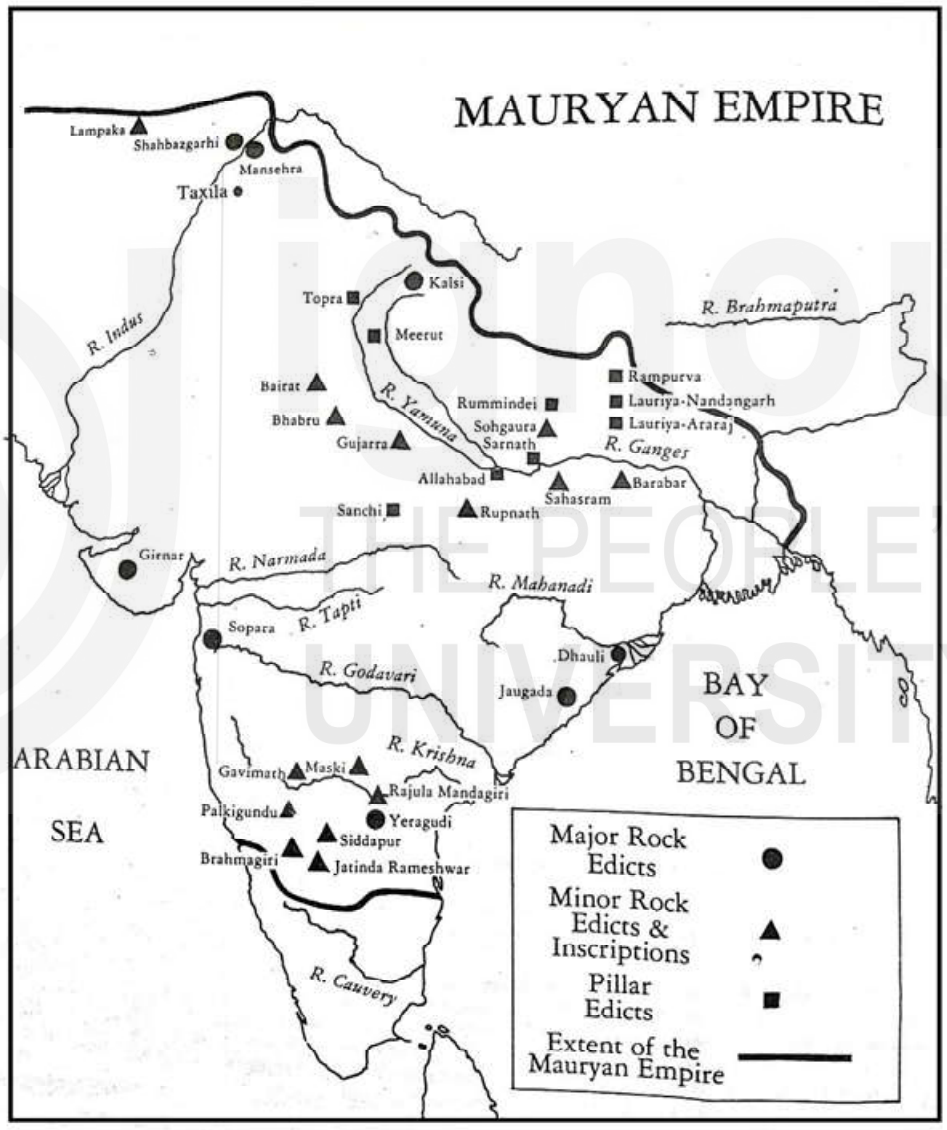

अशोक के शिलालेखों के स्थलों के माध्यम से मौर्य साम्राज्य को दर्शाता मानचित्र। स्रोत : ई. एच.आई.-02, खंड-5।

मानचित्र पर अशोक के लेखों के फैलाव के अलावा कुछ और तथ्यों से भी उसके साम्राज्य के विस्तार का पता चलता है। विजय से हासिल राज्य क्षेत्र को *विजित* और ''शासकीय राज्य-क्षेत्र'' को *राजविषय* कहा गया है, सीमांत राज्य क्षेत्रों को *प्रत्यन्त* की संज्ञा दी गई है। मगध साम्राज्य की सीमा के बाहर उत्तर-पश्चिम में सेल्यूसिड राजा ऐलिओकस द्वितीय का

राज्य था, दक्षिण में चोल, पांड्य, केरलपुत्र और सत्यपुत्रों के राज्य तथा श्रीलंका द्वीप भी साम्राज्य की सीमा से बाहर थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में उत्तरी और दक्षिण बंगाल मौर्यों के साम्राज्य का अंग था।

इस प्रकार, अशोक के राज्य-काल में मगध साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अपनी चरम सीमा पर था। परन्तु, इसके साथ ही साथ यह प्रयत्न भी चल रहा था कि साम्राज्य के अंदर होने वाले सभी युद्धों को समाप्त कर दिया जाए। अहिंसा की नीति को राज्य-नीति के रूप में अपनाया जाना अपने आप में एक अनूठी घटना थी, क्योंकि भारत के राजनीतिक इतिहास में इसे दोहराया नहीं गया। विभिन्न इतिहासकारों ने बार-बार अशोक को उदार तानाशाह के रूप में चित्रित किया है। यह धारणा *धम्म* के व्यावहारिक पक्ष को नज़रअंदाज़ कर देती है। अशोक ने इसके माध्यम से एक विचार पद्धति का सहारा लेकर विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण करने की कोशिश की, जिसके अभाव में शासन करना बहुत मुश्किल था। मौर्यों के अभिलेख कुछ महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों और साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों से प्राप्त हुए हैं। परन्तु यह सवाल अभी तक अपनी जगह खड़ा है कि वे क्षेत्र जहां अभिलेख पाए गए और वे क्षेत्र जहां अभिलेख नहीं पाए गए हैं, क्या समान रूप से नियंत्रित किए जाते थे। मौर्यों के प्रशासनिक नियंत्रण और *धम्म* की नीति से जुड़े दोनों सवालों पर इकाई 16 और 17 में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 2

1) मौर्यों से पूर्व के मगध पर पाँच पंक्तियां लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही (✓) व कौन सा गलत (×) है :

क) *उत्तरापथ* गंगा नदी के मार्ग का अनुसरण करने वाला रास्ता था। ( )

ख) पाटलिपुत्र गंगा नदी के दक्षिण में स्थित था। ( )

ग) भारत के विषय में मेगस्थनीज़ के वृतांत की जानकारी हमें बाद के लेखकों से मिलती है। ( )

घ) चंद्रगुप्त के परामर्श पर सिकन्दर ने मगध पर आक्रमण किया। ( )

ड़) नंद और मौर्य परिवार रक्त से संबंधित थे। ( )

च) चंद्रगुप्त सेल्यूकस निकेटर को परास्त करने में सफल रहा। ( )

15.7 सारांश

इस इकाई में हमने प्रथम ऐतिहासिक साम्राज्य से आपको परिचित कराने की कोशिश की है और इसके अध्ययन के लिए एक दिशा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, मगध साम्राज्य के उद्भव और क्षेत्रीय विस्तार की भी चर्चा की गई है। हम आशा करते हैं कि इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- मगध की भौगोलिक स्थिति का सामरिक महत्व समझ गए होंगे और इसके उत्थान में सहायक महत्वपूर्ण कारकों से परिचित हो चुके होंगे।
- उन स्रोतों के बारे में जान गए होंगे जिनकी सहायता से मगध, खासकर मौर्य शासन, के राजनीतिक इतिहास के लेखन में सहायता मिल सकती है।

- मौर्य शासन के उद्‌भव के पूर्व मगध के आरंभिक इतिहास की प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- मौर्य परिवार के मूल और उसके आरंभिक इतिहास का विवरण प्राप्त कर चुके होंगे।
- चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार की विस्तार नीति की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।
- अशोक मौर्य के राज्यारोहण से लेकर कलिंग युद्ध तक की घटनाओं को जान चुके होंगे।
- अशोक की मृत्यु के समय मगध साम्राज्य के विस्तार की सीमाएं जान सके होंगे।

15.8 शब्दावली

अधिशेष : ज़रूरत पूरी होने के बाद बची सामग्री, आर्थिक संदर्भ में आवश्यकता पूर्ति के बाद बचा हुआ अतिरिक्त उत्पादन।

उत्तरापथ : उत्तरी स्थल मार्ग जो हिमालय की पहाड़ियों तक जाता था।

उदारवादी निरंकुशता : एक अच्छा और उदार राजा जिसके हाथ में पूर्ण नियंत्रण हो।

***चक्रवर्ती* क्षेत्र** : *चक्रवर्ती* या एकछत्र सम्राट का अधिकार-क्षेत्र।

''क्लासिकल स्रोत'' : प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के लिए यूनानी स्रोत।

तनाशाह : एक निरंकुश राजा जिसके प्राधिकार पर कोई अंकुश न हो।

***धम्म*/धर्म** : शाब्दिक अर्थ ''सार्वभौम व्यवस्था''; परन्तु अशोक के अभिलेखों में इसका उल्लेख ''धर्म निष्ठा'' के रूप में हुआ है।

सप्तांग : सात अंग।

सोफ़िस्ट : यूनानी दर्शन; शाब्दि अर्थ है छल तर्क में विश्वास रखने वाला दार्शनिक।

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 15.2 देखें।

2) भाग 15.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 15.4 देखिए।

2) क) × ख) × ग) ✓ घ) × ड.) × च) ✓

15.10 संदर्भ ग्रंथ

बैशम, ए. एल. (1967). *द वंडर दैट वॉस इंडिया.* नई दिल्ली।

बौनगार्ड-लैविन, जी. एम. (1985). *मौर्यन इंडिया.* नई दिल्ली।

नीलकंठ शास्त्री, के. ए. (1967) (संपादित). *एज ऑफ द नंदाज़ एण्ड मौर्याज़.* दिल्ली।

शर्मा. आर. एस. (2005). *इंडियाज़ एंशियंट पास्ट.* ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

थापर, रोमिला (2002). *द पेंगुइन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया : फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए.डी. 1300.* पेंगुइन बुक्स।

इकाई 16 मौर्य 'साम्राज्य'*

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 मौर्य काल के अध्ययन के स्रोत

16.3 मौर्य राजवंशः उत्पत्ति और विस्तार

- 16.3.1 चंद्रगुप्त मौर्य
- 16.3.2 बिन्दुसार
- 16.3.3 अशोक

16.4 'साम्राज्य' का निर्माण

16.5 अर्थव्यवस्था

- 16.5.1 व्यापार और वाणिज्य

16.6 *अर्थशास्त्र* और *सप्तांग* सिद्धांत

16.7 प्रशासन

- 16.7.1 केंद्रीय प्रशासन
- 16.7.2 जिला और ग्राम स्तरीय प्रशासन

16.8 समाज

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.12 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आपको निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगीः

- प्रथम अखिल भारतीय राजनीति की शुरुआत के सम्बंध में तथा मौर्य और उनके विशाल क्षेत्र की संचालन प्रक्रिया के बारे में;
- एक साम्राज्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक विभिन्न संसाधनों के बारे में;
- शहरी अर्थव्यवस्था की प्रकृति के बारे में; और
- मौर्य सम्राज्य, इसकी अर्थव्यवस्था और राजनीतिक व्यवस्था के बारे में।

16.1 प्रस्तावना

भारत पर अलेक्ज़ेंडर के आक्रमण के समय, नंद शासन के तहत मगध सबसे दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरा था। नंदों के उत्तराधिकारियों, यानी मौर्यों के अधीन, मगध का विकास अपने चरम पर पहुंच गया। मौर्य साम्राज्य भारतीय इतिहास में एक मील का पत्थर साबित

* प्रीती गुलाटी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

हुआ। भारत के इतिहास में पहली बार, सुदूर उत्तर-पश्चिम तक फैले उपमहाद्वीप का एक बड़ा हिस्सा एक वृहत सत्ता के अधीन था।

यह इकाई आपको मौर्य साम्राज्य और इतिहास में इसके महत्व से परिचित कराएगी। इस इकाई में मुख्य ध्यान मौर्य काल के राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक पहलुओं पर होगा। अगली इकाई में, हम अशोक और धम्म की नीति के साथ उसके अनूठे प्रयास पर अधिक ध्यान केंद्रित करेंगे।

16.2 मौर्य काल के अध्ययन के स्रोत

इस काल के सम्बंध में विविध स्रोत उपलब्ध हैं। इन स्रोतों के बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से कई स्रोत समीक्षाधीन अवधि के समकालीन हैं। आइए हम उनमें से कुछ को विस्तार से समझते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत मेगास्थनीज़ की *इंडिका* है। मेगास्थनीज, सेल्यूकस का दूत था जिसने चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र का दौरा किया था। उसकी कृति, *इंडिका*, चंद्रगुप्त मौर्य शासन के अधीन भारत, विशेष रूप से उत्तरी भारत में भ्रमण के दौरान प्राप्त अनुभवों का संकलन है। हालांकि, "*इंडिका*" से सम्बंधित मूल संकलन खो गया है। इसके बावजूद बाद के लेखकों के उद्धरण और सार के रूप में यह उपलब्ध है।

एक अन्य लोकप्रिय स्रोत कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* है। परंपरागत रूप से *अर्थशास्त्र* को कौटिल्य *अर्थशास्त्र* के नाम से एवं विष्णुगुप्त या चाणक्य के *अर्थशास्त्र* के नाम से भी जाना जाता है जो चंद्रगुप्त मौर्य के मुख्यमंत्री थे। उसने नंदों को उखाड़ फेंकने में चंद्रगुप्त मौर्य की मदद की थी। *अर्थशास्त्र* एक मीमांसात्मक ग्रंथ है जिसमें राजकाज के तरीकों का वर्णन है। इसमें राज्य की वास्तविक स्थिति का वर्णन नहीं है। *अर्थशास्त्र* के अध्ययन से पता चलता है कि इसके कुछ अध्यायों में वर्णित तथ्य पहली दो शताब्दियों के युगों से साम्यता रखते थे। हालाँकि, कई विद्वान इसे मौर्यों के समकालीन मानते हैं। इसमें एक जटिल प्रशासनिक संरचना को प्रस्तुत किया गया है जिसे मौर्यों से पहले किसी भी समय हासिल नहीं किया गया था।

दिव्यवदान, अशोकवदान जैसे ग्रंथों में श्रीलंकाई बौद्ध इतिवृत्त जैसे *महावंश, द्वीपवंश* और उत्तरकालिक *पुराणों* में वर्णित राजाओं की सूची में भी मौर्यों का उल्लेख है।

मौर्य काल के बारे में महत्वपूर्ण स्रोत निस्संदेह अशोक के शिलालेख हैं। अशोक के शिलालेखों से भारतीय युगांतर की शुरुआत होती है। इन शिलालेखों से राजा की सोच और उसके विचारों के बारे में पता चलता है। ये लेख प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में तथा कभी-कभी खरोष्ठी लिपि में (उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भागों में) भी लिखे गए हैं। ग्रीक और अरमैक में भी कुछ शिलालेख हैं। दक्षिण-पूर्व अफ़ग़ानिस्तान में कंधार के पास शार-ए-कुना में तथा तक्षशिला में भी द्विभाषी ग्रीक-अरमैक शिलालेख पाया गया है। अशोक ने स्वयं इन शिलालेखों को धम्मलिपि (धर्मपरायणता) के रूप में निर्दिष्ट किया था जो निम्न प्रकार के हैं (मानचित्र 1):

1) चौदह प्रमुख शिलालेख,
2) दो 'अलग' शिलालेख / कलिंग शिलालेख,
3) दो लघु शिलालेख,

4) सात स्तंभ शिलालेख/प्रमुख शिलालेख,

5) लघु स्तम्भ शिलालेख,

6) बैराट (राजस्थान) का शिलालेख,

7) दो लघु स्तंभ शिलालेख, एवं

8) गया, बिहार के करीब बराबर पहाड़ियों पर उत्कीर्ण शिलालेख।

प्रमुख शिलालेख और स्तम्भ शिलालेख विभिन्न स्थानों पर पाए गए हैं, जिनमें मामूली बदलाव हैं। लघु शिलालेखों को सबसे पुराने शिलालेखों में माना जाता है, जिसके बाद प्रमुख शिलालेख हैं एवं स्तम्भ शिलालेख सबसे बाद के हैं।

चित्र 16.1: मौर्यों के आहत सिक्कों का भंडार। श्रेयः सीएनजी सिक्के। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/Punch-marked_coins#/media/File:Hoard_of_mostly_Mauryan_coins.jpg)

मौर्य काल के अध्ययन के अन्य भौतिक स्रोतों में सिक्के (चित्र 16.1) और पुरातात्विक अवशेष शामिल हैं। इस अवधि के सिक्के बिना किसी किंवदंतियों के हैं। चांदी से बने आहत सिक्के ज्यादातर, मौर्य काल के दौरान जारी किए गए थे। मौर्यों के आहत सिक्कों में एकरूपता है। ज्यादातर सिक्के, केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा जारी किए गए थे जो कर्षापण सिक्के के रूप में जाने जाते हैं। ये जारी करने वाले प्राधिकारी को निर्दिष्ट नहीं करते हैं बल्कि वे मौर्य राजाओं से संबंधित कुछ चिन्ह प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतीकों में मेहराब पर अर्धचन्द्राकार, वेदिका में वृक्ष, व मेहराब पर मोर शामिल हैं।

बुलंदिबाग (चित्र 16.2) और कुम्रहार (चित्र 16.3) के पुरातात्विक अवशेष मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र से जुड़े हैं। अन्य महत्वपूर्ण स्थल तक्षशिला, मथुरा और भीटा हैं। इन खोजों की पुरावशेष उच्चस्तरीय है तथा इसमें शहरी जीवन की विविधताओं को दर्शाया गया है। इस प्रकार, मौर्यों के बारे में व्यापक और सार्थक समझ विभिन्न स्रोतों के संयुक्त विश्लेषण पर टिकी हुई है।

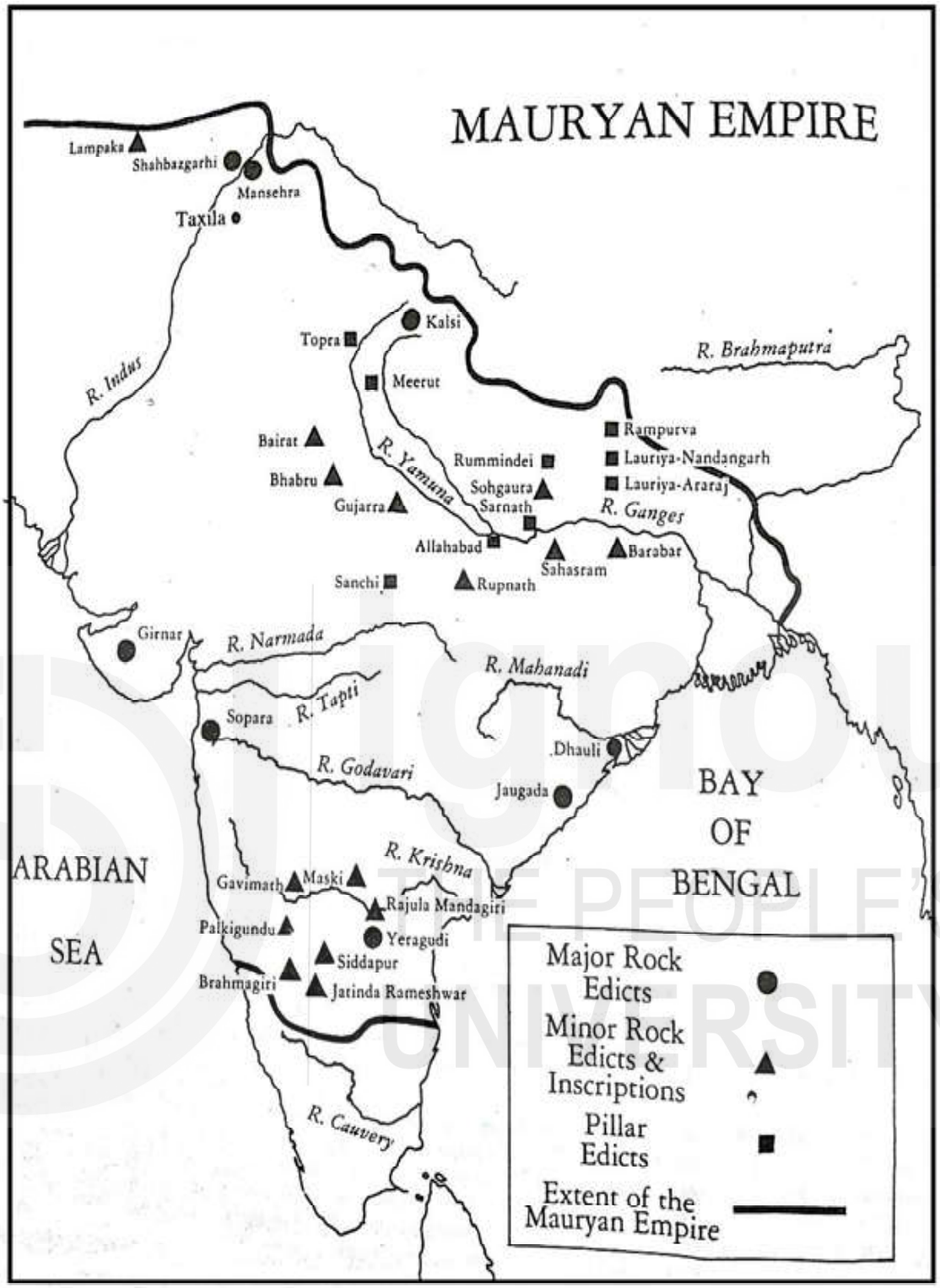

मानचित्र 16.1: अशोक के शिलालेखों का स्थान। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-5

[प्रमुख शिलालेख, लघु शिलालेख एवं अंकन/उत्कीर्ण, स्तम्भ शिलालेख, मौर्य सम्राज्य का सीमाक्षेत्र नक्शे में दर्शाये गए शहरों के नामः

बंगाल की खाडी, अरब सागर, कावेरी नदी, ब्रह्मगिरी, जतिंद रामेश्वर, सिद्दपुर, येरागुडी, पाकिगुंडु, रजुला मंदागिरि, गविमठ, मस्कि, कृष्णा नदी, गोदावरी नदी, जौगडा, धौली, महानदी, ताप्ती नदी, सोपारा, नर्मदा नदी, गिरनार, साँची, रुपनाथ, ससाराम, बराबर, इलाहाबाद, गुज़र्रा, भाब्रु, बैराट, यमुना नदी, गंगा नदी, लॉरिया अराराज, लौरिया नंदनगढ, रामपूर्वा, मेरठ, कलसी, टोपरा, ब्रह्मपुत्र नदी, सिंधु नदी, तक्षशिला, मनसेहरा, लम्पाक, शाहबजगढ़ी]

चित्र 16.2: पाटलिपुत्र के बुलंदिबाग स्थल पर मौर्यकालीन अवशेषः लकड़ी के खंबों की पंक्ति। 1912-13 ए.एस.आई.ई.सी. द्वारा पाटलिपुत्र की प्राचीन तस्वीर। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mauryan_remains_of_wooden_ palissade_at_ Bulandi_Bagh_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg)**

चित्र 16.3: पाटलिपुत्र के कुम्रहार में स्तंभित हॉल के मौर्यकालीन खंडहर। श्रेयः 1912 -13 पाटलिपुत्र में ए.एस.आई.ई.सी. द्वारा पुरातात्विक उत्खनन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mauryan_ruins_of_pillared_hall_at_ Kumrahar_ site_of_Pataliputra_ASIEC_ 1912-13.jpg)**

16.3 मौर्य राजवंशः उत्पत्ति और विस्तार

मौर्य साम्राज्य की नींव चंद्रगुप्त मौर्य ने रखी थी, जिन्होंने 321/324 बी.सी.ई. में नंद वंश को उखाड़ फेंका था। पुराणों के अनुसार, मौर्य शासन 137 वर्षों तक रहा, यानी, मौर्यों ने संभवत 187/185 बी.सी.ई. तक शासन किया था। अगर अनुमानित तिथियों को मानें, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मौर्य काल चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के आसपास से दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. की पहली तिमाही तक विद्यमान रहा।

16.3.1 चंद्रगुप्त मौर्य

चंद्रगुप्त की वंशावली और जाति के बारे में अलग-अलग ग्रन्थों में अलग-अलग वर्णन मिलता है। *मुद्राराक्षस* ने उसे निम्न जाति का बताया है। विष्णु *पुराण* के टीकाकार धुंडीराजा के अनुसार चंद्रगुप्त नंद वंशज था, जो नंद राजा सर्वार्थसिद्धि एवं मुरा, शिकारी की बेटी, की संतान था। मुरा का पुत्र होने के कारण वह चंद्रगुप्त मौर्य कहलाया, जो वंशवाद का प्रतीक बन गया। जैन लेखक, हेमचंद्र द्वारा 12वीं शताब्दी में लिखित पुस्तक में, चंद्रगुप्त को मोर पकडने वाले कबीले (मयूर पोशक) के प्रमुख के पोते के रूप में वर्णन मिलता है। इसी तरह, जस्टिन और प्लूटार्क के यूनानी लेखों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सैंड्रोकोटस (यानी, चंद्रगुप्त) का किसी भी शाही घराने से सम्बंध नहीं था। दूसरी ओर, *दीघनिकाय, महावंश* और *दिव्यवदान* जैसे बौद्ध ग्रंथों में मौर्य वंश को एक खटिया (पाली में क्षत्रीय) कबीले के मोरिया कहा गया है, जो पिप्पलीवन पर शासन करता था। उसके कुलीन जन्म पर ज़ोर इसलिए दिया जा रहा था क्योंकि इससे उसका राजगंद्दी पर बैठना वैध हो जाता था।

ग्रीक लेखों से हमें पता चलता है कि भारत से सिकंदर के जाने के तुरंत बाद, सैंड्रोकोटस ने एक नए राजवंश की स्थापना की और उसने विशाल क्षेत्रों को जीतकर अपना साम्राज्य विस्तार किया। इसके अलावा सूत्रों में चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस निकेटर के बीच हस्ताक्षरित एक संधि का भी उल्लेख मिलता है। इस संधि की शर्तों के तहत अराकोशिया (दक्षिण-पूर्व अफ़ग़ानिस्तान का कंधार क्षेत्र), गेड्रोशिया (दक्षिण बलूचिस्तान), तथा परोपोमिसदाई (अफ़ग़ानिस्तान एवं भारतीय उपमहाद्वीप के बीच का क्षेत्र) चन्द्रगुप्त के साम्राज्य क्षेत्र में शामिल हुआ। कहा जाता है कि चंद्रगुप्त ने 500 युद्ध हाथियों को सेल्युकस को उपहार में

चित्र 16.4: कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में स्थित भद्रबाहु गुफा, जहाँ चंद्रगुप्त मौर्य की मृत्यु हुई थी। श्रेयः अमोल ठिकाने। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Bhadrabahu_Goopha_on_Chandragiri.JPG)

दिया था। संधि के तहत, यूनानियों और भारतीय लोगों के बीच अंतर्जातीय शादी के अधिकारों को भी स्वीकार किया। चंद्रगुप्त ने न केवल उत्तर पश्चिम पर बल्कि गंगा के मैदानों, पश्चिमी भारत और दक्कन पर भी नियंत्रण स्थापित किया। केरल, तमिलनाडु और उत्तर-पूर्व भारत के कुछ हिस्से इस दायरे से बाहर थे।

ग्रीक-रोमन स्रोतों में सैंड्राकोटस के सैन्य कारनामों के बारे में व्यापक उल्लेख मिलता है। प्लूटार्क ने लिखा है कि सैंड्रैकॉटस ने 600,000 पुरुषों की सेना के साथ पूरे 'भारत' पर शासन किया। हालाँकि, यह स्पष्ट नहीं है कि शब्द 'भारत' से इस लेखक का वास्तव में क्या मतलब है। माना जाता है कि चंद्रगुप्त का शासनकाल लगभग 24 वर्षों तक रहा।

16.3.2 बिन्दुसार

चंद्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र बिन्दुसार था जिसने 297 और 273 बी.सी.ई. के बीच शासन किया। *महाभाष्य* में अमित्रघट (शत्रुओं का नाश करने वाला) को चंद्रगुप्त के उत्तराधिकारी के रूप में बताया गया है। दूसरी ओर यूनानी लेखों जैसे एथेनायोस और स्ट्रैबो में वह अमितरोखेट्स या एलिट्रोहेट्स के रूप में उल्लखित है। ये नाम संभवतः शाही शीर्षक थे, जो उनकी सैन्य क्षमता के बारे में जानकारी देते हैं। बिन्दुसार को अपने विरासत में मिले विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने का श्रेय जाता है। *दिव्यवदान* के अनुसार बिंदुसार के राज्य में तक्षशिला में विद्रोह हुआ था क्योंकि तक्षशिला की प्रजा दुष्ट प्रशासकों (*अमात्यों*) से असंतुष्ट थी।

बिन्दुसार के काल का चाँदी का सिक्का (कार्षपण)। श्रेयः जीन-मिशेल मौलले। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:I42_1karshapana_Maurya_Bindusara_MACW4165_1ar_(8486583162).jpg)

बिन्दुसार के शासनकाल में, पश्चिम एशिया के यूनानी शासकों के साथ राजनयिक संबंध जारी रहे। बताया जाता है कि बिन्दुसार ने सीरियाई राजा, एंटिओकस से अच्छी शराब, अंजीर और एक सोफिस्ट (दार्शनिक) भेजने का अनुरोध किया था। इस पर, एंटियोकस ने जवाब दिया कि वह निश्चित रूप से शराब और अंजीर उसे अवश्य भेजेगा किंतु ग्रीक कानून सोफिस्ट (दार्शनिक) बेचने की अनुमति नहीं देता है।

16.3.3 अशोक

1837 तक, अशोक के बारे में ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं थी। इसी वर्ष जेम्स प्रिंसप ने एक ब्राह्मी लिपि में लिखित शिलालेख में देवनामपिय पियादसी (देवताओं का प्रिय) नामक राजा के उल्लेख की ओर ध्यान आकर्षित किया। इसके अलावा, *महावंश* के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया कि इस ग्रंथ में अशोक का उल्लेख है।

273 बी.सी.ई. में बिंदुसार की मृत्यु के बाद अशोक को उत्तराधिकारी बनाया गया। *अशोकवदान* के अनुसार जब अशोक पैदा हुआ था तो उसकी माँ सुभद्रांगी के मुँह से निकला,"मैं शोक रहित" हूँ' और इसी तरह उसका नाम अशोक (जो दुःख से रहित है) रखा गया। अपने पिता के शासनकाल के दौरान उसे तक्षशिला और उज्जैन के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया गया था। यह माना जाता है कि वह युवराज नहीं था तथा सिंहासन के लिए उसने अपने भाइयों की हत्या की थी।

बिन्दुसार की तरह अशोक को भी विरासत में उपमहाद्वीप का एक बड़ा हिस्सा साम्राज्य के रूप में मिला था। उसके पड़ोस का एकमात्र महत्वपूर्ण क्षेत्र कलिंग (आधुनिक ओडिशा) उसके क्षेत्राधिकार में नहीं था जिसके कारण वह अशांत रहता था। 260 बी.सी.ई. में उग्र अभियान के परिणामस्वरूप अंततः अशोक ने कलिंग को अपने नियंत्रण में कर लिया। कलिंग रणनीतिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण था। यह वन संसाधनों में समृद्ध था और पूर्वी तट के माध्यम से प्रायद्वीप के साथ मौर्य व्यापार मार्ग पर भी था। हालाँकि, सैन्य अभियान बहुत ही विनाशकारी था, जिसमें हजारों लोग मारे गए, और कई कैद कर लिए गए। कहा जाता है कि बड़े पैमाने पर विनाश ने राजा अशोक को पश्चाताप से भर दिया था। हालांकि, शिलालेख XIII में, अशोक ने लिखा है कि जब एक अजेय क्षेत्र को जीत लिया जाता है तो ऐसी मृत्यु और विनाश अवश्यंभावी है। वह चाहता था कि उसका उत्तराधिकारी किसी भी तरह के रक्तपात से बचें। पश्चाताप करने के बावजूद, अशोक ने परेशानी के सबब बन रहे जंगल के लोगों के लिए चेतावनी जारी की और उसे याद दिलाया कि अपने पश्चाताप की अवधि में भी वह दंड देने की शक्ति रखता है। यह भी उल्लेखनीय है कि अशोक ने कलिंग के किसी भी स्थान पर अपने पछतावे को शिलालेख के माध्यम से व्यक्त करने से परहेज किया है जहां शिलालेख XIII के स्थान पर प्रतिस्थापित शिलालेख रखा गया। प्रतिस्थापित शिलालेख में वास्तव में वह अधिकारियों को निर्देश देते हैं और अच्छे प्रशासन के मूल्य पर ज़ोर देते हैं।

अशोक स्तंभ, वैशाली, बिहार में। श्रेयः बीपिलग्रिम। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashoka_pillar_at_Vaishali,_Bihar,_India.jpg)

कलिंग युद्ध में वृहत स्तर पर हुए निर्दोशों के खून से सनी जीत ने अशोक को अंदर से मर्माहित कर दिया। पश्चाताप स्वरूप उसमें बौद्ध धर्म के प्रति रुचि विकसित हुई तथा उसने रूपांतरण की यात्रा शुरू की। हालांकि यह रातोरात रूपांतरण नहीं था, क्योंकि अशोक की बौद्ध धर्म के प्रति सहानुभूति पहले से थी। लघु शिलालेख I में उसने स्वीकार किया है कि वह ढाई साल से बौद्ध भक्त है, जिससे पता चलता है कि उसका बुद्ध के शिक्षण की ओर झुकाव अचानक नहीं था।

अशोक के साम्राज्य की सीमा का पता उसके शिलालेखों के प्रसार से लगाया जा सकता है। उनके वितरण से हम जानते हैं कि मौर्य साम्राज्य ने उत्तर-पश्चिम में अफ़ग़ानिस्तान में कंधार तक विस्तार किया। पूर्वी सीमा में यह उडिशा तक फैला हुआ था। शिलालेख XIII के अनुसार, सुदूर दक्षिण को छोड़कर शेष उपमहाद्वीप मौर्य शासन के तहत था। शिलालेख II के अनुसार दक्षिण में चोल और पांड्य का शासन था जहाँ बाद में केरलपुत्रों और सतीपुत्रों ने शासन किया। उसके साम्राज्य में विविध मूल और संस्कृतियों के लोग रहते थे। उदाहरण के लिए, उत्तर पश्चिम में कम्बोज और यवनों का उल्लेख है। उनका उल्लेख अन्य लोगों जैसे भोज, पितिनिका, आंध्र और पुलिंद के साथ किया जाता है जो पश्चिमी भारत और दक्कन के कुछ हिस्सों में स्थित हो सकते हैं।

अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य का तेजी से पतन हुआ। *पुराणों* में बाद के मौर्य शासकों के नामों का उल्लेख है और यह स्पष्ट करते हैं कि उनके शासनकाल की अवधि अपेक्षाकृत बहुत कम थी। साम्राज्य जल्द ही कमज़ोर और विखंडित हो गया और कहा जाता है कि बैक्ट्रियन यूनानियों द्वारा आक्रमण का सामना करना पड़ा था। मौर्य राजवंश का अंतिम शासक बृहद्रथ था जिसे 187 बी.सी.ई. में उसी के सैन्य कमांडर पुष्यमित्र ने मारकर शुंग वंश की स्थापना की।

16.4 'साम्राज्य' का निर्माण

पारंपरिक दृष्टिकोण से मौर्य साम्राज्य एक केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य लगता है। ऐसे साम्राज्य की विशेषता है उसका शक्तिशाली राजा जो अपने सैन्य पराक्रम से राज्य में शांति और सामंजस्य स्थापित करता है। सम्राट अपने सहयोगियों को साथ लेकर तथा दुश्मन राजाओं के साथ वैवाहिक संबंध कायम कर अपने साम्राज्य का विस्तार करते थे। केंद्रीकृत नौकरशाही साम्राज्य में सामाजिक वर्गों के बीच असमानता के होने तथा राजा के कल्याणकारी प्रवृत्ति का न होकर शोषक प्रवृत्ति का होने का उल्लेख है। रोमिला थापर का पहले का मत कि मौर्य साम्राज्य एक समान और केंद्रीकृत प्रशासित इकाई थी, को बाद में उनके द्वारा संशोधित किया गया है। उनके अनुसार, केंद्र में मगध, महानगरीय राज्य था जो मोटे तौर पर स्तंभ अभिलेखों के वितरण के क्षेत्र से जाना जाता था। केंद्रीकृत प्रशासन का क्षेत्र सामरिक दृष्टिकोण से काफ़ी महत्वपूर्ण था। दूसरी श्रेणी में वो मुख्य क्षेत्र थे जो कृषि और व्यवसाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। इन पर केंद्र का नियंत्रण कम था। इसका नियंत्रण राज्यपालों और वरिष्ठ अधिकारियों के हाथ में था। गांधार, रायचूर दोआब, दक्षिणी कर्नाटक, कलिंग और सौराष्ट्र जैसे प्रमुख क्षेत्र तीसरे श्रेणी में राज्य की परिधि पर स्थित क्षेत्र थे जिनकी अर्थव्यवस्था का पुनर्गठन मौर्य राज्य द्वारा नहीं किया गया था। इन राज्यों से केवल संसाधनों का दोहन किया जाता था।

मौर्य क्षेत्र में गैर-स्वदेशी यवनों और साथ ही विभिन्न भाषाई समूहों सहित विभिन्न जातीय समूह शामिल थे। शिलालेख कम से कम तीन भाषाओं, प्राकृत, ग्रीक और एरमेक में पाए जाते हैं। अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि उसके शासनकाल में बौद्ध धर्म, जैन

धर्म, वैदिक और ब्राह्मणवादी प्रथाओं, आजीवकवाद और छोटे पंथों सहित कई धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं का प्रचलन था।

राज्य और साम्राज्य में महत्वपूर्ण अंतर यह है कि राज्य मौजूदा संसाधनों से अधिकतम लाभ खींचता है जबकि साम्राज्य, अधिकतम राजस्व प्राप्त करने के लिए संसाधनों के पुनर्गठन का प्रयास करता है। साम्राज्य के प्रशासन की वित्तीय ज़रूरतें काफ़ी होती हैं। मौर्य साम्राज्य में, इन ज़रूरतों की पूर्ति कृषि को उन्नत और विकसित करके व व्यापक-वाणिज्यिक विनिमय (थापर, 2002) की शुरुआत करके हुयी। इसके अलावा, इस तरह के एक विशाल क्षेत्र का संचालन विभिन्न प्रशासनिक बिंदुओं के द्वारा हुआ था। इस प्रकार, मौर्य शासकों ने क्षेत्रीय विविधता को अपनी राजनीति में समायोजित किया। जहाँ एक ओर साम्राज्य इन विविधताओं को सहेजते हुए एकीकरण पर ज़ोर देता है वहीं एकरूपता को प्रभावी ढंग से लागू कराने के लिए आवश्यक कदम भी उठाता है।

इस प्रकार, साम्राज्यवादी व्यवस्थाएँ साम्राज्य के सिरों को एक साथ खींचने का प्रयास करती हैं, ताकि लोगों और माल की आवाजाही को बढ़ावा दिया जा सके (थापर, 2002)। इस विनिमय लेनदेन में लिपि, आहत सिक्के और एक नई विचारधारा का प्रक्षेपण शामिल है जो नए नियम निर्धारित करता है। मौर्य साम्राज्य के मामले में, राज्य ने *धम्म* की नीति के माध्यम से सांस्कृतिक समरूपता का प्रयास किया।

बोध प्रश्न 1

1) मौर्यों के इतिहास के पुनर्निर्माण के मुख्य स्रोत क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) मौर्य 'साम्राज्य' की धारणा पर संक्षेप में टिप्पणी लिखें।

.....

.....

.....

.....

.....

16.5 अर्थव्यवस्था

छठी शताब्दी बी.सी.ई. के समय से, शहरीकरण में वृद्धि के साथ-साथ कृषि का निरंतर विस्तार हुआ था। यूनानी लेखक एरियन ने शहरों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि के बारे में लिखा है। तकनीकी रूप से मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था मजबूत पायदान पर थी। *अर्थशास्त्र* में लोहे से बने विभिन्न उपकरणों के बारे में उल्लेख है। लोहा कृषि यंत्रों के लिए एक महत्वपूर्ण धातु था तथा उत्पादन में वृद्धि कर साम्राज्य को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने का आधार था। *अर्थशास्त्र* में लिखा है कि कृषि योग्य भूमि का निर्माण कर इसे विकसित करने हेतु उस क्षेत्र में शूद्रों को बसाना चाहिए। धान की खेती के लिए गहन श्रम की ज़रूरत

होती थी इसे युद्ध बंदियों से पूरा कराना चाहिए। ऐसा माना जाता है कि कलिंग युद्ध के बाद बंदी बनाए गए 1,50,000 नागरिकों को गहन श्रम वाले कृषि कार्य में इस्तेमाल किया गया था। शूद्रों को नई भूमि में बसाने, खेती के लिए आवश्यक बीज और मवेशियों के लिए चारा उपलब्ध कराने में राजकोषीय रियायतें दी जाती थी। शूद्रों को आवंटित ऐसी भूमि सीता भूमि कहलाती थी। इस प्रकार, लोहा और जनशक्ति जैसे दो कारको पर नियंत्रण-ने मौर्य काल में एक मजबूत अर्थव्यवस्था की नींव रखी।

16.5.1 व्यापार और वाणिज्य

मगध राज्य में निम्नलिखित दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता थाः

क) व्यापार और वाणिज्य का विस्तार,

ख) नए शहरों और बाजारों की स्थापना।

वाणिज्य और व्यापार के विस्तार ने मौर्यों को अपने संसाधनों और राजस्व को बढ़ाने में सक्षम बनाया। *जातक* में व्यापारियों द्वारा कारवां के रूप में माल की बड़ी मात्रा को दूर स्थानों पर ले जाने का जिक्र हैं। मौर्य राज्य सुरक्षा और शांति प्रदान करने में सक्षम था और इसलिए व्यापार मार्ग और व्यापार अधिक सुरक्षित हो गए। पश्चिम एशिया और मध्य एशिया के प्रमुख व्यापार मार्ग उत्तर पश्चिमी भारत से होकर गुज़रते थे। मगध में राजगृह और वर्तमान प्रयागराज के निकट कौशाम्बी जैसे प्रमुख केंद्र गंगा और हिमालय की तलहटी वाले मुख्य व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। पाटलिपुत्र एक रणनीतिक स्थान पर स्थित था जिसके माध्यम से चारों दिशाओं में व्यापार मार्गों और नदी मार्गों तक पहुँचा जा सकता था। उत्तरी मार्ग ने कपिलवस्तु, श्रावस्ती, वैशाली जैसे शहरों को कलसी, हजारा और अंततः पेशावर जैसे शहरों से आपस में जोड़ा। मेगस्थनीज़ ने एक भूमि मार्ग की बात की है जो उत्तरपश्चिम को पाटलिपुत्र से जोड़ता था। यही भूमि मार्ग दक्षिण मध्य भारत और दक्षिण पूर्व में कलिंग को जोड़ता था। एक पूर्वी मार्ग भी था। यह आंध्र और कर्नाटक तक पहुंचने के लिए दक्षिण की ओर मुड़ गया था । पूर्वी मार्ग का दूसरा हिस्सा गंगा डेल्टा से ताम्रलिप्ती तक जाता था, जो दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के लिए निकास बिंदु के रूप में काम करता था। कौशाम्बी से, पश्चिम की ओर बढ़ते हुए, एक और मार्ग था जो उज्जैन की ओर जाता था। यह मार्ग पश्चिम की तरफ़ गुजरात तट तक पहुँचता था या पश्चिमी दक्षिण की ओर नर्मदा को पार करता था। इस मार्ग को *दक्षिणापथ* (दक्षिणी मार्ग) कहा जाता था। पश्चिम के क्षेत्रों को जोड़ता यह भूमि भाग इस्लामाबाद के पास तक्षिला से होकर जाता था। राज्य की पहल पर घाटियों के आसपास के जंगलों को साफ करने के बाद नदी परिवहन में सुधार हुआ था। अन्य कारकों जैसे मौर्य राजाओं द्वारा यूनानियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना करके बिंदुसार और अशोक ने व्यापार संबंधों में सुधार किया।

मौर्य काल के दौरान कुशल कारीगर एक संघ का हिस्सा थे। इसमें जाने-माने कारीगर, धातुविद, बढ़ई, कुम्हार, चमड़े के काम करने वाले, रंगकर्मी, कपड़ा बनाने वाले आदि शामिल थे। मौर्य राज्य व्यापार के संगठन को उन्नत व विकसित बनाने के प्रति काफ़ी सजग था। यद्यपि यह सीधे तौर पर कारीगरों के संघ में हस्तक्षेप नहीं करता था, लेकिन कुछ मामलों में इसने उत्पादन और वितरण को नियंत्रित किया था। राज्य ने सीधे तौर पर कुछ कारीगरों जैसे कि हथियार बनाने वाले, जहाज बनाने वाले, पाषाण निर्माता आदि को नियोजित किया था, उन्हें करों के भुगतान में छूट दी गई थी क्योंकि उन्होंने राज्य को अनिवार्य श्रम सेवाएं प्रदान की थीं। अन्य कारीगरों जैसे कि सूत कातने वाले, बुनकरों, खनिकों आदि जो राज्य के लिए काम करते थे उन्हें कर देना पड़ता था।

मौर्य साम्राज्य में शहरीकरण का विस्तार सुदूर पश्चिमी और मध्य भारत के अन्य क्षेत्रों और दक्षिण भारत तक हुआ था। *गहपति* समृद्ध बन गये और ग्रामीण बस्तियों में काफ़ी विस्तार हुआ। व्यापारियों, सौदागरों और अधिकारियों द्वारा नगर आबाद किए जाने लगे थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* के अनुसार, राज्य ने शहर की स्थापना *दुर्गनिवेश* या *दुर्गविधान* की प्रक्रिया के माध्यम से की थी। इन शहरों में पुजारी, कुलीन, सैनिक, व्यापारी, कारीगर और अन्य लोग रहते थे। इस अवधि के शहरी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू नकदी में लेनदेन के लिए धातु से बने सिक्के का व्यापक उपयोग था। छठी शताब्दी बी.सी.ई. में सिक्कों का उपयोग प्रचलित हो गया था तथा वाणिज्य के विकास के कारण सिक्का मुद्रा विनिमय का एक महत्वपूर्ण माध्यम था। अधिकारियों के वेतन का भुगतान नकद में किया जाता था।

16.6 *अर्थशास्त्र* और *सप्तांग* सिद्धांत

अर्थशास्त्र पहला दक्षिण एशियाई ग्रंथ है जो राज्य के मूल सिद्धांत को प्रतिपादित करता है व सात घटक तत्वों का वर्णन करता है।। कौटिल्य ने राज्य को समझने के लिए *सप्तांग* सिद्धांत [सात अंतर-संबंधित और अंतरवर्ती घटक अंगों या तत्वों की एक प्रणाली (अंग या प्रकृति)] की अवधारणा प्रस्तुत की है। *सप्तांग*-राज्य की यह अवधारणा कुछ संशोधनों के साथ *धर्मशास्त्रों, पुराणों* और *महाभारत* सहित बहुत बाद के ग्रंथों में स्वीकार की गई थी।

सप्तांग सिद्धांत के सात तत्व निम्नवत हैं :

1) *स्वामी* (राजा)
2) *अमात्य* (मंत्रियों)
3) *जनपद* (क्षेत्र और उसके लोग)
4) *दुर्ग* (एक किले वाली राजधानी)
5) *कोश* (कोषागार)
6) *दंड* (न्याय या बल)
7) *मित्र* (सहयोगी)

राज्य को सात बुनियादी घटकों में विभाजित करने से प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक घटक की व्यक्तिगत ताकत या कमजोरी का आंकलन करने की अनुमति मिलती है। सात घटक तत्वों में से प्रत्येक को आदर्श गुणों के एक समूह द्वारा परिभाषित किया गया है। तत्व बराबर नहीं हैं।

स्वामी

अर्थशास्त्र द्वारा राजशाही को आदर्श माना गया तथा इसके सभी निर्देश राजा को संबोधित किए गए हैं। कौटिल्य के अनुसार, राजा का भाग्य उसकी जनता के साथ निकटता से जुड़ा था। यदि राजा ऊर्जावान होगा तो उसकी प्रजा भी ऊर्जावान होगी। इसके विपरीत यदि वह आलसी है, तो उसकी जनता परम आलसी होगी तथा साम्राज्य पर बोझ होगी। इस प्रकार, कौटिल्य ने सतर्क, मेहनती और समझदार राजा की वकालत की।

अशोक के शिलालेख से हमें राजतंत्र के बारे में जानकारी मिलती है जिसका उल्लेख कौटिल्य ने भी किया है। उसके लघु शिलालेख से पता चलता है कि अशोक ने बहुत साधारण उपाधि, ''मगध का राजा'', को धारण किया जो बाद में महान उपाधियों जैसे

महाराजा या *महाराजाधिराज* से बिलकुल विपरीत था। हालांकि, शिलालेखों में उसे *देवनामपिया* ('देवताओं के प्रिय') के नाम से उल्लेखित किया गया है, जो उसे एक दिव्य शासक के रूप में घोषित करता है। अशोक ने शिलालेख I और II में लिखा है कि "मेरे राज्य की सारी प्रजा मेरे पुत्र समान हैं"। इस प्रकार उसने पितृसत्तात्मक राजशाही की नींव रखी। उसने इस दुनिया में और आगे की दुनिया में स्थित सभी प्राणियों और जानवरों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए राजाओं के आदर्श निर्धारित किए।

अमात्य

अमात्य एक व्यापक शब्द है जिसमें सभी राज्य के उच्च पदस्थ अधिकारी, परामर्शदाता और विभिन्न विभागों के कार्यकारी प्रमुख शामिल थे। *अर्थशास्त्र* में दो प्रकार के परामर्शी निकायों की चर्चा है। पहला निकाय, मंत्रों (मंत्रियों) का एक छोटा सलाहकार निकाय था जिसे *मंत्र-परिषद* कहा जाता था तथा दूसरा निकाय विभाग के सभी कार्यकारी प्रमुखों का एक बड़ा निकाय था, जिसे *मंत्री-परिषद* कहा जाता था।

कौटिल्य के अनुसार, प्रशासन में *पुरोहित* (शाही पुजारी) एक महत्वपूर्ण अधिकारी होता था। *अर्थशास्त्र* में बताया गया है कि पुरोहित को एक प्रतिष्ठित परिवार से संबंधित होना चाहिए तथा उसे *वेदों* का ज्ञान होना चाहिए। पुरोहितों को दिव्य व नैसर्गिक संकेतों की व्याख्या में निपुणता के साथ-साथ राजनीति विज्ञान में भी पारंगत होना चाहिए। पुरोहितों को राज्य की ओर से दिए जाने वाले वेतन के बारे में कौटिल्य द्वारा दिए आंकड़ों को देखकर पुरोहित के महत्व के बारे में बखूबी समझा जा सकता है। कौटिल्य के अनुसार राज्य के सर्वोच्च अधिकारियों, मुख्यमंत्री, पुरोहित, और सेना के कमांडर को 48,000 *पण* और कोषाध्यक्ष को 24,000 *पण* मिलते थे। यदि कौटिल्य के अनुमान को सच मान लिया जाए तो राज्य प्रशासन द्वारा उच्च अधिकारियों को असाधारण रूप से अच्छी वेतन का भुगतान किया जाता था जो कुल राजस्व का एक बड़ा हिस्सा था।

जनपद

साम्राज्य के मान्यता प्राप्त सीमाक्षेत्र को *जनपद* कहा जाता था। *जनपद* राजा के लिए आय का एक प्रमुख स्रोत था। ग्रन्थ में कृषि उत्पादन के आधार पर आयकर निर्धारित करने का उल्लेख है तथा आयकर को बढाने के लिए राज्य द्वारा उपयोग किए जाने वाले विभिन्न निवेशों, पुरस्कारों और दंडात्मक रणनीतियों के बारे में भी जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त व्यापार के मार्गों, बंदरगाह वाले शहरों के विकास आदि पर राजा द्वारा विशेष ध्यान देना दर्शाता है कि वह आर्थिक स्थिति को सुदृढ करने की दिशा में सजग था।

दुर्ग

इसे किला भी कहा जाता था जिसका साम्राज्य की सीमा क्षेत्र को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण स्थान था। साम्राज्य के शहरों को किलेबंद कर इसकी सीमा क्षेत्रों को सुरक्षित रखा जाता है। दुश्मनों के हमले से राज्य की रक्षा एवं राज्य के प्रमुख आर्थिक और प्रशासनिक केंद्रों का *दुर्ग* में स्थित होना महत्वपूर्ण था। *अर्थशास्त्र* में उल्लिखित आदर्श राज्य में कई किले हैं, जो भौगोलिक व्यवस्था और उद्देश्य में भिन्न हैं। किलों में सबसे बड़ा राजधानी शहर है, जो राज्य के लिए एक प्रशासनिक, आर्थिक और सैन्य केंद्र के रूप में संचालित होता है। कौटिल्य ने लिखा है कि *दुर्ग* का निर्माण मिट्टी की ईंट और पत्थर से किया जाता था तथा इसके प्राचीर एवं पैरापेट इसे भव्य बनाते थे। *दुर्ग* के अंदर अनाज और आवश्यक वस्तुओं का सुरक्षित भंडारण किया जाता था। दिलचस्प बात यह है कि ग्रीक लेखों में इसी तरह के भव्य पैमाने पर मगध की राजधानी पाटलिपुत्र का वर्णन है।

कौटिल्य ने किले के पास सैनिकों को तैनात करने का भी सुझाव दिया है। उसने चार मुख्य भागों – पैदल सेना, घुड़सवार सेना, रथ और हाथियों के साथ एक स्थायी सेना का भी उल्लेख किया है। अशोक के शिलालेखों से हमें पता चलता है कि उसने कलिंग युद्ध के बाद *धम्म-विजय* (धम्म के माध्यम से जीत) पर ज़ोर दिया। किंतु उसने सेना को सतर्क रखा और इसे भंग नहीं किया।

दंड

न्याय स्थापित करने में प्रयुक्त बल को ही *दंड* कहा जाता है। *अर्थशास्त्र* में राज्य की न्यायिक प्रणाली को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने में *धर्मास्थ* (न्यायाधीशों) और *प्रादेश्त्री* (अपराधियों के दमन के लिए जिम्मेदार अधिकारी) का महत्वपूर्ण योगदान था। विभिन्न अपराधों के लिए जुर्माना से लेकर अंग भंग करने से लेकर मृत्युदंड तक की सजा दे दी जाती थी। कौटिल्य के अनुसार, सजा की प्रकृति न केवल अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर निर्भर करती थी, बल्कि अपराधी की जाति पर भी निर्भर करती थी। एक ही अपराध के लिए उच्च वर्णों के लिए हल्की सजा का प्रावधान था। उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षत्रिय का ब्राह्मण महिला के साथ यौन संबंध है, तो उसे उच्चतम जुर्माना देना होता था। उसी अपराध के लिए, एक वैश्य की पूरी संपत्ति जब्त कर ली जाती थी तथा सबसे खराब सजा शूद्रों के लिए आरक्षित थी।

अशोक के शिलालेखों में राज्य की न्यायिक जिम्मेदारियां शहर के *महामात्यों* के पास थी। शिलालेख में *महामात्यों* से आग्रह किया गया है कि वह निष्पक्ष होकर यह सुनिश्चित करें कि राज्य की जनता को पर्याप्त सबूतों के बिना कैद या दंडित न किया जाए। स्तंभ शिलालेख IV में अशोक ने समान (समता) न्यायिक प्रक्रिया शुरू करने का उल्लेख किया है। इसका मतलब यह निकाला गया कि उसने *दंड* में जाति भेद को समाप्त करते हुए एक समान नियम कानून स्थापित किया था।

मित्र

राज्य के राजनीतिक सहयोगियों को *मित्र* कहा जाता है। *विजिगीशु* यानी सम्भावित विजेता को कौटिल्य की राजनीति के केंद्र में रखा गया है। *विजिगीशु* से सम्बंधित तत्व – *अरी* (शत्रु), *मध्यम* (मध्य राजा), और *उदासीन* (उदासीन या तटस्थ राजा) अंतर-राज्य नीति के निर्धारण में उपयोगी थे। कौटिल्य ने विभिन्न नीतियों और रणनीतियों को सूचीबद्ध किया जिसे राजा परिस्थितियों के अनुसार अपना सकता था जैसे यदि दुश्मन शक्तिशाली है तो शांति संधि (*संधि*), कमज़ोर है तो विग्रह (*शत्रुता*)। अन्य विकल्पों में सैन्य अभियान या दुश्मनों के दुश्मन के साथ सहयोग बनाकर एक साथ हमला करना शामिल था।

अशोक ने व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से उत्तर पश्चिम में हेलेनिस्टिक राज्यों में मिशन भेजे। इनमें से सबसे प्रमुख था सेल्युकस के साथ मौर्य संबंध, चंद्रगुप्त के तहत हस्ताक्षरित संधि आदि। बाद के शासकों के साथ राजनयिक आदान-प्रदान जारी रहा। अशोक ने अन्य समकालीनों का भी उल्लेख किया है जिनके साथ उसने मिशनों का आदान-प्रदान किया। उनके शिलालेखों में यूनानी राजा अम्तियोग के साथ-साथ तुलमैया के राजाओं की भूमि, अनीतिका, मेक और अलिक्यशुदला का उल्लेख है। इतिहासकारों द्वारा क्रमशः सीरिया के एंटिओकस II (260-246 बी.सी.ई.), मिस्र के टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्फ़स (285-247 बी.सी.ई.), मैसिडोनिया के एंटीगोनस गोनाटस (276-239 बी.सी.ई.), सिरीन के मैगास और एपीरस के अलेक्ज़ेडर के रूप में पहचाना गया है। अशोक ने सीमावर्ती क्षेत्रों और पड़ोस के राज्यों में *धम्म* और बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए विशेष मिशनों को भेजा।

16.7 प्रशासन

मौर्य साम्राज्य एक विशाल क्षेत्रीय इकाई थी। इसे अच्छी तरह से संचालित करने के लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों की आवश्यकता थी। *अर्थशास्त्र*, यूनानी लेखों और अशोक के शिलालेखों से हमें उस समय के प्रशासनिक प्रणाली के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना को कई अंगों में विभाजित किया गया था तथा प्रत्येक अंग का प्रत्यक्ष शासन राजकुमार (*कुमार*) के तहत था। शिलालेखों में चार प्रांतों का उल्लेख है – दक्षिण प्रांत जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी, उत्तर प्रांत जिसकी राजधानी थी तक्षशिला, पश्चिम प्रांत जिसकी राजधानी थी उज्जयिनी तथा पुरब प्रांत जिसकी राजधानी थी, तोसाली। अशोक के शिलालेखों में इन प्रांतों के कुमार को *राज्यपाल* के रूप में उद्धृत किया गया है तथा महत्वपूर्ण पदों पर शाही राजकुमारों को नियुक्त करने की परंपरा को जारी रखने का सुझाव दिया गया है।

साम्राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों को *प्रादेशिक* कहा जाता था जिन्हें हर पांच साल में साम्राज्य का दौरा करने और ऑडिट करने के साथ-साथ प्रांतीय प्रशासन पर नज़र रखने का काम सौंपा गया था। इसके अलावा, शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में न्यायिक अधिकारी, *राजुक* थे, जिन्हें न्यायिक कार्यों के साथ साथ अक्सर राजस्व के मूल्यांकन का कार्य भी करना पडता था। विभिन्न प्रकार के कार्यों जैसे कि अधिशेष उत्पादन, अधिशेष की निकासी, इसका वितरण, क्षेत्रों को जीतने के लिए मजबूत सेना, व्यापारियों और किसानों से कर संग्रह आदि के लिए एक सुव्यवस्थित प्रशासन की आवश्यकता थी ।

मौर्य प्रशासन के विवरण निम्नवत है।

16.7.1 केंद्रीय प्रशासन

केंद्रीय प्रशासन को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

क) राजा

ख) मंत्रिपरिषद

ब) शहर प्रशासन

घ) सेना

ड़) जासूसी नेटवर्क

च) कानून और न्याय

छ) लोक कल्याण

अब इनमें से प्रत्येक श्रेणी के बारे में चर्चा विस्तार से।

क) **राजा:** राजा को मानक ग्रंथों में भी प्रधानता दी गई है। *अर्थशास्त्र* में राजा को प्रशासन का मुख्य केंद्र माना गया है। उनके पास मंत्रियों (*अमात्य*) को नियुक्त करने या हटाने की शक्ति थी। राजा का काम राजकोष की रक्षा, प्रजा की सुरक्षा करना; लोगों के कल्याण व देखभाल कर; अपराधियों को दंडित करना आदि था। राजा अपने नैतिकता के बल पर लोगों (*प्रजा*) को प्रभावित करने में समर्थ था। *अर्थशास्त्र* के अनुसार, यदि शास्त्रीय निर्देश राजा के निर्णय से भिन्न है तो राजा का निर्णय ही अंतिम माना जाएगा।

ग्रंथों में राजा के कुछ महत्वपूर्ण गुणों के बारे में बताया गया है। ये हैंः उच्च परिवार में जन्म; राजाओं और अधिकारियों को नियंत्रित करने की क्षमता; तेज बुद्धि; सत्यवादिता; और धर्म का पालन करने वाला। उसे एक कुशल योद्धा होना चाहिए, आर्थिक रूप से सम्पन्न और लेखन (लिपि) कला में परिपूर्ण होना चाहिए। इसके अलावा, ग्रंथ कुछ पूर्व शर्त निर्दिष्ट करते हैं जिन्हें राजा को पूरा करना चाहिए। उदाहरण के लिए, उसे सभी मामलों पर बराबर ध्यान देना चाहिए; कार्रवाई या सुधारात्मक उपाय करने के लिए सतर्क और सक्रिय रहें; उसे हमेशा अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना चाहिए; अपने सलाहकारों और अधिकारियों के लिए सुलभ हो। मेगस्थनीज़ और अशोक के ग्रंथों से यह पता चलता है कि राजा के लिए निर्दिष्ट इन विशेष कर्तव्यों का पालन मगध राजाओं द्वारा किया जाता था।

राज्य की प्रजा के साथ पिता तुल्य व्यवहार करने के कारण अशोक एक आदर्श राजा के रूप में जाना जाता है। वह अपने राज्य की प्रजा के कल्याण के बारे में सजग व सतर्क रहता था, लेकिन साथ ही वह एक पूर्ण सम्राट था। उसने अपने को *देवनामपिया* (देवताओं का प्रिय) घोषित किया था तथा रोमिला थापर के अनुसार उसने बिचौलियों, पुजारियों को अलग-थलग कर अपने को दिव्य शक्ति के रूप में प्रचारित किया। इससे यह पता चलता है कि राजा धार्मिक मामलों में भी अपने अधिकार का प्रयोग बखूबी करता था।

ख) **मंत्रिपरिषदः** *अर्थशास्त्र* एवं अशोक के ग्रंथों में भी मंत्रिपरिषद (*मंत्रिपरिषद*) का उल्लेख है। *अर्थशास्त्र* में उल्लेख किया गया है कि राज्य मंत्रियों की सहायता के बिना कार्य नहीं कर सकता था। शिलालेख III के अनुसार मंत्री परिषद का मुख्य कार्य परिषद के विभिन्न श्रेणियों द्वारा प्रशासनिक कार्य अच्छी तरह से कराना था। इसी तरह, शिलालेख VI में उल्लेख किया गया है कि मंत्रीपरिषद राजा की अनुपस्थिति में उनकी नीति पर चर्चा कर सकते थे; संशोधन का सुझाव दे सकते हैं तथा राजा द्वारा परिषद के लिए छोडे गए महत्वपूर्ण मामले पर अपनी राय दे सकते थे। फिर भी परिषद को तुरंत अपनी राय राजा तक पहुंचानी पड़ती थी। परिषद की प्राथमिक भूमिका सलाहकार की थी। राजा का निर्णय सभी प्रकार से अंतिम होता था।

परिषद (*भुवयीस्ट*) में बहुमत की राय सर्वोपरी होती है। ऐसे मामलों में जहां बहुमत का फैसला स्वीकार्य नहीं था, राजा का फैसला अंतिम होता था। भावी मंत्रियों के लिए आवश्यक योग्यता निर्दिष्ट थे।

ये योग्यताएँ थींः उन्हें धन का लालच नहीं होना चाहिए; किसी भी प्रकार के दबाव के आगे नहीं झुकना चाहिए; उसे सर्वपद्शुद्ध (सभी से शुद्ध) होना चाहिए। मंत्रियों की एक आंतरिक परिषद (*मन्त्रिन*) भी थी, जिन्हें उन मुद्दों पर परामर्श देना होता था जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता थी।

ग) **शहर प्रशासनः** मेगस्थनीज़ ने पालिबोथरा (पाटलिपुत्र) के संबंध में नगर प्रशासन के कई संदर्भ प्रस्तुत किए हैं। उनके ग्रंथ में, नगर परिषद को छह उप-परिषदों या समितियों में विभाजित किया गया था और प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। इन समितियाँ के बारे में संक्षिप्त चर्चाः

पहली समितिः यह उद्योग और शिल्प की देखभाल करती थी। यह समिति इन केंद्रों का निरीक्षण करती थी तथा मजदूरी/वेतन तय करने सम्बंधी कार्य भी करती थी।

दूसरी समितिः यह समिति विदेशियों की देखभाल करती थी। यह समिति विदेशियों के रहने, भोजन, आराम और सुरक्षा की व्यवस्था आदि का कार्य करती थी।

तीसरी समिति: जन्म और मृत्यु का पंजीकरण कार्य इस समिति के जिम्मे था।

चौथी समिति: यह समिति व्यापार और वाणिज्य की देखभाल करती थी। सामान का सही वजन, नाप-तौल तथा बाजारों का निरीक्षण आदि कार्य भी इस समिति के जिम्मे था।

पांचवीं समिति: निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण, उनकी बिक्री का प्रावधान तथा नए और पुराने सामान की गुणवत्ता व कीमत निर्धारण का कार्य इस समिति के जिम्मे था।

छठी समिति: यह बेची गयी वस्तुओं पर कर एकत्र करती थी; दर 1/10 थी।

यद्यपि *अर्थशास्त्र* में ऐसी किसी समितियों का उल्लेख नहीं है, किंतु ऊपर वर्णित कार्यों का उल्लेख अवश्य किया गया है। उदाहरण के लिए, चौथी समिति के कार्य *पणयाध्यक्ष* द्वारा किया जाता था, करों का संग्रह (छठी समिति) *शुल्काध्यक्ष* की जिम्मेदारी थी और जन्म और मृत्यु का पंजीकरण *गोप* का काम था। नगरीय प्रशासन के प्रमुख को *नगरिका* कहा जाता था। उन्हें दो अधीनस्थ अधिकारियों– *गोप* और *स्थानिका* की सहायता प्रदान की गई थी। अन्य अधिकारियों का भी उल्लेख किया गया है जैसे कि *बंधनगरध्यक्ष* (जेल की देखभाल); *रक्षी* (यानी पुलिस; लोगों की सुरक्षा का ध्यान रखने वाला); *लोहध्यक्ष, सौवर्णिका* (वे अधिकारी जो केंद्रों में निर्मित सामानों की देखभाल करते थे) आदि।

नगर प्रशासन विस्तृत और सुनियोजित था। विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न प्रावधान निर्धारित थे। कोई भी कानून से ऊपर नहीं था। गलत काम करने पर पुलिस को भी दंडित करने का प्रावधान था। इसी तरह, नियमों के उल्लंघन के दोषी पाए गए नागरिकों को भी दंडित किया जाता था ।

घ) **सेना:** *अर्थशास्त्र* में कलिंग युद्ध, सेल्यूकस का पीछे हटने तथा सेना के बारे में वर्णनात्मक लेख से पता चलता है कि मौर्यों के पास एक विशाल सेना थी। इसमें पैदल सेना, घुड़सवार सेना, हाथी, रथ, परिवहन और बेड़े शामिल थे। ग्रीक और भारतीय दोनों साहित्यिक स्रोत इस तथ्य का उल्लेख करते हैं कि चंद्रगुप्त की सेना जो नंद राजाओं के खिलाफ लड़ी थी, उसमें भाड़े के सैनिक भी शामिल थे। प्लिनी के लेखों के अनुसार, चंद्रगुप्त की सेना में 9000 हाथी, 3000 घुड़सवार और 6000 पैदल सैनिक शामिल थे। प्लूटार्क के लेख में 6000 हाथियों, 80000 घोड़ों, 20000 पैदल सैनिकों और 8000 युद्ध रथों की चर्चा है।

कौटिल्य ने भी अपने ग्रंथ में एक स्थायी सेना के चार मुख्य विभागों – पैदल सेना, घुड़सवार सेना, रथ और हाथियों के बारे में लिखा है। इनमें से प्रत्येक डिवीजन को एक कमान अधिकारी के अधीन रखा गया था, जिन्हें क्रमशः *पत्याध्यक्ष, अश्वाध्याक्ष, रथाध्यक्ष,* और *हस्ताध्यक्ष* के नाम से जाना जाता है। मेगस्थनीज़ ने इसी तरह नौसेना, उपकरण और परिवहन, पैदल सेना, घुड़सवार सेना, रथों और हाथियों की निगरानी के लिए पांच सदस्यों की छह समितियों की व्यवस्था का वर्णन किया है। इसके अलावा, सेना के लिए चिकित्सा सेवा का भी प्रावधान था।

आयुद्धगाराध्यक्ष जैसे अधिकारी भी थे जो विभिन्न प्रकार के शस्त्रों के उत्पादन और रखरखाव का काम देखते थे। *अर्थशास्त्र* में भर्ती नीति, युद्ध योजनाओं और किलेबंदी का भी उल्लेख है। अधिकारियों और सैनिकों को नकद में भुगतान किया जाता था। सेना के अधिकारियों का वेतन 4000 *पण* - 48000 *पण* के बीच था।

ड़) **जासूसी नेटवर्कः** *अर्थशास्त्र* में एक सुसंगठित जासूसी प्रणाली का उल्लेख है। जासूसों को मंत्रियों, सरकारी अधिकारियों पर नज़र रखने, नागरिकों के राज्य के बारे में विचार पता करने और विदेशी राजाओं के रहस्यों को जानने का कार्य था। वह तत्कालिक मामलों की सूचना सीधे राजा को देते थे। वे न केवल भेस बदल के चलते थे बल्कि जानकारी एकत्र करने के लिए नाइयों, रसोइयों आदि से भी भेद प्राप्त करते थे। *अर्थशास्त्र* में इन जासूसों के संबंध में विस्तार से उल्लेख है। इसके दो प्रकार होते थेः स्थिर (*संस्था*) और घमुंतु (*संचार*)। इसे फिर नौ भागों में उपविभाजित किया गया था। *अर्थशास्त्र* के अनुसार, गुप्त सेवा का प्रमुख *समाहर्ता* कहलाता था, जिसे मुख्य रूप से राजस्व संग्रह का काम सौंपा गया था। साथ ही एक और कार्य राजा को सुरक्षा प्रदान करना था। वास्तव में, राजा के अंगरक्षक में महिला तीरंदाज शामिल थी जो राजा के साथ शिकार पर भी जाती थी। इसके अतिरिक्त, राज्य द्वारा महिलाओं को जासूस के रूप में भी नियुक्त किया गया था।

च) **कानून और न्यायः** राज्य की सामाजिक व प्रशासनिक व्यवस्था के सुचारू संचालन और राजस्व के प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए साम्राज्य में एक व्यवस्थित कानूनी व्यवस्था थी। *अर्थशास्त्र* में विभिन्न अपराधों के लिए कई तरह के दंडों के बारे में जिक्र है। इनमें विवाह उल्लंघन से सम्बंधी कानून, तलाक, हत्या, चोरी, मिलावट, गलत वजन आदि का उल्लेख किया गया है। विवादों को निपटाने और अपराधियों को दंडित करने के लिए विभिन्न प्रकार की अदालतें थीं।

अर्थशास्त्र में *धर्मस्थ* (न्यायाधीशों) और *प्रादेश्त्री* (अपराधियों के दमन के लिए जिम्मेदार अधिकारी) के बारे में विस्तार से वर्णन है। विभिन्न अपराधों के लिए जुर्माना से लेकर अंग-भंग, यहां तक कि मृत्युदंड तक की भी सजा हो सकती थी।

राजा सर्वोच्च न्यायकर्ता एवं धर्म धारक होता था। यद्यपि अपराध कम होते थे तथा राजा के समक्ष मामलों की अपील *मध्यस्थों* के एक निकाय के माध्यम से प्रस्तुत की जाती थी। अशोक के शिलालेखों में न्यायिक जिम्मेदारियां शहर के *महामात्य* के जिम्मे थी। ग्रंथों में उल्लिखित है *महामात्य* को निष्पक्ष होना चाहिए और उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पर्याप्त सबूतों के बिना किसी को दंडित न किया जाए। शिलालेख I में उल्लेख है कि राजा द्वारा हर पांच साल में एक सज्जन अधिकारी जो न ज्यादा कठोर हो और न ज्यादा निष्ठुर, को न्याय सम्बंधी कार्यकलाप का निरीक्षण के लिए अधिकृत किया जाएगा जो अपनी रिपोर्ट समय से राजा को प्रस्तुत करेगा।

छ) **लोक कल्याणः** अशोक के कई शिलालेखों से स्पष्ट है कि वह अपने राज्य की प्रजा के कल्याण के लिए समर्पित था। मौर्य के शासनकाल के दौरान कई लोक कल्याणकारी कार्य किए गए थे। उदाहरण के लिए, राज्य द्वारा सिंचाई को सर्वोपरि माना गया। मेगस्थनीज़ ने उन अधिकारियों का उल्लेख किया है जो सिंचाई का पर्यवेक्षण करते थे। सिंचाई के साधनों और जल संसाधनों के प्रकारों को संरक्षण दिया गया था, और इसे क्षति पहुँचाने वाले को दंडित किया जाता था। राज्य ने लोगों को अपनी पहल पर बांधों की मरम्मत के लिए प्रोत्साहित किया और बदले में राजस्व में छूट दी गयी। जूनागढ़ रुद्रदामन के शिलालेख (दूसरी शताब्दी सी. ई.) के अनुसार, चंद्रगुप्त के समय में सुदर्शन झील का निर्माण किया गया था। राज्य ने सड़कों की मरम्मत भी की तथा ज़रूरतमंदों को चिकित्सा उपचार और दवाएं उपलब्ध कराई जाती थी। विभिन्न प्रकार के वैद्य और चिकित्सक (*चिकत्सक*), दाइयों (*गर्भव्याधि*) आदि के बारे में भी उल्लेख मिलता है। अशोक ने आह्वान किया कि राज्य में अनाथ, बूढ़ी महिलाओं की देखभाल की जानी चाहिए। नागरिकों को अकाल, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार, राज्य ने अपने राजस्व का एक निश्चित हिस्सा अपने प्रजा के कल्याण में लगाया।

16.7.2 जिला और ग्राम स्तरीय प्रशासन

अर्थशास्त्र के अनुसार, प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थी। कुछ गांवों को मिलाकर एक जिला तथा कई जिलों को मिलाकर प्रांत बनाया गया था। प्रत्येक जिले में इसकी सीमाओं, पंजीकृत भूमि के रिकॉर्ड तथा जनसंख्या की जनगणना और पशुधन के रिकॉर्ड को बनाए रखने के लिए एक *लेखाकार* होता था। हर जिले के लिए एक कर संग्राहक भी था, जो विभिन्न प्रकार के राजस्व के लिए जिम्मेदार था। ग्राम स्तर पर, सबसे महत्वपूर्ण कार्य ग्राम प्रधान का था, जो जिला लेखाकार और कर संग्राहक के प्रति जवाबदेह था।

जिला स्तर पर प्रशासन चलाने के लिए सूचीबद्ध अधिकारी होते थे जो *प्रदेशिका, राजुका* और *युक्त* कहलाते थे। *प्रदेशिका* जिले का समग्र प्रभारी तथा *युक्त* कनिष्ठ अधिकारी होता था जो अन्य दो को सचिवीय प्रकार की सहायता प्रदान करता था। अधिकारियों को भूमि का सर्वेक्षण और मूल्यांकन; पर्यटन और निरीक्षण; राजस्व संग्रह; तथा कानून और विधि व्यवस्था बनाए रखना आदि कार्य करने की जिम्मेदारी थी।

कई बार राजा इन अधिकारियों के साथ सीधे संपर्क में रहता था। चौथे स्तंभ के संस्करण में उल्लेख किया गया है कि अशोक ने *राजुकों* को लोक कल्याण से संबंधित कुछ जिम्मेदारियों को निभाने के लिए 'स्वतंत्र अधिकार' प्रदान किया था। इसके अलावा, प्रत्येक श्रेणी के अधिकारियों की शक्तियों पर नियंत्रण रखा जाता था।

गाँव में अधिकारियों के रूप में नियुक्त स्थानीय लोगों को *ग्रामिका* कहा जाता था। *गोप* और *स्थानिका* दो प्रकार के अधिकारी थे, जो जिला और ग्राम स्तर की प्रशासनिक इकाइयों के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। उन्हें निम्नलिखित काम सौंपा गया थाः गांव की सीमाओं का सीमांकन; भूमि का रेकॉर्ड बनाए रखना; लोगों की आय और व्यय का रेकॉर्ड रखना, कर का रेकॉर्ड रखना, राजस्व और जुर्माना आदि। इन अधिकारियों की उपस्थिति के बावजूद, गांवों के लोग अपने निजि मामलों का कुछ हद तक स्वंय निपटारा कर स्वायत्तता का आनंद लिया करते थे।

प्रशासनिक प्रणाली काफ़ी हद तक करों के कुशल संग्रह के इर्द-गिर्द घूमती है। हमें लुम्बिनी में अशोक के शिलालेख से पता चलता है कि भू-राजस्व दो प्रकार का था – *बली* और *भाग*। कर का निर्धारण क्षेत्र के आधार पर होता था। कर का निर्धारण भूमि के उत्पादन के एक चौथाई से लेकर 1/6 तक होता था। उपज का एक चौथायी हिस्सा किसानों द्वारा कर के रूप में भुगतान किया जाता था। उन्हें कुछ भेंट के रूप में भी देना होता था। भूमि कर (*भाग*) राजस्व का मुख्य स्रोत था। यह उपज के 1/6 वें हिस्से के रूप में लगाया गया था। यह मौर्य काल में अधिक हो सकता था। अशोक के लुम्बिनी संस्करण में कहा गया है कि बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा के दौरान, उन्होंने गाँव को *बली* के भुगतान से छूट दी और भाग के भुगतान को 1/8वां कर दिया। बटाईदारी एक और तरीका था जिसके द्वारा राज्य में कृषि संसाधनों को एकत्रित किया जाता था। बटाईदारों को कृषि योग्य भूमि के साथ साथ बीज, बैल आदि उपलब्ध कराए जाते थे तथा किसान द्वारा राज्य को उपज का आधा हिस्सा कर के रूप में चुकाना होता था। अन्य प्रकार के कर भी प्रचलित थे। किसान *पिंडकर* नामक कर का भुगतान करते थे जिसका भुगतान कृषकों द्वारा किया जाता था, जिसका आकंलन गाँवों के समूह द्वारा किया जाता था। यह एक प्रकार की प्रथा थी। गांवों के लोग अपने क्षेत्रों से गुज़रती सेना को रसद उपलब्ध कराते थे। उस समय *हिरण्य* नाम का कर था जिसके बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है। इसका भुगतान नकद में किया जाता था। कुछ कर स्वैच्छिक थे जैसे *प्रणयकर*, जिसका शाब्दिक अर्थ है स्नेह का उपहार। सर्वप्रथम पाणिनि ने इसका उल्लेख किया तथा कौटिल्य ने इसका विस्तार से वर्णन किया। यह कर

भूमि की मिट्टी की प्रकृति के अनुसार उपज का एक तिहाई या एक चौथाई होता था। समय के अनुसार यह अनिवार्य बन गया।

मेगस्थनीज़ ने यह भी माना कि सभी भूमि राजा की है, और काश्तकार इस शर्त पर भूमि को जोतते थे कि उन्हें उपज का एक चौथाई हिस्सा उपज के रूप में कर देना होगा। अन्य ग्रीक लेखों से यह प्रतीत होता है कि राजा की भूमि की खेती के लिए कृषक को उपज का एक चौथाई हिस्सा मिलता था। इन लेखों में शासक भूमि का जिक्र है जिसे *सीता* कहा जाता था। इसका नाम शासक द्वारा रखा गया था और उसे अपनी भूमि (*स्वभूमी*) के रूप में नामित किया गया था। इस शासक भूमि को राज्य की देखरेख में, बटाईदार या किरायेदार काश्तकारों द्वारा जोता जाता था तथा कर का भुगतान तथा कभी कभी खेती के एवज में उन्हें मजदूरी दी जाती थी। *अर्थशास्त्र* में, कृषि के एक *सीताध्यक्ष* अधीक्षक का उल्लेख किया गया है, जो सम्भवतः सीता भूमि की खेती का पर्यवेक्षण करते थे।

मौर्य राज्य में शेष भूमि, जिसे *जनपद* प्रदेश के रूप में जाना जाता है, संभवतः निजी कृषकों के अधीन थी। *जातक, गहपति* एवं *ग्रामभोजक* का जिक्र हैं जिसके बारे में कहा गया है कि वे राज्य में सिंचाई की व्यवस्था के लिए मजदूरों को रखते थे तथा यह दर्शाता है कि वे भूमि के मालिक थे। कृषि के सुदृढ़ीकरण के लिए सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। *अर्थशास्त्र* में एक जल उपकर का उल्लेख किया गया है जो उपज का पांचवां, एक चौथाई या एक तिहाई होता था। इस तरह के क्षेत्रों में केवल सिंचित भूमि पर उपकर लगाया जाता था, जो दर्शाता है कि राज्य जहाँ भी वर्षा होती है, वहाँ सिंचाई सुविधाओं को नियंत्रित करता है। जैसा कि पहले कहा गया था, करों के माध्यम से भू राजस्व का संग्रह राज्य का एक महत्वपूर्ण मामला था। इसके सर्वोच्च प्रभारी अधिकारी *समाहर्ता* कहलाते थे। *सन्नीधाता* राज्य कोषागार का प्रमुख संरक्षक होता था। चूंकि उत्पाद उपज के रूप में भी एकत्र किया जाता था, अनाज के भंडारण की सुविधा प्रदान करना राज्य की जिम्मेदारी थी।

दास-कर्मकारों के द्वारा श्रम उपलब्ध कराया जाता था जिसे दास व किराये के श्रमिक कहा जाता था। *अर्थशास्त्र* के अनुसार मजदूरों की विभिन्न श्रेणियों में मजदूर, बंधुआ मजदूर और दास शामिल थे।

16.8 समाज

मेगस्थनीज़ और बाद के यूनानी लेखकों ने मौर्य काल में भारतीय समाज का वर्णन सात अलग-अलग समूहों – दार्शनिकों, कृषकों, शिकारियों और चरवाहों, कारीगरों और व्यापारियों, सैनिकों, अवेक्षक (जासूसों) एवं राजा के परामर्शदाताओं के रूप में किया है। ग्रीक लेखक इन समूहों को सात 'जीनोस' के रूप में वर्णित करते हैं। मेगस्थनीज़ ने नोट किया कि इन समूहों के व्यवसाय वंशानुगत प्रकृति के थे। समूहों के बीच अंतर-विवाह की अनुमति नहीं थी। जाति व्यवस्था के कार्यकलाप की ये दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। आइए हम मेगास्थनीज़ की श्रेणियों का अन्य प्राथमिक स्रोतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करें:

मेगस्थनीज के अनुसार भारत में उच्च स्तरीय सामाजिक स्थिति के लोग थे जिन्हें' दार्शनिक' (परिष्कारक और दार्शनिक) कहा जाता था। स्ट्रैबो ने उन्हें आगे दो समूहों में विभाजित किया, *ब्राकमनेज़* (ब्राह्मण) और *गार्मनेज़* (श्रमण)। इनका काम भविष्यवाणी करना था तथा ये सार्वजनिक लाभार्थी के रूप में जाने जाते थे। इन्हें करों के भुगतान से छूट दी गयी थी। हम अन्य ग्रन्थों से जानते हैं कि ब्राह्मणों और श्रमणों का वर्णन बाद के समय में सामान्य शब्दों में किया गया है। ये तपस्वी समूहों और संप्रदायों की एक श्रृंखला के थे जिनमें बौद्ध, जैन, आजीवक, आदि शामिल थे।

दूसरी श्रेणी के बारे में, मेगस्थनीज़ लिखते हैं कि खेती करने वाले का समूहों सबसे बड़ा था। जाहिर है, आबादी का बड़ा हिस्सा कृषि कार्य में लगा हुआ था। ग्रीक लेखक कृषि कार्य के विस्तृत ढांचे से अचंभित थे। ग्रीक लेखक अत्यधिक उपजाऊ मिट्टी, नदियों की उपस्थिति और भरपूर वर्षा के लाभदायक संयोजन के कारण प्राप्त फसलों की विविधता की बात करते हैं।

मेगस्थनीज़ द्वारा उल्लिखित तीसरी श्रेणी शिकारी और चरवाहों की है। मेगस्थनीज़ के अनुसार ये लोग कृषि बस्तियों के बाहर रहते थे। शिकारी और संग्रहकर्ता अवांछित जानवरों और पक्षियों का शिकार करते थे तथा पर्यावरण संतुलन के वाहक होते थे। *अर्थशास्त्र* के अनुसार, जंगलों को निजी तौर पर साफ नहीं किया जा सकता था क्योंकि इसकी निगरानी राज्य द्वारा की जाती थी। वन उपज को एकत्र करने और उस पर कर लगाने का कार्य राज्यों का था। गाँवों के भीतर भी जानवरों के पालन-पोषण जैसी गैर-कृषि गतिविधियों का पालन किया जाता था। कौटिल्य ने उन जानवरों को भी सूचीबद्ध किया, जिन पर कर लगाया गया था।

मेगस्थनीज़ का चौथा समूह गैर-कृषि गतिविधियों – कारीगरों और व्यापारियों से संबंधित है। ग्रीक लेखकों का सुझाव है कि सभी कारीगरों (*टेक्नीताई*) को राज्य द्वारा नियोजित किया गया था और करों का भुगतान करने से छूट दी गई थी। स्ट्रैबो के अनुसार, स्वतंत्र कारीगरों के अलावा, शस्त्र बनाने वाले व जहाज निर्माता राज्य द्वारा नियोजित थे और इन्हें वेतन का भुगतान किया जाता था। अधिकांश कारीगर या तो व्यक्तिगत रूप से या संघ के सदस्य के रूप में काम करते थे। ये संघ – *श्रेणी* या *पुग* – धीरे-धीरे शक्तिशाली बन गए और धार्मिक संप्रदायों और कला के संरक्षक के रूप में बेहद प्रभावशाली थे। मेगस्थनीज़ की यह धारणा कि भारतीय उधार नहीं लेते थे या ब्याज पर पैसा उधार नहीं देते थे, गलत साबित हुई, क्योंकि शुरुआती समय से उधार लेन-देन किया जाता था।

यूनानियों द्वारा नोट किया गया पांचवा समूह सैनिकों का दूसरा सबसे बड़ा समूह था। मौर्यों के पास एक बड़ी सेना थी। विभिन्न स्रोतों से इनके आकार व प्रकार के बारे में अलग अलग जानकारी उपलब्ध है। प्लिनी के अनुसार, सेना में 700 हाथी, 1,000 घोड़े और 80,000 पैदल सेना शामिल थे। इसके विशाल आकार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सेना में भर्ती केवल क्षत्रिय या पारंपरिक योद्धा समूह ही नहीं था। इतनी बड़ी सेना को बनाए रखने के लिए बडे संसाधनों की ज़रूरत होती थी तथा राजा द्वारा इसकी क्षति-पूर्ति के लिए प्रजा पर अतिरित टैक्स लगाया जाता था।

सेना के साथ घनिष्ठता से जुड़ा छठा समूह था, *अवेक्षक* (जासूस या निरीक्षक)। ग्रीक लेखों के अनुसार वे सबसे भरोसेमंद व्यक्ति होते थे और कभी झूठ नहीं बोलते थे। हालांकि, कौटिल्य ने सिफारिश की है कि जासूस की रिपोर्ट स्वीकार्य होने से पूर्व इसकी तीन अन्य स्रोतों द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए।

मेगस्थनीज़ द्वारा उल्लिखित अंतिम समूह राजा का परामर्शदाता होता था। यह समूह संख्या में सबसे छोटा था। इसमें सेना के जनरलों, राजस्व प्रमुखों आदि सहित विभिन्न क्षेत्र के सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारियों को शामिल किया गया था। भारतीय स्रोतों में इस समूह के निकटतम समकक्ष *अमात्य* या मंत्री होते थे।

हालांकि मेगस्थनीज़ को लगता था कि भारत में गुलामी की कोई अवधारणा नहीं थी। दूसरी ओर, हम उन परिस्थितियों के अन्य स्रोतों से अवगत हैं जिनके कारण दासता पैदा हुई। एक व्यक्ति या तो जन्म से गुलाम हो सकता है, स्वेच्छा से खुद को बेचकर, युद्ध में कैद होने

से, या न्यायिक सजा के परिणामस्वरूप। उस काल में *विष्टी* नामक एक कर का भी पता चलता है जिसका भुगतान श्रम के रूप में किया जाता था। कौटिल्य ने भी ऐसे विभिन्न प्रकार के दासों का वर्णन किया है।

मेगस्थनीज़ की इंडिकाः एक अध्ययन

मेगस्थनीज़ मूल रूप से, आर्कोशिया के गवर्नर (वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान का कंधार क्षेत्र) सिबिरव्योस के दरबार में सेल्यूकस निकेटर का एक प्रतिनिधि था। चंद्रगुप्त और सेल्यूकस के बीच हुई संधि के बाद, मेगस्थनीज़ को सेल्यूकस के दूत के रूप में चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा गया। भारत में अपनी यात्रा और अनुभवों के आधार पर, उन्होंने *इंडिका* नामक एक पुस्तक लिखी। दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ गुम हो गया। इस पुस्तक के बचे कुचे अंश जो हेलेनिस्टिक दुनिया से संबंधित है, बाद के लेखकों (डायोडोरस, स्ट्रैबो, एरियन और प्लिनी) द्वारा उद्धरण के रूप में उपलब्ध कराए गए हैं। मेगस्थनीज़ ने भारत में जो कुछ भी देखा जैसे, इसका आकार और प्रकार, नदियाँ, मिट्टी, जलवायु, पौधे, जानवर, कृषि उपज, प्रशासन, समाज और लोककथाएँ आदि, इन सभी का *इंडिका* में वर्णन किया है। उपमहाद्वीप के जानवरों ने विशेष रूप से ग्रीक लेखकों और उनके दर्शकों को मोहित किया था। अनोखे जानवर जैसे हाथी, बंदर और गतिविधियां जैसे घोड़ा प्रशिक्षण, हाथी प्रशिक्षण आदि के बारे में विस्तार से लिखा गया है। उन्होंने इसका अपने देश के साथ समानता का भी उल्लेख किया है, विशेष रूप से किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं के संदर्भ में।

क्या मेगस्थनीज़ एक विश्वसनीय इतिहासकार था? यह एक बहस का विषय है। इसके लेखों में कई बेतुके बयान हैं जो हमें मेगस्थनीज़ के बारे में ख्याल बदलने को विवश करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में कोई गुलामी नहीं थी, या कि भारतीयों ने कभी झूठ नहीं बोला, चोरियाँ नहीं होती थी, किसानों को कभी भी युद्ध में नहीं शामिल किया गया, भारतीयों ने उधार लेन-देन नहीं किया आदि। उपमहाद्वीप के अन्य स्वदेशी स्रोतों के साथ इसका मिलान करने पर पता चलता है कि ये कथन सत्य नहीं हैं।

इस प्रकार, ग्रीक स्रोतों से मौर्य के बारे में जानकारी एक दोहरे निस्यंदक (double filter) के माध्यम से हमारे पास आती है – पहली मेगस्थनीज़ की व्याख्या थी जो उसने देखी या सुनी थी, और दूसरी, बाद के ग्रीक-रोमन लेखकों द्वारा मेगास्थनीज़ के तथ्यों की व्याख्या थी। एक इतिहासकार के रूप में इन ग्रंथों को पढ़ने के लिए, लेखकों की मूल धारणाओं और उन लोगों के बारे में पता होना चाहिए जो बाद में बड़े पैमाने पर चर्चा करते हैं। प्राचीन काल के ग्रंथों का अध्ययन एक जटिल प्रक्रिया है और इस तरह के निस्यंदक को हटाने की आवश्यकता है। थापर का मानना है कि मेगस्थनीज़ का लेख इस तथ्य से प्रभावित था कि वह सेल्यूसिड क्षत्रप प्रणाली से परिचित था और इसलिए *इंडिका* पर हेलेनिस्टिक और सेल्यूसिड छाप देखने को मिलती है।

स्रोतः रोमिला थापर, 1993

बोध प्रश्न 2

1) *अर्थशास्त्र* में वर्णित राज्य के *सप्तांग* सिद्धांत पर एक नोट लिखें ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मौर्यों के अंतर्गत प्रशासनिक संरचना का 100 शब्दों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही है (✓) या गलत (×)।

क) शूद्रों को बड़े पैमाने पर कृषि कार्यों के लिए नियोजित किया गया था। ( )

ख) मौर्यकालीन भारत के सभी गाँव प्रत्यक्ष राज्य नियंत्रण में थे। ( )

ग) *अर्थशास्त्र* के अनुसार राजा के सामने मंत्रिपरिषद का निर्णय अंतिम था। ( )

घ) भारतीय राजव्यवस्था में राजा के दृष्टिकोण के संबंध में अपने प्रजा के प्रति एक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को अपनाना एक नया विकास था। ( )

ड़) मेगस्थनीज़ के लेखों में शहर प्रशासन का कोई विवरण नहीं है। ( )

च) कौटिल्य की योजना में राज्य के सात घटकों में राजा इसके केंद्र में था। ( )

छ) मौर्य राज्य ने सेना के रखरखाव पर एक बड़ी राशि खर्च की। ( )

ज) मौर्यों के पास जासूसी की कोई व्यवस्था नहीं थी। ( )

झ) इस अवधि के दौरान अदालतों के कामकाज के कुछ नियम और कानून थे। ( )

ण) राजा को राजस्व में छूट देने का कोई अधिकार नहीं था। ( )

16.9 सारांश

मौर्य काल ने भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में पहले साम्राज्य की स्थापना देखी। इतने बड़े साम्राज्य के लिए शासन की नई रणनीतियों की आवश्यकता थी। मौर्यों के अधीन स्थापित प्रशासन की जटिल प्रणाली सफलताओं की नींव का आधार बनीं। अशोक, सभी सैन्य महत्वाकांक्षाओं को त्यागने और अपने आध्यात्मिक पक्ष की ओर मुड़ने के लिए जाना जाता है। उन्होंने *धम्म* को बढ़ावा देने का फैसला किया, जो बुद्ध की शिक्षा में उनकी व्यक्तिगत आस्था से प्रेरित था।

मौर्य शासन के तहत पूर्ववर्ती शताब्दियों में कृषि विस्तार और शहरीकरण की सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाएं जारी रहीं, और शहरों, व्यापार और मुद्रा अर्थव्यवस्था में और वृद्धि हुई। हालांकि, अशोक के बाद, साम्राज्य में तेजी से गिरावट देखी गई। अगली इकाई में इस राज्य की ऊँचाई उसके बाद की गिरावट पर करीब से व्याख्या होगी।

16.10 शब्दावली

आजीवक : बुद्ध के समय का एक विधर्मी संप्रदाय

उपकर : कर

चक्रवर्ती / चक्रवर्तीगल / चक्रवत्ती : सार्वभौमिक सम्राट

क्लासिकल स्रोत : इसका इशारा ग्रीक स्रोतों की ओर है उदाहरणार्थ मेगास्थनीज़ की *इंडिका*।

प्रसार : उत्पत्ति के केंद्र से किसी भी वस्तु का फैलना

उदार : विविध विचारों और दर्शन से स्वतंत्र रूप से उधार लेना

जासूसी : जासूस प्रणाली

राजकोषीय : आर्थिक और वित्तीय उपाय

काहपण / कार्षपण / पण : व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली सिक्का श्रृंखला, अक्सर चांदी

सीता भूमि : राजा द्वारा सीधे स्वामित्व वाली / नियंत्रित भूमि

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 16.2 देखें

2) भाग 16.4 देखें

बोध प्रश्न 2

1) भाग 16.6 देखें।

2) भाग 16.7 और इसके उप-भाग देखें

3) (क) ✓ (ख) × (ग) × (घ) ✓ (ड़) ×
(च) ✓ (छ) ✓ (ज) × (झ) ✓ (ण) ×

16.12 संदर्भ ग्रन्थ

थापर, रोमिला (1993). *द मौर्याज रिविज़िटेड.* सखाराम गणेश दयोश्कर लेक्चर्स ओन इंडियन हिस्ट्री, 1984. कोलकताः के. पी. बाग्ची एंड कम्पनी.

थापर, रोमिला (1997). *अशोक एंड द डिक्लाईन ऑफ द मौर्याज.* रिवाईज्ड ऐडिशन दिल्लीः ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस.

थापर, रोमिला (2003). *द पैन्गुईन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडियाः फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए डी 1300.* लंदनः पेन्गुईन बुक्स.

सिंह, उपिन्दर (2008). *ए हिस्ट्री ऑफ ऐंशियंट एंड अर्ली मेडिवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन ऐज टू द 12वीं सेन्चुरी.* दिल्लीः पियर्सन लोंगमैन

इकाई 17 मौर्य*

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

17.3 अभिलेखों का विस्तार

17.4 *धम्म*

- 17.4.1 कारण
- 17.4.2 *धम्म* के तत्व
- 17.4.3 अशोक की *धम्म* नीति और मौर्य राज्य
- 17.4.4 *धम्म*-व्याख्यायें

17.5 मौर्यकला एवं वास्तुकला

- 17.5.1 मौर्य कला के उदाहरण

17.6 साम्राज्य का विघटन

- 17.6.1 अशोक के उत्तराधिकारी
- 17.6.2 विघटन के अन्य राजनीतिक कारण
- 17.6.3 अशोक और उसकी नीतियां
- 17.6.4 आर्थिक समस्याएं

17.7 उत्तर मौर्य काल में स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं का विकास

17.8 सारांश

17.9 शब्दावली

17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.11 संदर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आपः

- यह समझ सकेंगे कि *धम्म* नीति के प्रतिपादन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी;
- अशोक की *धम्म* नीति की मुख्य विशेषताओं;
- मौर्यकालीन कला और वास्तुकला की मुख्य विशेषतायें; और
- मौर्य साम्राज्य के पतन के उत्तरदायी विभिन्न कारकों के बारे में जानेंगे।

17.1 प्रस्तावना

अनेक इतिहासकार अशोक को प्राचीन विश्व का महानतम् सम्राट मानते हैं। उसकी *धम्म* नीति विद्वानों के बीच निरंतर चर्चा का विषय रही है। *धम्म* शब्द संस्कृत के शब्द धर्म का

*यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-5 से ली गयी है।

प्राकृत रूप है। *धम्म* को विभिन्न अर्थों जैसे धर्मपरायणता, नैतिक जीवन, सदाचार आदि के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

किन्तु अशोक द्वारा प्रयुक्त *धम्म* को समझने के लिये सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके अभिलेखों को पढ़ा जाए। यह अभिलेख मुख्य रूप से इसलिये लिखे गये थे कि सारे साम्राज्य में लोगों को *धम्म* के सिद्धांतों के बारे में समझाया जाये। *धम्म* सिद्धांतों को सबके लिये सुलभ और बोधगम्य बनाने के लिये उसने अभिलेखों और शिला-लेखों को सारे राज्य के महत्वपूर्ण स्थानों पर लगवाया। *धम्म* के संदेशवाहकों को साम्राज्य के बाहर भी भेजा। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि *धम्म* से किसी विशेष धार्मिक विश्वास या व्यवहार का तात्पर्य नहीं है, अतः *धम्म* (या इसके संस्कृत पर्याय धर्म) का अनुवाद धर्म नहीं मानना चाहिये। साथ ही *धम्म* मनमाने तौर पर बनाया हुआ शाही सिद्धांत भी नहीं था। *धम्म* का संबंध मोटे रूप से सामाजिक व्यवहार और क्रियाओं से था। अशोक ने *धम्म* में उस समय के सभी प्रचलित विविध सामाजिक नियमों का मिश्रण किया गया था। अशोक ने *धम्म* का क्यों और कैसे प्रवर्तन किया और इससे उसका क्या तात्पर्य था, यह जानने के लिए उस समय की विशेषताओं को समझना होगा और बौद्ध, ब्राह्मण और अन्य ग्रन्थों को समझना होगा जिनमें सामाजिक व्यवहार के नियमों का वर्णन है।

17.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धम्म नीति के विभिन्न पक्षों तथा इसके प्रतिपादन के कारणों को समझने के लिए हमें आवश्यक रूप से उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना होगा जिसके कारण अशोक को यह नीति अस्तित्व में लानी पड़ी। अगले तीन भागों में हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करेंगे।

समाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

जैसा कि कहा जा चुका है कि मौर्य काल में समाज के आर्थिक ढांचे में काफ़ी परिवर्तन आए। लोहे के प्रयोग से अतिरिक्त उत्पादन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इस प्रकार सरल ग्रामीण अर्थव्यवस्था से एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें शहरों तथा नगरों की महत्वपूर्ण भूमिका थी की ओर संक्रमण हुआ। यह सामान्य रूप से कहा जाता है कि उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भांड इस युग की भौतिक सम्पन्नता का प्रतीक है। आहत चांदी के सिक्के, तथा अन्य प्रकार के सिक्कों का प्रयोग, व्यापार मार्गों को राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान किया जाना तथा शहरी केन्द्रों का उदय अर्थव्यवस्था में ऐसे संरचनात्मक परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं जिनके लिए समाज में सामंजस्य की आवश्यकता थी। व्यापारी वर्ग इस समय तक समाज में अपना स्थान बना चुका था। शहरी संस्कृति के उदय के साथ ही समाज के संगठन में लचीलापन अनिवार्य बन गया। कृषि उपयोग में लाए जाने वाले बहिवर्ती क्षेत्रों की जन जातियों एवं अन्य लोगों के समाज की मुख्य धारा में विलय से भी समस्याएं खड़ी हुई। चार वर्गों पर आधारित ब्राह्मणीय सामाजिक व्यवस्था और अधिक कठोर बनी व वह व्यापारी वर्ग को वर्णव्यवस्था में उच्च स्तर देना नहीं चाहती थी। ब्राह्मण वर्ग की इस कठोरता से सामाजिक विभाजन का संकट और गहरा हो गया। निम्न वर्ग विभिन्न विर्धमिक सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट होने लगे जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होने लगा। ऐसी ही विषम परिस्थिति में सम्राट अशोक ने 269 बी.सी.ई. में राज्य का दायित्व ग्रहण किया।

धार्मिक परिस्थितियां

उत्तर वैदिक काल के दौरान समाज पर ब्राह्मणों की जो पकड मजबूत हुई थी, उसे अब निरंतर आघात पहुंच रहा था। पुजारियों की सुविधायें, वर्णव्यवस्था की कठोरता तथा व्यापक

कर्मकांडों के प्रचलन पर अब प्रश्न उठने लगे थे। चार वर्णों के सबसे निम्न वर्ण नए सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट होने लगा। वैश्य जो कि किसी तरह उच्च श्रेणी में सम्मिलित कर लिए गए थे, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की तुलना में तुच्छ समझे जाते थे। व्यापारी वर्ग द्वारा ब्राह्मणवाद का विरोध समाज के अन्य संप्रदायों के लिए प्रेरणास्रोत बन रहा था।

बौद्ध मत का बल कष्टों पर था तथा इसने मध्य मार्ग अपनाने पर बल दिया। यह मत नैतिक सिद्धांतों पर आधारित था। बौद्ध मत ने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नकारा और बलि तथा कर्मकाण्डों का विरोध किया। इस प्रकार इस मत ने निम्न वर्गों तथा उदीयमान सामाजिक वर्गों को अपनी ओर आकृष्ट किया। बौद्ध मत द्वारा सामाजिक संबंधों में मानवीय दृष्टिकोण का प्रचार निर्धन वर्गों को अपनी ओर और भी आकृष्ट करने लगा।

राज्य व्यवस्था

आप पढ़ चुके हैं कि छठी शताब्दी बी.सी.ई. में महाजनपदों के उद्‌भव के साथ भारत के अनेक भागों में राज्य व्यवस्था की शुरुआत हुई। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज के एक छोटे तबके के पास शक्ति का संकेन्द्रण हुआ। इस शक्ति का वे समाज के अन्य तबकों पर अनेक तरीकों तथा कारणों से प्रयोग करते थे। कुछ ऐसे राजतंत्र थे जिनमें राजा सर्वशक्तिमान था तथा ऐसे गणसंघ थे जिनमें शासन का नियंत्रण वंशानुगत क्षत्रियों या कुछ समुदायों के पास था। जिस समय अशोक सिंहासन पर बैठा, दो सौ साल पुरानी राज्य व्यवस्था काफ़ी विस्तृत और जटिल हो चुकी थी। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें निम्न थीं:

- एक क्षेत्र विशेष (मगध) का राजनैतिक प्रभुत्व उस विशाल क्षेत्र पर स्थापित हो चुका था जिसमें पहले कई राज्य, गणसंघ तथा ऐसे भाग थे जहां किसी प्रकार की संगठित राज्य व्यवस्था नहीं थी।
- इस विशाल क्षेत्र में कई प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र, सांस्कृतिक क्षेत्र तथा विभिन्न प्रकार के धर्म, विचार और परम्परायें थीं।
- शासन वर्ग द्वारा बल का एकाधिकार जिसमें सम्राट सर्वोच्च प्रमुख था।
- कृषि, वाणिज्य तथा अन्य स्रोतों से अधिशेष की पर्याप्त मात्रा का विनियोग।
- एक प्रशासनिक तंत्र का अस्तित्व।

राज्य व्यवस्था की जटिलता के कारण सम्राट को ऐसी सृजनात्मक नीति का निर्माण करना ज़रूरी था जिसके अंतर्गत एक बड़े साम्राज्य, जिसमें अर्थव्यवस्था तथा धर्मों की अनेकरूपता थी, में सैन्य शक्ति के कम से कम प्रयोग की आवश्यकता हो। इस पर नियंत्रण केवल सेना के बल पर नहीं हो सकता था। इसका अत्यंत उपयुक्त विकल्प एक ऐसी नीति का प्रचार एवं प्रसार था जो कि सैद्धांतिक आधार रखती हो तथा समाज के सभी वर्गों पर प्रभाव डाल सकती हो। *धम्म* नीति इसी दिशा में एक प्रयास था।

17.3 अभिलेखों का विस्तार

अशोक ने *धम्म* की नीति के प्रसार के लिए शिलालेखों/अभिलेखों का माध्यम अपनाया। अशोक ने *धम्म* नीति के बारे में अपने विचार इन स्तम्भों/शिलाओं पर इस आशय से खुदवाए कि विभिन्न स्थानों पर लोग उन्हें पढें। अशोक इस माध्यम से अपनी जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहता था। यह अभिलेख उसके शासन काल के विभिन्न वर्षों में लिखे गए।

अभिलेखों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। थोड़े से अभिलेखों से यह पता चलता है कि राजा बौद्ध मत का अनुयायी था और ये अभिलेख बौद्ध संप्रदाय अथवा संघों को संबोधित करते हुए लिखे गए थे। इन अभिलेखों में बौद्ध मत से अशोक की व्यक्तिगत सम्बद्धता की घोषणा है। इनमें वह बौद्ध मत में अपनी व्यक्तिगत श्रद्धा अभिव्यक्त करता है। इनमें से एक अभिलेख में वह बौद्ध ग्रन्थों जिनका नाम इन अभिलेखों में दिया गया है कि चर्चा करता है और सभी बौद्धों को उनसे परिचित होने का आह्वावन करता है। अभिलेखों की अन्य श्रेणियां वृहद शिला लेख तथा लघु शिला लेख के नाम से जानी जाती है जो कि चट्टानों पर खोदी गई हैं तथा स्तम्भ लेखों के लिए विशेष रूप से स्तम्भ खड़े किए गए थे।

यह सभी ऐसे स्थानों पर स्थापित है जहां बड़ी संख्या में लोगों के इकट्ठा होने की संभावना हो सकती थी। अतः जैसा कि कहा जा चुका है, यह लेख जन-साधारण के लिए घोषणा कहे जा सकते हैं। इनमें *धम्म* नीति की व्याख्या की गई है। हमें अशोक की *धम्म* नीति जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्व की बात कही गई है तथा अशोक की बौद्ध धर्म में व्यक्तिगत आस्था में अंतर करना चाहिए। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकारों के बीच अशोक की *धम्म* नीति तथा बौद्ध मत के अनुयायी के रूप में अशोक को बिना अंतर किए एक ही संदर्भ में रखकर अध्ययन करने की प्रवृति रही है। अभिलेखों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि एक ओर जहां अशोक बौद्ध मत में अपनी पूरी आस्था रखता था वहीं दूसरी ओर वह *धम्म*

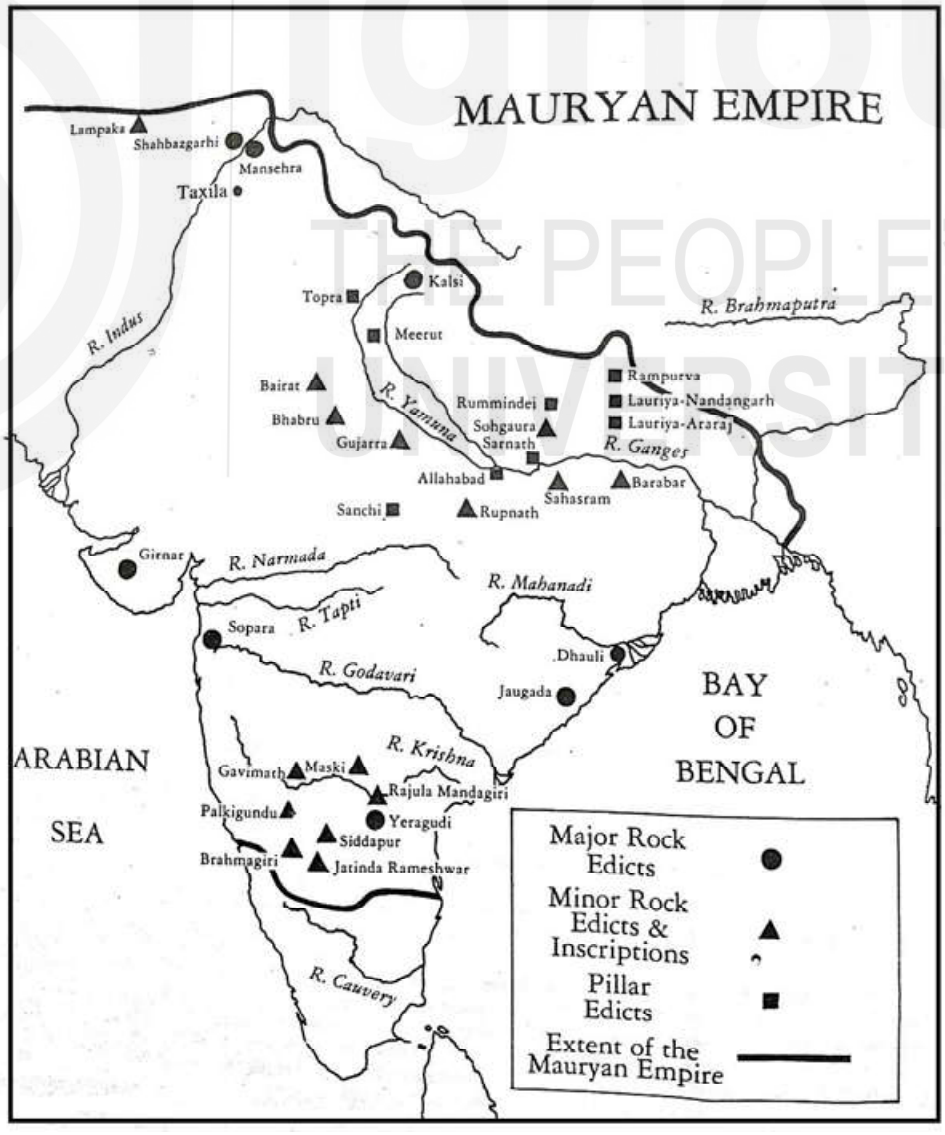

मानचित्र 17: मौर्य अभिलेख

नीति के द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सहिष्णुता के महत्व का आदेश भी दे रहा था।

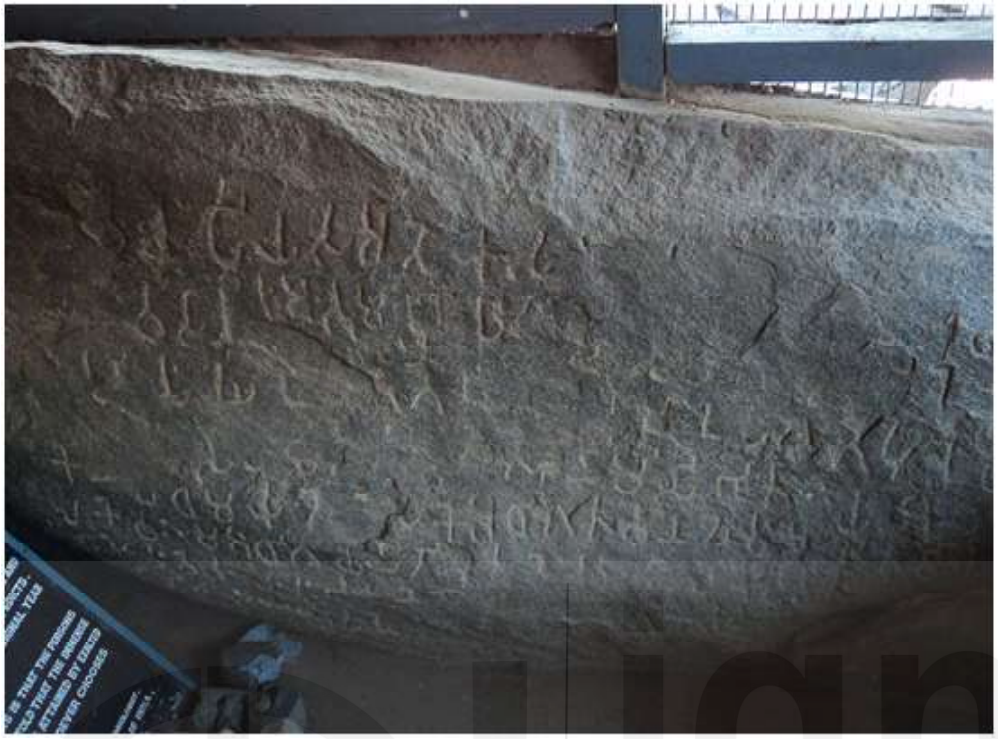

मस्कि में लघु शिलालेख. इसमें विशेष रूप से 'अशोक' (शीर्ष पंक्ति के बीच में) नाम का उल्लेख है, जिसका शीर्षक 'देवानामपिया' ('प्रभु का प्रिय') है. श्रेयः सुदीप एम. स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Rock_edict-_closer_look.JPG**

अशोक ने अपने शिलालेखों में जिन चार लिपियों का इस्तेमाल किया हैं: ब्राह्मी (ऊपर बाएं), खरोष्ठी (ऊपर दाएं), ग्रीक (नीचे बाएं) और अरमैक (नीचे दाएं)। श्रेयः ब्राह्मी शिलालेख के लिएः लौरा सोला; खरोष्ठी शिलालेख के लिएः निस्खान 65; ग्रीक शिलालेख के लिएः शलम्बरगर अरमैक शिलालेख के लिएः शलम्बरगर। **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:The_four_scripts_of_Ashoka.jpg)**

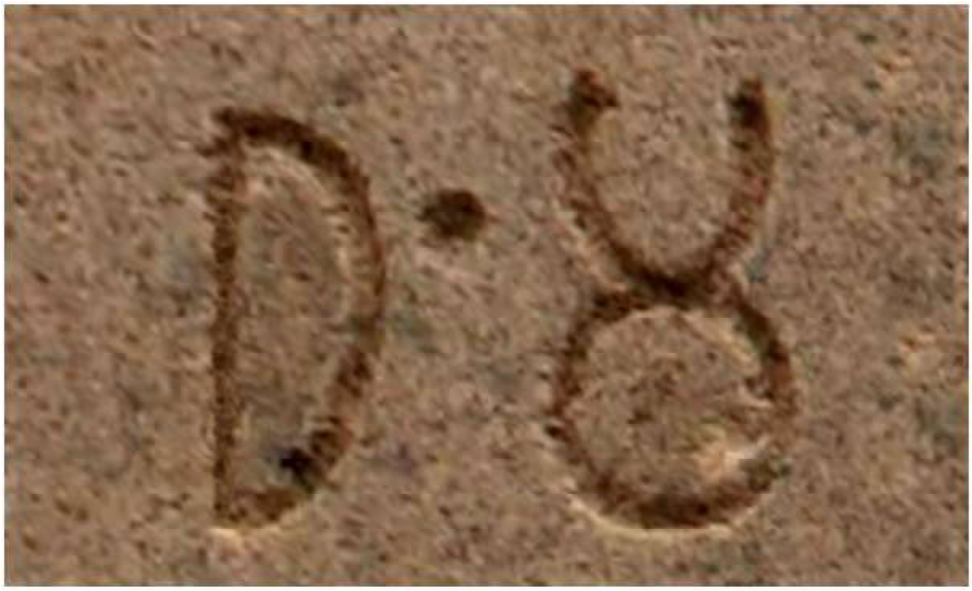

प्राकृत शब्द 'ध-म-म' (संस्कृतः धर्म) ब्राह्मी लिपि में, जैसा कि उसके अभिलेखों में अशोक द्वारा अंकित है। टोपरा कालन स्तंभ; अब नई दिल्ली में। श्रेयः अभटनागर 2, स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Dhamma_inscription.jpg)

17.4 *धम्म*

धम्म की नीति एक जटिल समाज के सामने आने वाली कुछ समस्याओं का हल करने का एक ईमानदार प्रयास था। इस नीति का जन्म हाँलाकि अशोक के मस्तिष्क में था और इसके माध्यम से उन्होंने समाज के भीतर कुछ तनावों को हल करने की कोशिश की।

17.4.1 कारण

धम्म नीति की पृष्ठभूमि में निहित कारणों का अध्ययन करने के अंतर्गत हमने इसी इकाई में इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा की है। हमने पढ़ा कि *धम्म* नीति इन समस्याओं के समाधान का एक महत्वपूर्ण प्रयास था, जिनसे इस युग का जटिल समाज जूझ रहा था। यह नीति अशोक के दिमाग की उपज थी तथा समाज के अंतर्गत व्याप्त सामाजिक तनावों के समाधान के प्रति उसका प्रयास था। अशोक के निजी विश्वास तथा साम्राज्य के समक्ष खड़ी समस्याओं के समाधान के विषय में उसके विचार *धम्म* नीति के प्रतिपादन का कारण बने।

अतः आवश्यक है कि हम उस सामाजिक माहौल को समझें जिसके अंतर्गत अशोक पला, बढ़ा तथा जिसका प्रभाव उसके जीवन के बाद के वर्षों पर दिखाई देता है।

मौर्य राजा उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। चंद्रगुप्त अपने जीवन के उत्तरकाल में जैन मत का अनुयायी हो गया तथा बिंदुसार आजीवक मत में विश्वास रखता था। स्वयं अशोक ने अपने निजी जीवन में बौद्ध मत स्वीकार किया, तथापि उसने अपनी जनता पर बौद्ध मत थोपने का प्रयास कभी नहीं किया। *धम्म* नीति के तत्वों का अध्ययन करने से पूर्व परिस्थितियों पर नज़र डालें जिन्होंने ऐसी नीति को जन्म दिया।

- जब अशोक राजसिंहासन पर आसीन हुआ तब मौर्य साम्राज्य व्यवस्था जटिल स्वरूप ले चुकी थी। साम्राज्यिक व्यवस्था अपने में विभिन्न संस्कृतियों, विश्वासों और सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को आत्मसात कर चुकी थी। अशोक के समक्ष दो ही विकल्प थे। एक ओर यह ढांचे को बल प्रयोग द्वारा स्थिर रख सकता था, जिस पर

अत्यधिक व्यय की आवश्यकता थी अथवा दूसरी ओर वह ऐसे नैतिक मूल्य प्रस्तुत करे जो कि सभी को स्वीकार्य हो तथा सभी सामाजिक वर्गों एवं धार्मिक विश्वासों के बीच अपना स्थान बना लें। अशोक ने यह विकल्प *धम्म* नीति में ढूंढा।

- अशोक उन तनावों से पूरी तरह परिचित था जो जैन, बौद्ध तथा आजीवक जैसे वैधर्मिक सम्प्रदायों के उदय के कारण समाज में आ गये थे। यह सभी किसी न किसी रूप में ब्राह्मणवाद के विरोधी थे और इनके समर्थकों की संख्या बढ़ रही थी। परंतु अब भी ब्राह्मण समाज पर अपना नियंत्रण बनाये हुये थे, इन परिस्थितियों में किसी न किसी रूप में वैमनस्य का होना अवश्यंभावी था। ऐसी दशा में परस्पर सौहार्द और विश्वास का वातावरण बनाना आवश्यक था।

- साम्राज्य के कुछ भाग ऐसे भी थे जहां न तो ब्राह्मणवाद का प्रभुत्व था न ही वैधर्मिक सम्प्रदायों का। अशोक स्वयं यवनों के प्रदेश का जिक्र करता है जहां न तो ब्राह्मण और ना ही श्रमण संस्कृति प्रचलन में थी। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के कई जन-जातीय या आदिवासी क्षेत्रों में भी ब्राह्मणवाद या असनातनी सम्प्रदायों का प्रभाव नहीं था। इन सारी विभिन्नताओं के बीच साम्राज्य के अस्तित्व और परस्पर सौहार्द को बनाये रखने के लिए समाज की समस्याओं के प्रति एक समरूपी समझ और व्यवहार की आवश्यकता थी।

17.4.2 *धम्म* के तत्व

धम्म के सिद्धांत इस प्रकार से प्रतिपादित किए गए थे कि वे सभी समुदायों और धार्मिक संप्रदाय के व्यक्तियों को स्वीकार्य हो। *धम्म* को औपचारिक रूप से व्याख्यायित अथवा संरचनाबद्ध नहीं किया गया था। इसमें सहिष्णुता तथा सामान्य आचरण का आदेश दिया गया है। *धम्म* ने दुहरी सहिष्णुता की बात की है। इसमें जनसामान्य के मध्य आत्मसहिष्णुता तथा विभिन्न विचारों एवं आस्थाओं के बीच सहिष्णुता का आहवान किया गया हैं, इसमें दासों एवं नौकरों के प्रति सहानुभूति, बड़ों का आदर, तथा ज़रूरतमंदों, ब्राह्मण व श्रमण सभी के प्रति उदारता आदि पर भी बल दिया गया है। अशोक ने सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच सहिष्णुता का आहवान किया।

धम्म नीति में *अहिंसा* पर भी बल दिया गया है। *अहिंसा* को व्यवहारिक स्वरूप युद्ध एवं विजय अभियान का परित्याग करके दिया जाना था। *अहिंसा* का पालन पशुओं की हत्या पर नियंत्रण करके भी किया जाता था। *अहिंसा* का अर्थ पूर्ण *अहिंसा* नहीं था। अशोक यह समझता था कि अपनी राजनैतिक शक्ति के प्रदर्शन के बिना जंगली आदिम जातियों पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता था।

धम्म नीति में कुछ कल्याणकारी कार्य जैसे – वृक्षारोपण, कुंए खोदना आदि की चर्चा की गई है। अशोक ने धर्मानुष्ठानों तथा बलि चढ़ाने को अर्थहीन कहकर उस पर प्रहार किया। *धम्म महामात्त* के नाम से कुछ अधिकारी भी *धम्म* की नीति के विभिन्न पक्षों को लागू करने तथा उनका प्रचार करने के लिए नियुक्त किए गए। अशोक ने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना संदेश पहुंचाने के लिए इन *धम्म महामात्तों* पर भारी दायित्व डाला। किंतु धीरे-धीरे यह *धम्म महामात्त* समूह *धम्म* के पुरोहितों के रूप में परिवर्तित हो गये। इन्हें अत्यधिक अधिकार प्राप्त थे। फलतः शीघ्र ही यह समूह राजनीति में हस्तक्षेप करने लगा।

वृहद् शिलालेख 13 अशोक की *धम्म* नीति को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें युद्ध के स्थान पर *धम्म* द्वारा विजय प्राप्त करने का आहवान है। यह अशोक के युद्ध के विरूद्ध विचार हैं। इनमें युद्ध की त्रासदी का विस्तृत वर्णन किया गया है और इससे

संकेत मिलता है कि वह युद्ध का विरोधी क्यों बन गया? प्राचीन युग की यह अनोखी घटना है क्योंकि उस समय कोई ऐसा शासक नहीं था जो युद्ध का विरोध कर सका हो। इस युद्ध के बाद अशोक ने *धम्म* नीति अपनायी।

17.4.3 अशोक की *धम्म* नीति और मौर्य राज्य

अशोक की *धम्म* नीति केवल गूढ़ वाक्यों पर ही समाप्त नहीं होती थी। उसने इसे राज्यगत नीति के रूप में अपनाने का भरसक प्रयास भी किया। उसने घोषणा की ''सभी जन मेरे बच्चे हैं'' तथा ''मैं जो भी कार्य करता हूँ वह केवल उस ऋण को उतारने का प्रयास है तो सभी जीवों का मुझ पर है''। यह सर्वथा नया तथा शासन व्यवस्था का उत्साहवर्धक आदर्श था। *अर्थशास्त्र* के अनुसार राजा पर किसी का ऋण नहीं होता। उसका एकमात्र कार्य राज्य पर सक्षम शासन करना है।

अशोक ने युद्ध तथा हिंसात्मक विजयों की निंदा की तथा पशुओं की अधिक हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया। स्वयं अशोक ने राजपरिवार में मांस खाने की परंपरा लगभग समाप्त करके शाकाहार का उदाहरण प्रस्तुत किया। चूंकि वह, प्रेम एवं विश्वास द्वारा विश्व विजय प्राप्त करना चाहता था, इसलिए उसने *धम्म* के प्रचार के लिए दल भेजे। इस प्रकार के दल मिस्र, यूनान, श्रीलंका आदि दूरस्थ स्थानों पर भेजे गए। *धम्म* के प्रचार में जन-कल्याण के कई कार्य सम्मिलित थे। मनुष्यों एवं पशुओं के लिए चिकित्सालय, साम्राज्य के अंदर तथा साम्राज्य के बाहर दोनों ही स्थानों पर बनाए गए। छायादार कुंज, कुएं, फल के बगीचे, विश्रामगृह आदि बनाए गए। इस प्रकार के कल्याणकारी कार्य *अर्थशास्त्र* में वर्णित राजाओं की तुलना में, जो कि अधिक राजस्व प्राप्त करने की संभावना के बिना एक पैसा भी खर्च नहीं करते थे, मूल रूप से भिन्न मार्ग थे। अशोक ने व्यर्थ बलि चढ़ाने की परंपरा तथा ऐसे समारोह जिनके कारण व्यय, अनुशासनहीनता तथा अंधविश्वास पैदा होता था, पर प्रतिबंध लगा दिया। इन नीतियों के कार्यान्वयन के लिए उसने *धम्म महामात्तों* की नियुक्तियां की। इन *धम्म महामात्तों* का एक कार्य यह भी था कि वे इसका ध्यान रखें कि सभी संप्रदाय के लोगों के साथ उचित व्यवहार हो रहा है। उन्हें बन्दियों के कल्याण के प्रति विशिष्ट दायित्व सौंपा गया था। बहुत सारे बंदी जो कि कारावास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् बेड़ियों में रखे गए थे, उन्हें मुक्त करने का आदेश था। मृत्यु दंड प्राप्त बन्दियों को तीन दिन का जीवनदान दिए जाने का आदेश था। स्वयं अशोक ने *धम्म* यात्राएं आरंभ की। वह तथा उसके साथ के उच्च अधिकारी *धम्म* के प्रचार तथा जनता के साथ सीधा संपर्क बनाने के लिए देश भ्रमण पर निकले। अपनी इसी नीति के कारण अशोक को कर्न (Kern) जैसे आधुनिक लेखक ने राजा की पोषाक में भिक्षु कहा है।

17.4.4 *धम्म*-व्याख्यायें

अशोक की *धम्म* की नीति विद्वानों के बीच वाद-विवाद का विषय रही है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक बौद्ध मत का पक्षपाती थी। वे उसकी *धम्म* नीति और बौद्ध मत को एकरूपी मानते हैं।

ऐसा भी विचार व्यक्त किया गया है कि अशोक मौलिक बौद्ध विचारों को *धम्म* के रूप में परिभाषित कर रहा था तथा बाद में कुछ नये धार्मिक तत्वों के साथ इन्हें बौद्ध मत का रूप दे दिया गया। इस प्रकार के विचारों का आधार बौद्ध वृतांत है। ऐसा विश्वास है कि कलिंग युद्ध एक ऐसा नाटकीय मोड़ था जिसने युद्ध में मृत्यु एवं विनाश के लिए पछतावे के कारण अशोक को भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत का अनुयायी बना दिया। बौद्ध वृतांतों में भी अशोक को भारत तथा विदेशों में बौद्ध मत के प्रचार का श्रेय दिया गया है। अशोक के

विरूद्ध पक्षपात का आरोप लगाना ठीक नहीं है। इस बात के दो अत्यंत महत्वपूर्ण प्रमाण है कि अशोक ने राजा के रूप में, बौद्ध धर्म के प्रति अन्य धर्मों की तुलना में पक्षपात नहीं किया।

1) अशोक द्वारा *धम्म महामात्तों* का एक विभाग बनाना इस तथ्य को पूर्णतः प्रमाणित करता है कि अशोक किसी धर्म विशेष का पक्षपाती नहीं था। यदि ऐसा होता तो इस विभाग की आवश्यकता ही न पड़ती क्योंकि वह *धम्म* के प्रचार के लिए संघ के संगठन का उपयोग कर सकता था।

2) शिला-लेखों के ध्यानपूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि अशोक सभी धार्मिक संप्रदायों के बीच सहिष्णुता एवं आदर का भाव फैलाना चाहता था तथा *धम्म महामात्तों* का दायित्व था कि वे ब्राह्मणों एवं श्रमणों के लिए कार्य करें।

इन दो बातों से पता चलता है कि *धम्म* की नीति किसी विधर्मी की नीति नहीं थी अपितु विभिन्न धार्मिक स्रोतों से ग्रहण किए गए विश्वासों की एक पूरी व्यवस्था है।

रोमिला थापर ने स्पष्ट किया है कि अशोक की *धम्म* की नीति न केवल मूलभूत मानवीयता की अद्‌भूत दस्तावेज़ है बल्कि उस समय की सामाजिक-राजनैतिक आवश्यकताओं का उपयुक्त समाधान भी प्रस्तुत करती है। यह ब्राह्मण विरोधी नीति नहीं थी जिसका प्रमाण यह है कि सभी *धम्म* अभिलेखों में ब्राह्मण तथा श्रमणों के प्रति आदर का भाव अनिवार्य रूप से उल्लेखित हैं। *अहिंसा* पर उसके बल देने का तात्पर्य यह नहीं था कि उसने राज्य की सुरक्षा की आवश्यकताओं के प्रति आंखें मूंद ली थीं। फलतः वह आदिवासी समूहों को चेतावनी भी देता है कि यद्यपि वह बल प्रयोग से घृणा करता है परंतु यदि वे समस्याएं उत्पन्न करना बंद नहीं करते हैं तो शक्ति का प्रयोग करने पर बाध्य होना पड़ेगा। अशोक ने जब युद्ध करना बंद किया तब तक पूरा भारतीय उप-महाद्वीप उसके नियंत्रण में था। दक्षिण में वह चोल तथा पांड्य आदि राज्यों से मित्रता बनाए हुए था। श्रीलंका उसका प्रशंसक तथा सहयोगी था। अतः अशोक ने युद्ध का विरोध उसी समय किया जबकि उसका साम्राज्य अपनी प्राकृतिक सीमाओं को छू चुका था। जातीय विविधता एवं धार्मिक विभिन्नता तथा वर्गीय आधार पर विभाजित समाज में सहिष्णुता का आह्वान बुद्धिमत्ता का कार्य था। अशोक का साम्राज्य विविध समूहों का एक समग्रीकृत रूप था। इस साम्राज्य में किसान, खानाबदोश, चरवाहे, आखेट जीवी तथा यूनानी, कम्बोज, भोज एवं अनेक प्रकार की परम्पराओं के अनुयायी सैकड़ों समूह थे। ऐसी परिस्थिति में सहिष्णुता की बात करना युग की आवश्यकता थी। अशोक ने संकीर्ण सांस्कृतिक परम्परा के स्थान पर व्यापक नैतिक सिद्धांतों की स्थापना करना चाही। अशोक की *धम्म* की नीति उसकी मृत्यु के बाद आगे न चल सकी। वैसे भी यह नीति सफल नहीं रही थी फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अशोक किसी नये धर्म की स्थापना नहीं कर रहा था। वह केवल समाज के अन्दर मानवतावादी और नैतिक सिद्धांतों की स्थापना करना चाहता था। मोटे तौर पर यह मानवतावादी सिद्धांत भारतीय परंपरा का अंग बन चुके हैं।

बोध प्रश्न 1

1) अशोक की *धम्म* नीति के सिद्धांत की ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर लगभग दस पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

2) *धम्म* की नीति के मुख्य सिद्धांत क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) *धम्म* के संबंध में व्याख्याओं को सूचीबद्ध कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.5 मौर्यकला एवं वास्तुकला

मौर्यकला एक लम्बें आन्दोलन की परिणति थी जो देशी रूप से शुरू हुई, समय के साथ-साथ फली-फूली और फैली और इसके साथ-साथ इसने विभिन्न संवेगों और प्रभावों को ग्रहण किया। मौर्यो के काल से पहले मूर्तिकला और वास्तुकला के कोई उदाहरण नहीं हैं। मूर्तिकला और वास्तुकला के संदर्भ में हमारे पास जो कुछ भी है वह मुख्य रूप से अशोक के शासनकाल के मौर्यकाल का है।

निहरंजन रे जैसे विद्वानों को लगता है कि मौर्यकालीन कला इस मायने में पहले की कला परम्पराओं से अलग थी कि इसने लकड़ी, सूरज की रोशनी में पकाई सूखी ईटों, मिट्टी, हाथी-दांत, और धातु से अलग हटकर विशाल परिमाण के पत्थरों का उपयोग किया। यह संभावना है कि मौर्यकालीन कलाकारों ने हजारों सालों से भारत की भूमि पर मौजूद लकड़ी के साथ काम करने की कला को फिर से दोहराया। स्तुपों के कटघरे, प्रवेश-द्वारा और चैत्य का अग्रभाग सभी उस तरह के अलंकरण को दर्शाते हैं जो लकड़ी के आद्यकलारूपों की एक प्रतिलिपि लगते हैं। हालाँकि रे का मानना है कि जिस तरह से मौर्यकालीन कारीगरों ने शिला पर काम करने की महारत हासिल की उसे इस चीज से समझना बहुत मुश्किल है कि लकड़ी की कलाकृतियों, चाहे जितनी भी बड़ी और भव्य रही हों और चाहे उन्हें जितनी भी तकनीकी कौशल और सूक्ष्मता से बनाया गया हो परन्तु वह मौर्यकालीन शिला कलाकृतियों जैसी नहीं हैं।

मौर्यकला की दूसरी विशेषता इसका एकेमेनिड से संबंध था। चन्द्रगुप्त मौर्य के अधीन क्षेत्र का प्रभुत्व अफ़ग़ानिस्तान को छूता था और तत्कालीन एकेमेनिड अधिकृत क्षेत्रों के पास था। मौर्य राजाओं के युनानी दरबार से भी घनिष्ट संबंध थे। कला के क्षेत्र में युनानी कला ने एकेमेनिड कला परम्पराओं से तत्व ग्रहण किये और यह उनसे काफ़ी अधिक प्रभावित थी। विद्वान महसूस करते हैं कि मौर्यों के पूर्वी युनान से करीबी संपर्कों ने उन्हें एकेमेनिड कला और संस्कृति के साथ अप्रत्यक्ष संपर्क में आने में भी मदद की होगी। इस प्रकार मौर्य कला

एकेमेनिड प्रभावों को दर्शाती है। पाटलीपुत्र शहर के अवशेष ना केवल सुसा और एकबटाना की याद दिलाते हैं, बल्कि कुम्रहार में स्तम्भों पर खड़े सभामंडप की तुलना डेरियस महान द्वारा निर्मित सौ स्तम्भों वाले हॉल से की जा सकती है। इसके अलावा, अशोक के स्तम्भ और उनके शिलालेखों से यह साबित होता है कि वे एकेमेनिड प्रथा से प्रेरणा पाते थे।

हालाँकि, एक अन्य मत का विचार है कि मौर्यकला के तत्व मूलतः देशी थे। यह लोक और दरबारी तत्वों का एक सुखद सम्मिश्रण था। यह लोक लकड़ी का स्तंभ था जो जड़वत हो गया था। यहाँ तक कि प्रसिद्ध मौर्यकालीन पोलिश की शुरुआत पूर्व मौर्य काल में थी। इसके अलावा, अशोक स्तम्भों में उपयोग किये जाने वाले बैल, सिंह, कमल, हंस के रूपान्कन देशी पूर्ववर्ती उदाहरण थे। इसलिए, कला के इतिहास में एक घटना की बजाए, मौर्य कला परंपरा की एक निरंतरता थी जो वेदों जितनी ही पुरानी थी। अशोक के घंटाकृति वाले स्तम्भ और घंटाकृति की प्रेरणा का स्रोत 'परसेपोलिटन' था। हालाँकि देवाहुति का मानना है कि वे फारसी मॉडल की नकल नहीं थे। फारसी और अशोक की कला के उदाहरणों से पता चलता है कि उनकी सजातीयता उनके पश्चिम एशियाई पूर्वजों-आर्यो में उनकी उत्पत्ति के कारण है। इसके अलावा, स्तम्भ वास्तुकला, जिसकी शुरुआत लकड़ी से हुई थी अब एक नये माध्यम पत्थर में बदल गई। धीरे-धीरे इसने सदन और आधार प्राप्त कर लिए। शाफ्ट भी आठ या सोलह पक्षीय की हो गयी। कार्ले, बेडसा, नासिक, कन्हेरी (दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. से दूसरी शताब्दी सी.ई. तक), अजन्ता गुफा संख्या XIX, एलोरा (छठी से आठवीं शताब्दी सी.ई.) की गुफाओं में पाए गए स्तम्भ इन परिवर्तनों को दर्शाते हैं, जबकि अनेक स्तम्भ अभी भी मौर्य काल की विशेषताओं को संजोए हुये हैं। शीर्ष (capital) जिस पर कुल्हे से नीचे गोजातीय शरीर वाली स्त्री आकृति (भाजा); हाथी और अश्व (बेडसा); अलंकृत सिंह (कार्ले), उनकी भाव भांगिमा और व्यवस्था प्रसिपोलिस की याद दिलाती है, लेकिन वे भारतीय भूमि की उतनी ही उपज है जितनी कमल और स्वस्तिक के रूपांकन।

17.5.1 मौर्य कला के उदाहरण

मौर्य कालीन कला के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरणों में शामिल हैं:

1) शाही महल और पाटलिपुत्र शहर के अवशेष।
2) सारनाथ में अखंड वेदिका।
3) गया में बराबर-नार्गाजुनी पहाड़ियों में उत्कीर्ण चैत्य हाल या गुफा वास।
4) राजाज्ञा धारण करते हुए और बिना राजाज्ञा वाले स्तंभ व उसके शीर्ष (capitals)।
5) उडिशा के धौली में एक चट्टान से तराशा गया गोलाकार रूप में एक हाथी के सामने का आधा हिस्सा।

कला के उपयुक्त तत्वों में कुछ सामान्य तत्व मौजूद हैं। यह हैं: सभी अवधारणा और ड़िजाइन की दृष्टि से भव्य हैं: उत्कृष्ट सुव्यवस्थित, और निष्पादन में सटीक। पाटलीपुत्र के शाही महल और शहर की इमारतों के अवशेषों के अपवाद को छोड़कर, वे सभी विशाल अनुपात के भूरे रंग के बलुवा पत्थर से बने हैं, उनको खूबसूरती से छेनी से काटा हुआ है और वे एक उच्च चमक को दर्शाते हैं। यह सब शाही कला के उदाहरण हैं जो सम्राट अशोक और उनके उत्तराधिकारियों के साथ जुड़े हुए हैं।

पाटलिपुत्र

मौर्य राजधानी पाटलीपुत्र शाही कला को दर्शाती है। मेगस्थनीज के अनुसार, पाटलिपुत्र

शहर लगभग 15 किलोमीटर लम्बा, 2.5 किलोमीटर चौड़ा, और एक खाई से घिरा हुआ था, जिसका नाप दौ सौ मीटर चौड़ा और पन्द्रह मीटर गहरा था। शहर की प्राचीर में चौसठ द्वार और लगभग पाँच सौ सत्तर बुर्ज थे। खुदाई से प्राचीन शहर के एक छोटे से भाग का पता चला है क्योंकि इसमें से अधिकांश पर अब आधुनिक आवास का कब्जा है। इसके अलावा, अधिकांश संरचनाएँ संभवतः लकड़ी और ईंट से बनी थी जो बाढ़ और समय के थपेड़ों से जीवित नहीं बची हैं। दो स्थलों को आंशिक रूप से खोजा गया है – बुलंदीबाग और कुम्रहार। बुलंदीबाग में लकड़ी के विशाल कटघरे के अवशेष और किलेबन्द दीवारों का पता लगाया गया है। कुम्रहार में एक ऊँची ईंट की दीवार के भीतर मौर्य महल परिसर के अवशेष पाए गए हैं। अस्सी पत्थरों के स्तम्भों के अवशेष मिले हैं जिन पर अत्यधिक पोलिश की गई है, जिन पर एक लकड़ी की अधिरचना टिकी हुई थी जिसका आधार भी लकड़ी का था। देवाहुति द्वारा परसेपोलिस के सौ स्तम्भों वाले हॉल और मौर्य महल के बीच अंतरों को बताया गया है। हालाँकि दोनों ने स्तंभित हॉल और चमकीली पोलिश की अवधारणा को साझा किया, लेकिन ग्रीक लेखकों के अनुसार ऐसा वर्णन है कि चन्द्रगुप्त के समय के लकड़ी के स्तम्भों को ''चारों ओर लताओं के साथ सोने से उभारा हुआ और पक्षी और पर्णसमूह के डिजाइन के साथ सजाया हुआ था। एकबटाना के दरबारों के बारे में कहा गया है कि वे 'सभी चाँदी की प्लेट से ढ़के हुए थे'। मौर्य महल के स्तम्भों की बनावट की सादगी जेरक्स के एकेमेनिड स्तम्भों से भिन्न है। स्तंभ का मूठ (shaft) बिना आधार व शीर्ष के है, सादे एवं अखंड है, इसकी तुलना में एकेमेनिड के स्तम्भ पर नालीदार कारीगरी है व एक आधार और विस्तृत सदन के साथ कई खंडों से मिलकर बने हैं। चमकदार पोलिश के भारत और पश्चिम एशिया दोनों में पूर्ववर्ती उदाहरण मौजूद थे।

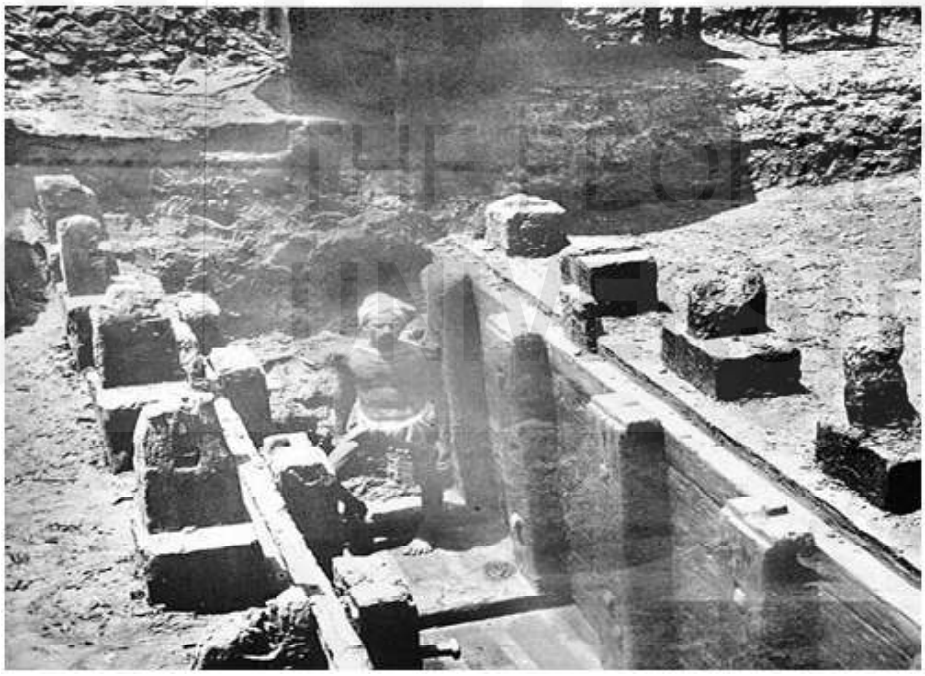

मौर्यकाल में पाटलिपुत्र में बुलन्दीबाग स्थल पर लकड़ियां का कटघरा।
श्रेयः ए एस आई इ सी 1912-13 स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mauryan_remains_ of_wooden_palissade_ at_Bulandi_Bagh_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg)

शिलालेख और स्तम्भ

मौर्यकालीन स्तम्भ स्वतन्त्र रूप से खड़े, उचित अनुपात वाले, शंकू रूपी लम्बें और पतले और अखंड हैं। वे बलुआ पत्थर के बने हैं। जिसका उत्खनन चुनार की खानों में होता था।

स्तम्भों पर एक चमकदार पोलिश है। उनका कोई आधार नहीं है। शीर्ष को शाफ्ट के शकूंनुमा सिरे से एक बेलनाकार पेंच द्वारा जोड़ा गया है। शीर्ष उल्टे कमल के आकार में है। इसके ऊपर एक चौकी (मंच) है जो अन्त में गोलाकार है और एक तराशे गये जानवर की आकृति को सहारा देती है।

अशोककालीन शिलालेखों के जो स्तम्भ हैं, वे दिल्ली-मिरात, इलाहाबाद (आज का प्रयागराज), लौरिया-अराराज, लौरिया-नन्दनगढ़, रामपूरवा (सिंह शीर्ष के साथ), दिल्ली-टोपरा, संकिसया, सांची और सारनाथ में मिले हैं। बिना शिलालेख वाले स्तम्भों में रामपूरवा (एक बैल शीर्ष के साथ), बसरा-बंखीरा (एक एकल सिंह शीर्ष के साथ) और कोसम शामिल हैं। रुमिनडैं और निगाली सागर में समर्पणात्मक अभिलेखों वाले स्तम्भ पाये गये हैं। इनमें से लौरिया-नन्दनगढ़ और बसरा-बंखीरा के शीर्ष स्वस्थानी हैं। रामपूरवा, संकिसया, सारनाथ और सांची में ये क्षतिग्रस्त हालत में बरामद हुए हैं। लौरिया-नन्दनगढ़ और बसरा बंखीरा के स्तंभ शीर्ष पर और रामपूरवा में एक सिंह की आकृति बनी है। संकिसया का स्तम्भ एक खड़े हाथी को सहारा देता है; दूसरा रामपुरवा का स्तम्भ एक खड़े बैल को; और सारनाथ और सांची के स्तम्भों में चार सिंह एक-दूसरे की तरफ़ पीठ करके बैठे हैं। लौरिया-अराराज स्तम्भ में एक गरूढ़ की आकृति हो सकती है। अश्व को छोड़कर, अन्य प्रतीक प्रारंभिक ब्राह्मणवादी कल्पना में बहुत अधिक मौजूद है।

रूपनाथ और ससाराम के अभिलेखों को पढ़ने और VII स्तम्भ शिलालेख से यह स्पष्ट है कि अशोक के अभिलेखों वाले कुछ स्तम्भों का काल मौर्य से पहले का हो सकता है इसलिए, विशेषरूप से इनका चरित्र बौद्ध नहीं है। कुछ स्तम्भों को स्वयं अशोक ने धर्म-स्तम्भों के रूप में निर्मित कराया था।

चित्रः सारनाथ के स्तंभ के शीर्ष पर सिंह की आकृति
श्रेयः क्रिसि 1964
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Sarnath_capital.jpg)

चित्रः एक खड़ी अवस्था में देवी के साथ मौर्यकालीन रिंगस्टोन। उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान
श्रेयः ब्रिटिश म्यूज़ियम
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:MauryanRingstone.JPG)**

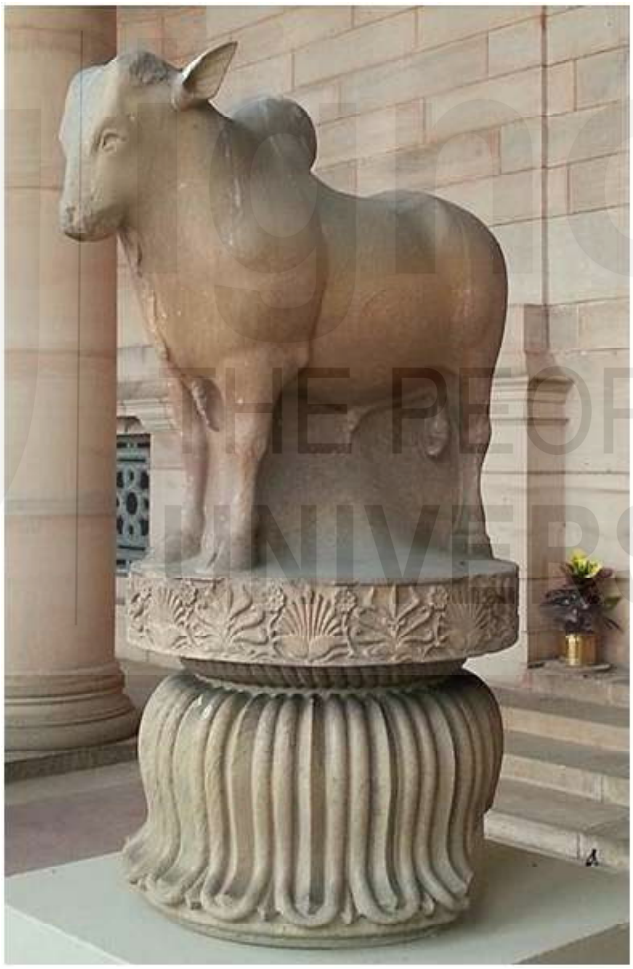

चित्रः रामपूरवा के स्तंभ पर बैल की आकृति जो अब राष्ट्रपति भवन में है।
श्रेयः एम. अमिताव घोष
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Rampurva_bull_in_Presidential_Palace_high_closeup.jpg)**

हालांकि स्तम्भ और उनके शीर्ष पत्थर के हैं, लेकिन वह आदिम लकड़ी के पशुमानकों की प्रति-लिपियाँ थी, इसके अलावा जीवित उदाहरण एक एकीकृत तस्वीर पेश नहीं करते हैं, पत्थर, पोलिश या पोलिश का अभाव, अनुपात, मूर्तिकला के विवरणों के तरीकों, गिट्टक लगाने की तकनीक और यहाँ तक कि भूमि में सन्निवेश के तरीकों में बहुत भिन्नता है।

विद्वानों ने स्तम्भों में मौजूद प्रतीकवाद को समझने की कोशिश की है। जॉन इरविन के अनुसार, स्तम्भ विश्व धूरी का प्रतीनिधित्व करते हैं। प्राचीन संस्कृतियों में, विश्व धूरी एक ऐसा साधन था जिसने ब्रह्मांड के निर्माण के दौरान पृथ्वी को स्वर्ग से अलग कर दिया। स्तम्भ ब्रह्ममाणड़ीय महासागर से निकलता हुआ दिखाई देता है और आसमान तक पहुँचता है, जहाँ इसे सूर्य की किरणों द्वारा स्पर्श किया जाता है। अशोक के स्तम्भों में आधार नहीं है और वे सीधे भूमि में गड़े हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे धरती से निकलकर आकाश को छू रहे हों।

चित्रः रामपुरवा की सिहं की शीर्ष आकृति
श्रेयः बिस्वारूप गांगुली
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Lion_Capital_-_Chunar_Sandstone_-_Circa_3rd_Century_BCE_-_Rampurva_-_ACCN_6298-6299_-_Indian_Museum_-_Kolkata_2014-04-04_4432.JPG)**

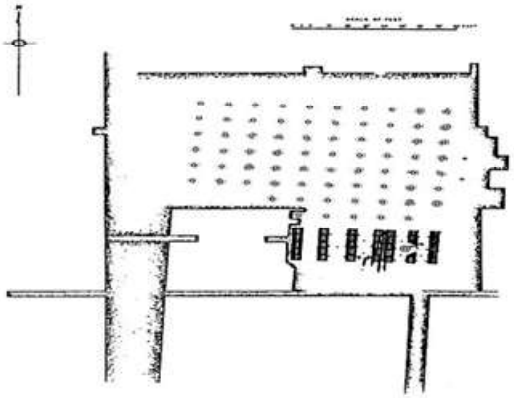

कुम्रहार में अस्सी स्तम्भों वाले हॉल की योजना। एएसआईईसी 1912-13।
श्रेयः डेविड बी. स्पूनर
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स **(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kumhrar_Maurya_level_ASIEC_1912-1913.jpg)**

चित्र 17.1: धौली में पत्थर का हाथी।
श्रेयः कुमार शक्ति। ए एस आई स्मारक सं. एन-ओआर-59
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Elephant-sculpture-dhauli.JPG)

चित्रः मौर्यकालीन पोलिश को दर्शाता लोहानीपुर धड़।
श्रेयः एचपी गोआ
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Lohanipur_torso.jpg)

सारनाथ में अखंड रेलिंग

सारनाथ में एक अखंड रेलिंग के पोलिश किए टुकड़े को मौर्यकाल का माना गया है। यह चुनार के पोलिश किए बलुआ पत्थर से बना है। इसकी तुलना भारहुत रेलिंग से की जाती है। यह समकालीन लकड़ी की मूल प्रतियों की नकल है। आलम्बन, स्तम्भ और उर्ध्वाधर दण्ड या सूचियाँ और ऊपर का पत्थर या (उशनिष) सभी को एक एकल अखंड पत्थर से बनाया गया है।

धौली (भुवनेश्वर, उडिशा) में, एक हाथी के सामने के भाग की एक चट्टान पर तराशी गयी मूर्ति है। इसकी एक भारी सूंड है जो सुन्दर रूप से अन्दर की और घूमी हुई है। उसका दाहिना आगे का पैर थोड़ा झुका हुआ है और एक बायां पैर थौड़ा मुड़ा हुआ है, जो आगे की गति को दर्शाता है। पत्थर में इसकी स्वाभाविक मुद्रा को शक्तिशाली चित्रण बहुत ही प्रभावशाली है और ऐसा एहसास दिलाना है कि मानो हाथी चट्टान से निकल रहा है।

शैलकर्तित गुफाएं

मौर्य काल ने शैल कर्तित (रॉक कट) वास्तुकला की शुरुआत देखी। यह गुफाएँ नागार्जुनी और बराबर पहाड़ियों में बोधगया के उत्तर में स्थित हैं। बराबर पहाड़ियों में तीन गुफाओं में अशोक के समर्पित शिलालेख हैं और नागार्जुनी पहाड़ियों में उनके उत्तराधिकारी दशरथ के शिलालेख हैं। गुफाओं के बाहरी भाग बहुत सादे हैं। हालाँकि, आन्तरिक भागों पर उच्च स्तर की पोलिश की हुई है। इन गुफाओं में सबसे प्रारंभिक सुदामा गुफा है जिसमें एक अभिलेख है जो अशोक के शासन काल के बारहवें वर्ष का है। और यह आजीवक सम्प्रदाय को समर्पित है। इसमें दो कक्ष है : (क) एक आयाताकार उपकक्ष जिसकी बेलनाकार मेहराब वाली छत है, और जिसके द्वार मार्ग में तिरछे चौखट है, (ख) एक पृथक गोलाकार कक्ष जो हाल के अन्त में है और एक अर्ध गोलाकार गुम्बद वाली छत के साथ है। गुम्बद वाली छत फूस वाली छप्पर की नकल है।

चित्र 17.2: लोमश ऋषि प्रवेश द्वार
श्रेय: फोटो धर्मा, पेनांग से, मलेशिया
स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Lomas_Rishi_relief.jpg)

कालक्रमिक दृष्टि से सबसे बाद का और वास्तुशिल्प की दृष्टि से लोमस ऋषि गुफा (चित्र 17.2) सबसे अच्छा नमूना है जिसकी धरातल योजना और सामान्य डिजाइन सुदामा गुफा के समान है। इसमें एक उपकक्ष है जिसकी बेलनाकार मेहराब वाली छत है, और जिसके द्वार मार्ग में तिरछे चौखट हैं। उपकक्ष के अन्त में एक गोलाकार कक्ष है। द्वार पर उभरी नक्काशी की मूर्तिकला अलंकरण सबसे विशिष्ट विशेषता हैं। द्वार मार्ग के ऊपर एक नक्काशीदार स्तूपिका के साथ एक चैत्य या एक गवाक्ष मेहराब दर्शाया गया है। उत्कीर्ण नक्काशियों के दो समूह हैं: उपरी में जालीदार काम है और निचले भाग में एक बारीक नक्काशीदार चित्रवल्लरी है जो हाथियों को स्तूप की तरफ़ जाते दिखा रहा है। चित्रवल्लरी के दोनों छोरों पर एक मकर (एक पौराणिक मगरमच्छ) है।

मौर्य कला इस प्रकार दक्षिण एशियाई क्षेत्र में कला के एक लम्बें आंदोलन की देन है। वे निस्संदेह एक शाही पहल का परिणाम थे, लेकिन इनका मूल भारतीय भूमि में ही बहुत अधिक निहित था। स्तंभ, गुफायें, डिजाइन सभी लकड़ी के मूल रूपों के पत्थर में नकल का प्रतिनिधित्व करते हैं।

17.6 साम्राज्य का विघटन

मौर्य शासन भारत में साम्राज्यवादी सरकार की दिशा में प्रथम प्रयोग था। लेकिन 232 बी.सी.ई. में अशोक की मृत्यु के साथ मौर्यों का साम्राज्यवादी प्रभुत्व कमज़ोर पड़ने लगा और 180 बी.सी.ई. में यह समाप्त हो गया। आगे मौर्य साम्राज्य के विघटन के कारणों के बारे में अध्ययन करें।

17.6.1 अशोक के उत्तराधिकारी

सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि अशोक की मृत्यु 232 बी.सी.ई. में हुई। फिर भी, अशोक की मृत्यु की आधी सदी के बाद तक मौर्य शासकों का शासन चलता रहा। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में *पुराणों, अवदान* और जैन ग्रंथों में अलग-अलग वर्णन मिलता है। इन सभी वर्णनों पर संदेह इसलिए होता है क्योंकि इन सभी स्रोतों में विभाजित साम्राज्य की परिस्थितियों का वर्णन किया हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि अशोक की मृत्यु के बाद साम्राज्य का विभाजन उसके जीवित पुत्रों के बीच कर दिया गया था। अशोक के उत्तराधिकारियों के विषय में जो वर्णन दिया हुआ है, उसके अनुसार उनमें कुछ के नाम इस प्रकार है – कुणाल, दशरथ, समप्रति, सलिशुका, देववर्मन, सतधनवान्, ब्रिहद्रथ। परन्तु उनके शासनकाल का ठीक से निर्धारण करना कठिन काम है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि अशोक के बाद साम्राज्य विभाजित हो गया था और उनके शासक अल्पावधि के लिए उत्तराधिकारी बने। जल्दी-जल्दी शासकों में परिवर्तन होने के कारण प्रशासन पर साम्राज्यवादी नियंत्रण कमज़ोर पड़ने लगा। प्रारंभिक तीन सम्राटों – चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार एवं अशोक ने प्रशासन को इस ढंग से संगठित किया था कि उस पर लगातार कठोर नियंत्रण बनाए रखने की आवश्यकता थी। राजाओं में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होने के कारण कोई भी ऐसा शासक नहीं हुआ जो साम्राज्य के सम्मुख उभरती समस्याओं का हल कर पाता और प्रशासन पर निंयत्रण बनाए रखता। इसको इस तथ्य के साथ भी जोड़ा जा सकता है कि वंशीय साम्राज्य शासकों की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करते हैं। लेकिन अशोक के उत्तराधिकारी अपनी योग्यता को सिद्ध करने में असफल रहे। उनमें से प्रत्येक ने बहुत थोड़े समय के लिए शासन किया, जिसके कारण न वे शासन करने की नई नीतियों का निर्धारण कर सके और न पुरानी नीतियों को बरकरार ही रख सकें। साम्राज्य का विभाजन इस बात का स्पष्ट साक्ष्य है कि विघटन की प्रक्रिया का प्रारंभ अशोक की मृत्यु के तुरन्त बाद ही प्रारंभ हो गया था।

17.6.2 विघटन के अन्य राजनीतिक कारण

अशोक की मृत्यु के पश्चात् प्रशासनिक प्रणाली में जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उसको मौर्य साम्राज्य के विघटन के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण कारणों में से एक कारण बताया गया है। अशोक के उत्तराधिकारियों के सम्मुख तत्काली समस्या यह थी कि अशोक की *धम्म* नीति और सरकार में उसकी सर्वोच्चता को जारी रखा जाए या नहीं। यह स्पष्ट नहीं कि अशोक के आग्रहों के बावजूद उसके उत्तराधिकारियों ने क्या *धम्म* को उतनी ही महत्ता दी, जितनी की अशोक ने दी। *धम्म* के राजनीतिक महत्व से संबंधित एक अन्य विशेषता यह भी थी कि

एक बड़ी संख्या उन राज्य अधिकारियों के अस्तित्व की थी जिनको *धम्म महामात्त* कहा जाता था। कुछ विद्वानों को ऐसा मानना है कि अशोक शासन के उत्तरार्ध में ये अधिकारी बड़े शक्तिशाली एवं दमनात्मक हो गए। इन कर्मचारियों के, जिसका केन्द्र-बिन्दु राजा था, सत्ता से जुड़े होने के कारण अगर कोई कमज़ोर राजा होता था तो सम्पूर्ण प्रशासन स्वाभाविक रूप से कमज़ोर हो जाता। जैसे ही केन्द्र कमज़ोर पड़ा, उसी के साथ प्रांतों ने भी अलग होना प्रारम्भ कर दिया।

अधिकारियों को राजा स्वयं नियुक्त करता था तथा उनकी वफादरी केवल उसके प्रति होती थी। जैसे ही कमज़ोर राजाओं ने सत्ता संभाली और उन्होंने थोड़े-थोड़े समय के लिए प्रशासन किया उससे अधिकारियों की संख्या में लगातार बहुत अधिक वृद्धि होने लगी और इन अधिकारियों की अपने राजाओं के प्रति वफादारी थी न कि राज्य के प्रति। इस प्रकार बाद के मौर्य शासकों के अधीन प्रांतीय सरकारों ने केन्द्र के प्रभुत्व पर प्रश्न चिन्ह लगाना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि कोई भी इस अवधारणा को स्वीकार नहीं कर सकता कि मौर्य राज्य के नियंत्रण को समाप्त करने के लिए कोई जन विद्रोह हुआ, परन्तु यह बात मज़बूती के साथ कही जा सकती है कि मौर्य नौकरशाही का सामाजिक आधार काफ़ी दबाव एवं तनाव में था जिसकी परिणति एक असक्षम प्रशासन के रूप में हुई, जो सामान्यतः सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में असफल रहा। इसी के साथ-साथ प्रारंभिक तीन मौर्य सम्राटों ने भ्रष्ट अधिकारियों के विरूद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए एक जटिल गुप्तचर व्यवस्था का संचालन सफलतापूर्वक किया परन्तु बाद के मौर्य राजाओं के शासन काल में यह व्यवस्था धराशायी हो गई। इस प्रकार, राजाओं के पास ऐसा कोई विकल्प नहीं था जिससे कि साम्राज्य की आम जनता के विचारों का अनुमान लगाया जा सके या भ्रष्ट अधिकारियों पर नियंत्रण किया जा सके क्योंकि केंद्रीय सत्ता में कमज़ोर शासकों के आने पर इस प्रकार की गतिविधियां स्वाभाविक थीं। इस स्थिति में हमारे लिए मुख्य रूप से इस बयान पर बल देना आवश्यक है कि मगध साम्राज्य के पतन का संतोषप्रद उत्तर इन बयानों के आधार पर नहीं दिया जा सकता कि उत्तराधिकारी कमज़ोर थे या सेना निष्क्रिय हो गई थी या जन-विद्रोह हुए। वास्तव में इनमें से प्रत्येक एक विशेष स्वरूप वाली मौर्य साम्राज्य की नौकरशाही प्रणाली से जुड़ा था और जब यह टूटना प्रारम्भ हुई तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था संकट में पड़ गई।

17.6.3 अशोक और उसकी नीतियां

बहुत से विद्वानों का मानना है कि अशोक के राजनीतिक निर्णयों या इन निर्णयों के प्रभावों के कारण मौर्य साम्राज्य का विघटन हुआ।

1) प्रथम इनमें कुछ वे विद्वान हैं जो यह तर्क देते हैं कि पुष्यमित्र शुंग, जिसने अंतिम मौर्य राजा को मारा था, ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि अशोक की बौद्ध धर्म के समर्थन की नीति तथा उसके उत्तराधिकारियों की जैन धर्म के समर्थन की नीति के खिलाफ थी। आगे वे तर्क देते हैं कि *धम्म* के विशेष अधिकारियों *''धम्म महामात्तों''* जिनकी नियुक्ति अशोक ने की थी, ने ब्राह्मणों की गरिमा को नष्ट किया। इन अधिकारियों ने ब्राह्मणों को परम्परागत दण्ड देने के कानूनों और *स्मृतियों* में दिए गए नियमों को लागू करने से रोका।

   स्पष्टतः उपरोक्त दिए गए तर्कों के समर्थन में साक्ष्य नहीं हैं। अशोक के शिलालेखों से इस प्रकार के साक्ष्य मिलते हैं, जिनके अनुसार अशोक ने *धम्म महामात्तों* को ऐसे निर्देश दिए थे जिससे कि वे ब्राह्मणों एवं श्रमणों, दोनों का सम्मान करें। परन्तु यह

संभव है कि बाद के वर्षों में ये अधिकारीगण आम जनता के बीच अलोकप्रिय हो गए हों। अशोक की नीति के कारण ब्राह्मणों के हितों को क्षति पहुंची तथा पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मणों के खिलाफ विद्रोह भड़काया, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका सरल सा कारण यह है कि अगर अशोक की नीतियाँ इतनी हानिकारक थी तो उनकी मृत्यु के तुरंत बाद ऐसा होना चाहिए था।

2) दूसरी श्रेणी के विद्वानों का मत है कि अशोक ने जिन शान्ति की नीतियों को प्रारम्भ किया वे मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थीं क्योंकि उन्होंने साम्राज्य की शक्ति को कम कर दिया। अशोक की *अहिंसा* की नीति पर ज़ोर देते हुए इसके चारों ओर तर्कों को गढ़ा गया है। यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि राजा की अहिंसात्मक नीति का परिणाम यह भी हुआ कि वह विशेषकर उन राज्यों के अधिकारियों पर नियंत्रण को बनाए न रख सका, जो दमनकारी हो गए थे और जिन पर नियंत्रणन करना आवश्यक था।

अशोक का उपरोक्त चित्रण सत्य से बहुत दूर है। यह सही है कि अशोक अहिंसा को *धम्म* के लिए अनिवार्य समझता था लेकिन फिर भी उसने इस संदर्भ में उस दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। खाने के लिए पशुओं का वध करना और बलि देने को वह पसन्द नहीं करता था, परन्तु फिर भी शाही नीति के रूप में इसको पूर्णतः समाप्त नहीं किया गया और खाने के लिए पशुओं का वध जारी रहा, यद्यपि इसमें कमी निश्चित रूप से आयी। शासन एवं न्यायिक स्तर पर अपराधी को मृत्यु दण्ड देने की प्रथा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए था किन्तु यह जारी थी। सेना को निष्क्रिय कर दिया गया था इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है न ही किसी शिलालेख से इस संदर्भ में कोई जानकारी मिलती है। अगर इस संदर्भ में कोई प्रमाण मिलता है तो वह है कलिंग राज्य पर अशोक का सैनिक आक्रमण। अगर वह सचमुच शांतिप्रिय होता तो वह कलिंग को स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापित कर देता परंतु उसने एक व्यवहार कुशल शासक के रूप में कलिंग-राज्य पर मगध की सर्वोच्चता स्थापित की। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि अशोक ने साम्राज्य पर अपने नियंत्रण को दृढ़ता के साथ स्थापित किया। उदाहरणार्थ, उसने आदिवासियों को चेतावनी देते हुए स्पष्ट किया कि उसके साम्राज्य में रहने वाली जनजातियों का अनाचरण वह एक सीमा के बाहर बर्दाश्त नहीं करेगा। अशोक ने इन सभी कार्यों को इसलिए किया जिससे कि साम्राज्य को सुरक्षित रखा जा सके।

इस प्रकार, निष्कर्ष यह निकलता है कि *अहिंसा* की नीति ने मौर्य सेना एवं प्रशासन व्यवस्था को किसी भी प्रकार से कमज़ोर नहीं किया। इस सब के बावजूद पुष्यमित्र शुंग मौर्य सेना का सेनापति था और अशोक के शासनकाल की आधी शताब्दी के बाद उसने यूनानियों को मगध के अन्दर प्रवेश करने से रोका था। प्रो. रोमिला थापर के अनुसार, शान्तिवादी नीति के एक पीढ़ी तक जारी रहते हुए भी न तो साम्राज्य को कमज़ोर किया जा सकता था और न ही विघटित। ''साम्राज्यों के विघटन के लिए केवल युद्धों एवं भू-भाग की प्राप्ति को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि इसके कारणों की खोज भली भांति ढ़ंग से दूसरे क्षेत्रों में की जानी चाहिये''।

17.6.4 आर्थिक समस्याएं

डी.डी. कौसांबी का कहना है कि मौर्यों ने गंभीर आर्थिक संकट का सामना किया जिसके कारण मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया। कौसांबी के द्वारा प्रस्तुत किए गए तथ्य दो प्रकार के हैं और उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य अर्थव्यवस्था में वित्तीय बाधाएं निहित थीं। (क)

विभिन्न वस्तुओं पर कर बढ़ाने के लिए सरकार ने अनेक उपाय किये। (ख) इस काल के पंच मार्क्ड (आहत सिक्के) सिक्के इस बात का प्रमाण है कि मुद्रा की गुण्वत्ता में गिरावट आई। उनका अन्तिम तर्क उनके द्वारा इस काल के सिक्कों पर किए गए सांख्यिकी विश्लेषण पर आधारित है।

कौसांबी के मगध साम्राज्य में निर्णायक परिवर्तन तथा इन परिर्वतनों में मौर्य साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण होने के विचार को स्वीकार किया गया है। उनके विचारों को निम्न प्रकार से वर्णन किया गया हैः

1) ऐसा माना जाता है कि राज्य का धातु पदार्थों पर एकाधिकार धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कृषि कार्यों के लिए लोहे की मांग इतनी अधिक बढ़ गई कि उसकी पूर्ति अकेले मगध के द्वारा नहीं की जा सकी। वास्तव में दक्कन में लोहे के स्रोतों को खोजने और विकसित करने के लिए प्रयास किए गए। लोहा प्राप्त करने के कुछ स्थल आन्ध्र एवं कर्नाटक में पाए गए। मगध राज्य के लिए इन स्थलों से लोहा प्राप्त करना काफ़ी खर्चीला काम था। इससे संबंधित और भी समस्याएं थीं। जैसे कि इन खदानों को स्थानीय सरदारों के आक्रमण से भी सुरक्षित रखना पड़ता था।

2) दूसरी बात जिस पर ज़ोर दिया गया है, वह यह है कि कृषि उत्पादन में विस्तार, जंगल की लकड़ी के अधिक प्रयोग तथा निर्वणीकरण ने बाढ़ तथा सूखे की स्थिति पैदा की। मौर्यकाल में उत्तरी बंगाल में भयंकर सूखे के प्रमाण मिले हैं। इस प्रकार कई कारणों से राजस्व में कमी आई। सूखे के दौरान राज्य से व्यापक स्तर पर सहायता की अपेक्षा की जाती थी।

केन्द्रीकृत प्रशासन में पर्याप्त मात्रा में राजस्व न उपलब्ध होने की समस्या के कारण दूसरे प्रकार की अन्य गम्भीर मुश्किलें पैदा हो जाती थीं। राजस्व की मात्रा को बढ़ाने के लिए *अर्थशास्त्र* में सुझाया गया है कि कलाकारों और वेश्याओं आदि पर भी कर लगाये जाने चाहिए। सरकारी खजाने में अधिक धन की आवश्यकता के फलस्वरूप उन सभी वस्तुओं पर कर लगाने की प्रवृति को बढ़ावा मिला, जिन पर कर लगाया जा सकता था और मुद्रा और अवमूल्यन से मुद्रा-स्फीति को बढ़ावा मिला। *अर्थशास्त्र* में जो आपातस्थिति में लागू किए जाने वाले उपाय वर्णित हैं उनको उपरोक्त दिए गए संदर्भ में समझा जाना चाहिए। दूसरे, आहत सिक्कों में चांदी की मात्रा को कम करके उनका जो अवमूल्यन किया गया वह इस बात का प्रमाण है कि उत्तर-मौर्य काल के शासकों के समय में खाली होते सरकारी खजाने की आवश्यकता की पूर्ति होती थी। खर्च में भी वृद्धि हुई। अशोक के द्वारा जन कार्यों के लिए खर्च की गई धनराशि से भी स्पष्ट होता है। राज्य को जो अतिरिक्त धन मिलता था वह भी उसकी एवं उसके अधिकारियों की यात्राओं पर खर्च हो जाता था। राज्य ने वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण के लिए जो प्रारंभिक कठोर उपाय किए थे, वे अशोक के शासन काल में ही परिवर्तित होने प्रारंभ हो गए।

रोमिला थापर ने इस पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन होना अनिवार्यतः इस बात की ओर संकेत नहीं करता है कि अर्थव्यवस्था पर किसी प्रकार का दबाव था। यह कहना बहुत कठिन है कि कब और कहां सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। सकारात्मक रूप में तर्क प्रस्तुत करती हुई वह बताती हैं कि भौतिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय में भारतीय उपमहाद्वीप के बहुत से भागों की अर्थव्यवस्था में वास्तव में सुधार हुआ था। उपरोक्त कथन की पुष्टि बेहतर किस्म के पदार्थों के उपयोग, जो कि तकनीकी विकास की ओर इशारा करते हैं, से होता है। इस प्रकार, उनके अनुसार सिक्कों का अवमूल्यन भौतिक जीवन के स्तर में गिरावट के कारण नहीं हुआ

था, बल्कि यह राजनीतिक अव्यवस्था का परिणाम था जो गंगा घाटी में व्याप्त थी और जिसके कारण व्यापारी वर्ग में धन को संग्रहित करने की प्रवृति बढ़ी, जिससे सिक्कों का अवमूल्यन हुआ। इस प्रकार वह निष्कर्ष निकालती हैं, ''इसमें कोई संदेह नहीं है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही आर्थिक सम्पन्नता भी व्यक्त थी''।

17.7 उत्तर मौर्य काल में स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं का विकास

राजा वास्तव में ''साम्राज्य'' के प्रमुख व महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर शासन करते थे, जिनका मुख्य केन्द्र मगध था। इसकी अधिक संभावना है कि मौर्यों ने दूर-दराज के क्षेत्रों पर शासन करने वाले राज्यपालों एवं अधिकारियों को स्थानीय लोगों में से चुना हो। कभी-कभी ये अधिकारीगण बड़े शक्तिशाली हो जाते थे और राजाओं के प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने का काम करते थे। जैसा कि पहले भी उद्धत किया गया है कि साम्राज्यवादी व्यवस्था को जारी रखने के लिए इन अधिकारियों की राजनीतिक वफादारी बड़ी निर्णायक होती थी। राजा में परिवर्तन का अर्थ था कि इन वफादारियों का पुननिर्धारण होना। यदि ऐसा अक्सर हो, जैसा कि अशोक के बाद के समय में हुआ भी तो व्यवस्था में मूलभूत कमजोरियाँ आ जाती और अंततः यह व्यवस्था असफल हो जाती। अशोक के बाद आधा दर्जन राजाओं ने शासन किया परन्तु उन्होंने अपनी शासन करने की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया और वही नीति अपनाई जो पहले तीन मौर्य सम्राटों ने अपनाई थी। यह भी कहा जाता है कि इनमें से कुछ राजाओं ने लगभग साथ-साथ साम्राज्य के बहुत से भागों पर शासन किया। इससे स्पष्ट है कि मौर्यों के शासन काल में ही साम्राज्य का विखण्डीकरण हो गया था।

जहाँ एक ओर मौर्यों के राजनीतिक पतन ने कई स्थानीय शक्तियों के उत्थान के लिए एक परिस्थिति पैदा की, वहीं दूसरी ओर, मौर्य काल का आर्थिक विस्तार अबाध रूप से चलता रहा। इस प्रकार मौर्यों के अंतर्गत संकट संसाधनों के संगठन और नियंत्रण का था, न कि उनके अभाव का।

बोध प्रश्न 2

1) मौर्य कला की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्या अशोक की शांतिवादी नीति मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी? यदि नहीं तो इसके पतन के क्या कारण बताये गये हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताइये कि निम्नलिखित कथन सत्य हैं (✓) या असत्य (✗):

क) *धम्म* की नीति एक नये धर्म की स्थापना का प्रयास था। ( )

ख) *धम्म* ने सम्पूर्ण *अहिंसा* का प्रचार किया। ( )

ग) सारनाथ स्तम्भ के शीर्ष पर एक घोड़े की आकृति है। ( )

घ) पुश्यमित्र शुंग संभवतः मौर्यो के तहत उज्जैन के राज्यपाल थे। ( )

17.8 सारांश

धम्म की नीति के विषय में हमारी जानकारी के स्रोत अशोक के अभिलेख हैं। अशोक ने अपनी *धम्म* की नीति के अंतर्गत *अहिंसा,* सहिष्णुता तथा सामाजिक दायित्व का उपदेश दिया। उसने इन सिद्धांतों का पालन अपनी प्रशासनिक नीति में भी किया। *धम्म* एवं बौद्ध मत को एकरूपी नहीं मानना चाहिए। *धम्म* विभिन्न धार्मिक परम्पराओं से लिए गए सिद्धांतों का मिश्रण था। इसका क्रियान्वयन साम्राज्य को एकसूत्र में बांधने के उद्देश्य से किया गया था।

मौर्य कला एक शाही कला थी यह अशोक के संरक्षण में फली-फूली। विद्वानों में यह विवाद का विषय है कि क्या यह कला अकेमेनिड कला परम्पराओं से प्रभावित थी या वैदिक काल से शुरू हुए एक लम्बे देशी आंदोलन का परिणाम थी।

मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए विभिन्न कारक महत्वपूर्ण माने गये हैं। अशोक के उत्तराधिकारी साम्राज्य की उस अखण्डता को बनाए रखने में असफल रहे जो उन्हें अशोक से विरासत में प्राप्त हुई थी। अशोक के बाद साम्राज्य के बंटवारे एवं शीघ्र-शीघ्र शासकों के परिवर्तन ने निःसंदेह साम्राज्य के आधार को कमज़ोर किया। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मौर्य साम्राज्य व्यवस्था में अंतर्निहित विरोधाभासों ने इस संकट को और अधिक गहरा किया। उच्च स्तरीय केंद्रीकृत नौकरशाही की निष्ठा राजा के प्रति थी न कि राज्य के प्रति जिसके कारण प्रशासन का आधार पूर्णतः व्यक्तिवादी हो गया। राजा के परिवर्तन का तात्पर्य अधिकारियों में भी परिवर्तन होना था जिसका अशोक के बाद में प्रशासन पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।

हम देख चुके हैं कि पहले कुछ विद्वान किस भांति अशोक की नीतियों को मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं परन्तु समकालीन प्रमाणों के आधार पर ये विचार स्वीकारने योग्य नहीं हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों पर कुछ विद्वानों के द्वारा आर्थिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में भी विचार किया गया है और हमने भी इस पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। अंत में हमने उत्तर एवं दक्षिण भारत में राजनीति के उत्थान पर भी प्रकाश डाला है जिसने मौर्य साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को तेज गति प्रदान की।

17.9 शब्दावली

व्यापारी वर्ग : उत्पादन प्रक्रिया से जुड़े लोगों से भिन्न समाज का वह वर्ग जो व्यापार तथा विनिमय की गतिविधियों से जुड़ा था।

***धम्म* यात्राएं** : अशोक के पूर्वज शिकार और आनंद मनाने के लिए *विहार यात्राएं* करते थे। बोधगया से लौटने के बाद अशोक ने *विहार यात्राएं* बंद करके *धम्म* यात्रा आरम्भ की क्योंकि इन *धम्म* यात्राओं में उस *धम्म* का प्रवचन करने और प्रजा के

विभिन्न वर्गों से सीधा संबंध स्थापित करने का अवसर मिलता था।

उदारवादी : जो विभिन्न विचारों और दर्शनों को मुक्त रूप से अपनाता हो।

अनुसमयान : वृहद् शिलालेख 3 में अनुसमयान (निरीक्षण यात्राओं) का वर्णन है जिनमें कुछ श्रेणियों के राज्य कर्मचारी पांच-पांच वर्ष पर निकलते थे और जिनमें *धम्म* का प्रवर्तन और सरकारी काम-काज किया जाता था।

राजनीतिक व्यवस्था : राजनीतिक संगठन के प्रकार – कुछ राजतांत्रिक, गणतांत्रिक या कबीलाई हो सकते हैं।

पार्थियन : पार्थिया प्रदेश के निवासी, यह प्रदेश बैक्ट्रिया के पश्चिम और कैस्पियन सागर के दक्षिण-पूर्व में स्थित था।

शांतिवादी : युद्ध का विरोधी, जो यह विश्वास करता है कि सभी युद्ध गलत हैं।

17.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 17.2 तथा इसके संबंधित उपभागों को देखें।

2) भाग 17.4 तथा उसके उपभागों को देखें।

39 उपभाग 17.4.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 17.5 देखें।

2) भाग 17.6 तथा उसके उपयोगी उपभाग देखें।

3) (क) × (ख) × (ग) ✓ (घ) ✓

17.11 संदर्भ ग्रन्थ

बैशम, ए. एल. (1967). *द वंडर दैट वॉस इंडिया.* नयी दिल्ली.

देवाहूती, डी. (1997). मौर्य आर्ट एंड द 'ऐपिसोड' थ्योरी. *ऐनल्स ऑफ द भंडरकर ओरिंटल रिसर्च इंस्टीटयूट.* वॉल्यूम 52, 1/4. 161-73.

हंटिंगटन, सूसन एल. (2016). *ऐशियंट इंडियाः बुद्धिस्ट, हिन्दु, जैन.* मोतीलाल बनारसीदास पबलिर्षस, सैकंड ऐडिशन.

रे, निहरंजन (1945). *मौर्य एंड शुंग आर्ट.* यूनीवर्सिटी ऑफ कोलकता

थापर, रोमिला (1960). *अशोक एंड द डिक्लाईन ऑफ द मौर्याज़.* दिल्ली.

इकाई 18 पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी*

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 भारतीय दर्शन और इसकी पर्यावरणीय दृष्टि

18.3 पारंपरिक संदर्भ में *प्रदूषण*

18.4 प्रकृति में देवत्वरोपण

18.5 प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

- 18.5.1 प्राचीन भारत में जल विज्ञान
- 18.5.2 गणित
- 18.5.3 खगोल विज्ञान
- 18.5.4 औषधि
- 18.5.5 वास्तुकला
- 18.5.6 धातुशोधन में प्रगति

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.9 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे :

- विभिन्न प्रकार के प्राचीन भारतीय ग्रंथ जो पर्यावरण के रक्षण और संरक्षण की बात करते हैं;
- अतीत में प्राप्त की गयी भारतीय गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, भवन, धातु विज्ञान के क्षेत्र में विकास और उपलब्धियाँ; और
- प्राचीन भारतीयों के जल-व्यवस्था इंजीनियरी कौशल।

18.1 प्रस्तावना

जब से मनुष्य ने इस पृथ्वी पर कदम रखा तब से पर्यावरण के साथ मानव संपर्क एक सतत् प्रक्रिया रही है। इस खंड में हम प्रकृति/पर्यावरण के साथ मानवीय संबंधों और मान्यताओं की चर्चा समाज की संचित समझ और ज्ञान के उपलब्ध संसाधनों द्वारा करेंगे। इसके उपरांत इस इकाई में हम प्राचीन भारतीयों द्वारा प्राप्त की गयी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों के बारे में जानेंगे। जिस काल के बारे में हम जानेंगे वह आरंभिक काल से 200 बी.सी.ई. तक का है।

*डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली।

आरंभ से, पर्यावरण के प्रति चिंता भारतीय बौद्धिक और लोकप्रिय परंपराओं का एक अभिन्न अंग रही है। प्रकृति के प्रति यह संवेदनशीलता पश्चिम से संपर्क या ऋण के परिणामस्वरूप विकसित नहीं हुई बल्कि स्वतः देशीय रूप से अस्तित्व में आई। यह सांस्कृतिक प्रतिरूपों, धार्मिक प्रथाओं और सामाजिक प्रथाओं में स्पष्ट है। लोकप्रिय और प्राचीन परंपराओं में निहित ज्ञान पर्यावरण के रक्षण और संरक्षण पर ध्यान केंद्रित करता है।

18.2 भारतीय दर्शन और इसकी पर्यावरणीय दृष्टि

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपराओं में, पर्यावरण के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध पक्षपोशित किया गया है। पर्यावरण को जीवंत जैविक इकाई माना जाता था। यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य सभी प्राणियों में सबसे बुद्धिमान था। मनुष्य को पर्यावरण का एक छोटा-सा हिस्सा समझा गया जो मृत्योपरांत प्रकृति में ही मिल जाता है। भौतिक स्तर पर, मनुष्य का सभी जीवित और निर्जीव प्राणियों के साथ घनिष्ठ संबंध है। आध्यात्मिक रूप से, विभिन्न प्रजातियों के प्रति कर्त्तव्य और दायित्व से निहित एक आचरण संहिता का मनुष्य को पालन करना है। यह तथ्य स्वीकार किया गया कि पर्यावरण को न खतरे में डालना चाहिए और न ही नष्ट करना चाहिए।

प्राचीन भारतीय विचारधारा, प्रकृति के साथ सद्भाव, संतुलन और सहयोग के संबंध को निरुपित करती है। भारतीय विचारनुसार ब्रह्मांड *'सृष्टि'* का एक रूप है। सृष्टि ने पूरे ब्रह्मांड को निरुपित किया, जिसमें *'पशु', 'पक्षी'* और *'वनस्पति'* सम्मिलित है। सृष्टि का सृजन *हिरण्यगर्भ,* सोने के अंडे द्वारा हुआ और अंततः इससे निर्माण हुआ। चूँकि मनुष्य और *सृष्टि* दोनों ही ईश्वर के माध्यम से अस्तित्व में आये इसलिए इन्हें एक-दूसरे के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने की आवश्यकता है।

पृथ्वी और इसमें सम्मिलित प्रत्येक अंश को श्रद्धा और सम्मान दिया गया है। *पंच तत्वों* में से अंतिम तत्व – पृथ्वी (आकाश, जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी) को सभी जीवित प्राणियों की माता के रूप में माना गया है। यह माना गया कि पृथ्वी की पूजा की जानी चाहिए क्योंकि यह मनुष्य के अस्तित्व को भौतिक आधार प्रदान करती है। वेदों में, पृथ्वी के संसाधनों और उनके उद्गम की निरंतरता के लिए प्रार्थना की गई। यह कहा गया कि ये केवल मनुष्यों के लिए नहीं अपितु सभी द्वारा साझा उपयोग किए जाने के लिए है।

सभी जैवीय प्राणियों का सम्मान किया गया है। पशुओं और पक्षियों को विशेष शक्तियों और बुद्धि से युक्त माना गया है। उनके पास जलवायु या वायुमंडलीय परिवर्तनों का अनुमान लगाने की शक्ति और अच्छी-बुरी घटनाओं की भविष्यवाणी करने की क्षमता है। पशुओं का वध करना प्रतिबंधित किया गया और ऐसा करना अपराध माना गया। यह भी स्पष्ट तथ्य है कि पशु अति पवित्र थे इसलिए पशुओं को देवी-देवताओं का व्यक्तिगत *वाहन* बनाया गया, इससे पशुओं के प्रति सम्मान की भावना दृष्टिगोचर होती है। उन्हें स्वयं भगवान के समरूप पूजा के योग्य माना गया। उदाहरण के लिए, इंद्र का वाहन हाथी है, शिव ने वृशभ (बैल) को अपने वाहन के रूप में अपनाया, सरस्वती ने हंस, गणेष मूषक पर विराजमान हुए और विष्णु ने वाहन के रूप में गरुड़ को पसंद किया। यहां तक कि अतीत में सम्राटों ने भी स्वीकार किया कि पशुओं के वध पर प्रतिबंध अहिंसा की नीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और इसका पालन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, पांचवें स्तंभ अभिलेख में, अशोक ने पशुओं के प्रति *अहिंसा* की अपनी नीति को रेखांकित किया। उन्होंने उन जानवरों की एक सूची दी जिनकी हत्या प्रतिबंधित थी। उदाहरण के रूप में इस सूची में तोते, मैना, लाल सर वाली बत्तख, अक्रवक-हंस, हंस नंदी-मुख, कबूतर, चमगादड़, चीटियाँ, कछुए, बिना हड्डी की मछली, बकरी, सुअर और अन्य पशुओं की हत्या प्रतिबंधित की गई थी।

यह अभिलेख, उन प्रारंभिक ऐतिहासिक अभिलेखों में से एक है जिनमें लोगों द्वारा पालन किए जाने वाली सामान्य संरक्षण प्रथाओं का उल्लेख है (मयंक कुमार, एमएचआई 08, खंड 5)।

प्रकृति के इस परोपकारी व्यवहार की व्याख्या के पदचिन्ह खोजने पर हम पाते हैं कि ऋग्वेदिक काल में ऋषियों ने प्रकृति के विभिन्न तत्वों का मानवीकरण किया और उनकी पूजा की। उन्होंने सूर्य, अग्नि, पृथ्वी आदि से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु प्रार्थनाएं की। उनकी महिमा में प्रशंसा गीत गाये गए।

प्रकृति को देवत्व के समरूप कैसे माना जा सकता था इसका सर्वोत्तम उदाहरण नटराज या नृत्य करते शिव की आकृति है। उनके प्रतीक अग्नि और मृग हैं। उनकी जटाओं में जंगल हैं, जिसके भीतर वे गंगा को छिपा लेते हैं। उनके केश सूर्य और चंद्रमा से सुशोभित हैं। सांप उनकी माला है। बाघ की खाल उनके वस्त्र हैं। अपने डमरू की लौकिक लय पर वे सृजन, अधोगति, उत्थान और अंत में आत्मज्ञान की अनवरत प्रक्रिया को इस संसार में लाते हैं। उनकी ऊर्जा 'शक्ति' पार्वती है। उनके बिना वे अधूरे हैं। हिमालय की बेटी, 'शक्ति' को स्वयं तपस्या और प्रायश्चित करनी पड़ी'' (मयंक कुमार, एमएचआई-08, खंड 5)।

इस प्रकार प्राचीन विचारों में प्रत्येक वस्तु की कल्पना की गयी – चेतन और निर्जीव, मनुष्य और अमानुश, संपूर्ण का एक भाग है। सभी प्राणी एक-दूसरे के बिना अधूरे है। इस तरह के ज्ञान के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु का सम्मान और संरक्षण किया जाए ताकि ब्रह्मांड व्यवस्थित ढंग से कार्य कर सके।

18.3 पारंपरिक संदर्भ में *प्रदूषण*

प्राणियों और भौतिक जगत के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के उल्लंघन को *प्रदूषण* माना गया। स्वच्छता के मानदंडों का पालन न करने और मर्यादा के उल्लंघन के कारण *प्रदूषण* बढ़ा। *प्रदूषण* का कारण मानवीय लालच और स्वार्थ था। प्रदूषित 'सृष्टि' का वर्णन निम्न शब्दों में वर्णित किया गया :

''ऐसा लगता है कि सभी तारे, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि और प्राकृतिक दिशाएं प्रदूषित हो गई हैं। ऋतुएँ भी प्रकृति के विरुद्ध कार्यरत दिखाई देती हैं, गुणों से भरपूर होने के बावजूद पृथ्वी के सभी औषधीय पौधों ने अपना रस खो दिया है। जब ऐसा प्रदूषण होगा तो व्यक्ति बीमारियों से पीड़ित होगा। ऋतुओं के प्रदूषण के कारण कई तरह की बीमारियाँ पैदा होंगी और ये देश को बर्बाद कर देगी। इसलिए, भयावह बीमारी के आरंभ से पहले औषधीय पौधों को इक्ट्ठा करें और पृथ्वी का स्वरूप बदल दें।''

(चरक संहिता, विमंसथन, 3.2 जैसा एमएचआई-08, खंड-5, इकाई-15, पृ.18 में उद्धृत किया गया है)

18.4 प्रकृति में देवत्वरोपण

भारतीय सभ्यता ने हमेशा प्रकृति और पर्यावरण की विविधता का सम्मान किया है। भारतीय विचार में, पर्यावरण एक भौतिक और बेज़ान प्राणी नहीं है, लेकिन एक बहुत ही जीवित और सक्रिय तंत्र है तथा मानव पृथ्वी पर बसने वाले विभिन्न अन्य प्राणियों में से एक है। प्रकृति के देवत्वरोपण के माध्यम से, प्राचीन भारतीय पर्यावरण के प्रति सम्मान बढ़ाने में सफल रहे।

यह पवित्र वनों के उदाहरण से स्पष्ट है। प्राचीन काल से स्थानीय, स्वदेशी देवताओं की पूजा करने के लिए पवित्र वन या देव-रहाती की स्थापना की गई। ये वैदिक काल से अस्तित्व में है। आज पवित्र वनों की संख्या में गिरावट आई है। कुछ अभी भी संरक्षित है। हालांकि, प्राचीन काल में, बड़ी संख्या में शहरों द्वारा पवित्र वनों को बनाए रखा गया था। चंपा, कुशीनगर और वैशाली में पवित्र वन थे।

भारत के प्राचीन साहित्य में हम वनों की विभिन्न श्रेणियाँ पाते हैं। 'आरण्यक' में प्राचीन ऋषि शांति से रहते थे। जंगल का एक विशेष हिस्सा जो तपस्या के लिए आरक्षित था उसे 'तपोवन' कहा जाता था। आरण्यक और *तपोवन* दोनों *अभ्यारण्य* या *मृगवन* थे, राजा, राजकुमार और आम लोग ऋषियों के ज्ञान, आशीर्वाद और मार्गदर्शन की तलाश में यहाँ आते थे। न केवल जंगलों बल्कि तालाबों, सरोवरों और नदियों को भी पवित्र माना जाता था, पूर्वज इनकी पूजा करते थे। आज भी, प्रकृति के ऐसे प्रतीकों को अतीत के पवित्र अवशेषों का रूप माना जाता है।

प्राचीन भारत में वनों और अन्य जैवयी घटकों के लिए अंतर्निहित चिंता थी। 400 बी.सी.ई. में पराशर द्वारा लिखा गया *'वृक्षायुर्वेद'* ग्रंथ वनस्पति विज्ञान पर आधारित है। इस तरह के विशिष्ट ज्ञान का प्राचीन इतिहास में मौजूद होना उल्लेखनीय है। इसमें विभिन्न प्रकार के वनों का उल्लेख किया गया है जैसे *अटावी, बिपन, गहन, कानन, वन, महारण्य* और *अरण्यानी*। क्षेत्रों के अनुसार, वनों का वर्गीकरण भी किया गया। इस प्रकार वनों के बारे में जानने की इच्छा के साथ-साथ इस तथ्य को स्वीकार किया गया कि वनों ने लोगों के दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से एकत्र और वर्गीकृत किया गया जो दर्शाता है कि न केवल *जनपद* बल्कि इससे जुड़े *अरण्य* भी दैनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण घटक थे।

हिंदुओं का आरंभ से ही प्रकृति से गहरा जुड़ाव था। जीवन के विभिन्न चरणों से संबंधित लगभग प्रत्येक अनुष्ठान और समारोह आग, लकड़ी और पानी के साथ अंतरंग संबंध को रेखांकित करते हैं। भारत का प्राचीन साहित्य, *वेदों* में नदियों, पहाड़ों और पृथ्वी की पवित्रता की बात कही गयी है। धर्म सूत्रों में सभी के प्रति दयालुता के भाव का गुणगान है। इसके अतिरिक्त, अन्य कई ऐसे ग्रंथ हैं जो प्रकृति के साथ उल्लास और सौहार्दपूर्ण संबंध की बात करते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित ज्ञान हर रूप में विभिन्न मार्गों द्वारा जीवन की पवित्रता के करीब पहुंचता है। पशु और पौधों के विनाश को प्रलय का निमंत्रण माना गया। यह कहा गया कि त्रेता युग बीतने के बाद, लोग नदियों, खेतों, पहाड़ों, पेड़ों के झुंड और झाड़ियों सभी पर अधिकार जमा लेंगे। चौथा युग और भी बदतर होगा। पौधों, पेड़ों और पशुओं जैसी सभी जीवित संस्थाओं को नष्ट कर दिया जाएगा। धर्म का नाश होगा। धर्म का नाश ('ध्र' जिसका अर्थ है पोषण करना, पवित्रता, न्याय, कर्त्तव्य) तब होता था जब प्रकृति का पतन होता था (नारायणन, वसुधा, 2001)।

अधिकांश हिंदू परंपराओं में, पृथ्वी को पवित्र माना गया है। उसे *भू, भूमि, पृथ्वी, वसुधा, वसुंधरा, अवनी* के रूप में संबोधित किया जाता है। पृथ्वी की उपासना भगवान विष्णु के साथ उनकी पत्नी के रूप में की जाती हैं। *मनुस्मृति* में कहा गया है कि *''अशुद्ध वस्तुएं जैसे मल, मूत्र, थूक अथवा इन तत्वों से निहित वस्तुएं या विषय को जल में विसर्जित नहीं करना चाहिए''* (मनुस्मृति 4:56; नारायणन, 2001, द्वारा उद्धृत)।

प्रकृति केवल प्रकृति का मानवीकरण नहीं बल्कि ब्रह्मांडीय तत्व भी है। इसके पास दैवीय शक्ति है और *'पुरुष'* के साथ संजोग से सृजन होता है। प्रकृति के सभी घटक जैसे जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश/अंतरिक्ष और वायु पवित्र हैं।

भारतीय परंपरा में वृक्षों का स्थान पूजनीय है। ये वनस्पति जगत का हिस्सा है और मनुष्यों के बराबर है। प्राचीन ज्ञान परंपरा के अनुसार प्रत्येक वृक्ष में एक *वृक्ष देवता* होता है। इनको प्रातःकाल जल चढ़ाना चाहिए, इस तरह वृक्षों की निरंतर देखभाल सुनिश्चित की गयी। *नरसिंह पुराण* में वृक्ष को ही भगवान (ब्रह्मा) के रूप में मानवीकरण किया गया। *अथर्ववेद* ने *पीपल* के पेड़ में विभिन्न देवताओं का निवास माना। विभिन्न पेड़ और देवताओं के साथ उनका संबंध इस प्रकार से है :

अशोक वृक्ष	बुद्ध, इंद्र, विष्णु, अदिति
पीपल	विष्णु, लक्ष्मी, वन दुर्गा
तुलसी	विष्णु, कृष्ण, जगन्नाथ, लक्ष्मी
कदंब	कृष्ण
बेर	शिव, दुर्गा, सूर्य, लक्ष्मी
वट	ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काल, कुबेर, कृष्ण

(मयंक कुमार, एमएचआई-08, खंड 5)

मत्स्य पुराण में एक संदर्भ है जहाँ पार्वती वृक्षों के रोपण के बारे में निर्देश देती हैं। एक बार पार्वती ने एक अशोक का पौधा लगाया और उसकी बहुत देखभाल की। देवता और दिव्य प्राणी उनके पास आते हैं और कहते हैं .

''हे देवी! ''लगभग सभी लोग बच्चे चाहते हैं। जब लोग अपने बच्चों और पोते-पोतियों को देखते हैं, तो उन्हें लगता है कि वे सफल हुए। पुत्रों की तरह वृक्ष लगाने और पालने से आप क्या हासिल करती हैं?'' पार्वती उत्तर देती हैं : *''जल की कमी वाले क्षेत्र में जो कुएँ खोदता है उसे स्वर्ग में तब तक स्थान मिलता है जब तक वहां पानी की बूंदें रहती हैं। पानी के एक बड़े जलाशय का मूल्य दस कुओं के बराबर है। एक बेटा दस जलाशयों के समान है और एक पेड़ दस बेटों के बराबर है (दस पुत्रः समो द्रुमा) यह मेरा मानदंड है और मैं इसकी सुरक्षा के लिए ब्रह्मांड की रक्षा करूंगी।''*

(मत्स्य पुराणम, अध्याय 154, 506-512, नारायण, 2001, से उद्धृत)

ऋग्वेद की सूक्ति के अनुसार, ''यदि हजारों और सैकड़ों साल तक आप फल और जीवन का आनंद लेना चाहते हैं, तो वृक्षों का व्यवस्थित रोपण कीजिए। ग्रंथों में बार-बार यह उल्लेख किया गया है कि वृक्ष और मुख्यतः विशेष फलों के वृक्ष पवित्र होते हैं और इनको नष्ट करने वालों को महा विपत्ति का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, रामायण में विपत्ति के समय राक्षसराज रावण बोलता है, ''... मैंने वैशाख के महीने में कोई अंजीर का वृक्ष नहीं काटा, फिर यह विपत्ति मेरे सामने क्यूँ आई''।

वृक्षों के गुणों का वर्णन करते हुए, *विष्णु पुराण* में कहा गया है कि जो पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह नरक में नहीं जाता और *विष्णु धर्मोत्तरा* भी कहते हैं कि जो पेड़ लगाता है वह नरक में नहीं जाता। *धर्मसूत्रों* के साथ-साथ कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में वृक्ष की कटाई की निंदा की गई है। कौटिल्य वृक्षों, वनों और जंगलों को नष्ट करने वालों के लिए दंड के विभिन्न स्तरों का निर्धारण करते हैं। प्राकृतिक वनस्पतियों का विनाश कैसे अपराध माना जाता था यह निम्न वर्णित दंडों के विभिन्न स्तरों से पता चलता है : कौटिल्य का कहना है कि नगर के निकट के उद्यानों में फलों या फूलों के पौधों या छायादार वृक्षों के काटने पर, 6 *पण* का दंड लगाया जाएगा; एक ही वृक्ष की छोटी शाखाओं को काटने के लिए 12 *पण* और बड़ी शाखाओं को काटने के लिए 24 *पण* का दंड लगाए जाएंगे। उसी वृक्ष के

तने को काटने पर 48-96 *पण* के बीच जुर्माना लगाया जाएगा और वृक्ष गिराने पर 200-500 *पण* के बीच का दंड भुगतना होगा। उपरोक्त जुर्माना जो वृक्ष सीमाओं का रेखांकन करते हैं, या जिनकी पूजा की जाती है, दोगुना कर दिया जाएगा (कौटिल्य *अर्थशास्त्र*, नारायण, 2001, से उद्धृत)।

अर्थशास्त्र में ऐसे *अभयारण्य* या *अभयवन* को विकसित करने की आवश्यकता का वर्णन है जहां वृक्ष और पशु वध के भय से मुक्त रह सके। वहां एक वन *अधीक्षक* भी था जो जंगलों की देखभाल करता था और पशुओं के अवैध शिकार और हत्या के लिए दंड निर्धारित किया जाता था। अन्य पशुओं के साथ हाथियों, हिरणों, जंगली भैंसा, पक्षियों, मछलियों को फंसाने या मार डालने वालों के लिए मृत्युदंड निर्धारित किया गया था।

भारत में नदियों को भी पवित्र माना जाता था। ऐसा माना जाता है कि जो लोग नदियों में डुबकी लगाते हैं उनके *पाप* धुल जाते हैं। भारत की नदियों को पोषण और जीवन देने वाली माना जाता है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु के मैदानी इलाकों में मानसून के बाद कावेरी नदी को गर्भवती माना जाता है और परंपरा के अनुसार स्थानीय लोग उसकी गर्भावस्था की भोजन-लालसा (मैक्काई) को संतुष्ट करने के लिए भोपन अर्पण करते हैं। एक मौखिक परंपरा और स्थानीय *स्थल पुराण* के अनुसार, 15 अक्तूबर - 14 नवंबर 'अय्प्पासी' के तमिल महीने के दौरान कावेरी नदी में स्नान करने से व्यक्ति के पाप दूर हो जाते हैं और मनुष्य को परम मुक्ति मिलती है।

अतीत में और आज भी मनुष्य का प्रकृति के साथ निकट संबंधों के उदाहरण हैं, जैसे नारियल के वृक्ष की पूजा की जाती है, नारियल के फल को शुभ माना जाता है; आम के पत्तों का उपयोग यज्ञ या अनुष्ठान के दौरान बंधनवार के रूप में किया जाता है; आम के पेड़ और इसकी लकड़ी का उपयोग यज्ञ में *समिधा* के रूप में किया जाता है; कमल और तुलसी के पौधे को धार्मिक रूप से शुद्ध माना जाता है।

सायन भट्टाचार्य के अनुसार, *मनुस्मृति* न्यायशास्त्र के ग्रंथ में, कुछ वर्गों में पारिस्थितिक जागरूकता को दर्शाया गया है (2014 : 37)।

1) सभी जीवित प्राणियों को मोटे तौर पर *चर* (चलायमान जीवित दुनिया) और *अचर* (अचल : पौधा साम्राज्य) के रूप में वर्णित किया गया है, इस प्रकार यह जैव विविधता की धारणा दर्शाता है।

2) अनैतिक गतिविधियों द्वारा पाँच स्थूल तत्वों के विनाश होने का अर्थ प्रदूषण हो सकता है।

3) स्वास्थ्य-प्रदता (*सौंचा*) के विरुद्ध किसी भी कार्य को संदूषण माना जा सकता है।

4) पौधों के भंडारण अंगों जैसे कंदील जड़ें, भूमिगत तने, पत्तेदार सब्ज़ियाँ, सुंदर फूल, स्वादिष्ट फल, काष्ठ, वृक्ष, फसल आदि को बहुमूल्य माना जाता था और इन पर चोट पहुंचाने के लिए विभिन्न दंड निर्धारित किये गये।

5) पशुओं के पालन और रक्षण, जैव विविधता के संरक्षण और शाकाहार को महत्त्व दिया गया। मनु के अनुसार, कृषि प्रक्रिया से पशुओं को चोट लगती है, विशेषतः मिट्टी में कीड़े और कीटाणु।

6) जैव विविधता संरक्षण के लिए, उन्होंने उल्लेख किया कि भोजन के लिए किसी भी प्रकार की मछलियों को नहीं मारा जाना चाहिए; एक खुर वाले पशुओं, गाँव के सूअर,

एकांत में घूमने वाले पशु और अज्ञात पशुओं की रक्षा की जानी चाहिए, मांसाहारी पक्षी, ग्रामवास के पक्षी, जालपाद पक्षी, मछलियों को खाने वाले पक्षी, विचित्र चोंच वाले पक्षियों आदि को खाने के उद्देश्य से नहीं मारा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि *खर* (गधा), *अश्व* (घोड़ा), *उष्ट्र* (ऊंट), *मृग* (हिरण), *इभा* (हाथी), *अजा* (बकरी), *अहि* (सांप), *अहिसा* (भैंस) की हत्या करना पाप है।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय परंपरा ने प्रकृति और पर्यावरण का ध्यान रखा। वास्तव में जीने का प्राचीन तरीका प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से रहने वाला है। यह पर्यावरण संतुलन भारत में अंग्रेज़ों के आने के साथ ही बधित हो गया था। हम पहले से कहीं अधिक ऐसे संबंधों की प्रासंगिकता महसूस करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन भारतीय ग्रंथों से कुछ उदाहरण दें, जो पर्यावरण के प्रति प्राचीन भारतीय सोच को दर्शाते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

2) कुछ ऐसे उदाहरण दें, जिससे पता चलता है कि भारतीयों ने प्रकृति का देवत्वरोपण किया। इससे प्रकृति का संरक्षण कैसे हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

18.5 प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

भारत ने आरंभिक काल से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफ़ी उन्नति कर ली थी। इकाई के इस भाग में हम आरंभिक युग में भारतीय विज्ञान के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानेंगे।

18.5.1 प्राचीन भारत में जल विज्ञान

इतिहास में, जल-विज्ञान तकनीकों को राजनीतिक संस्थाओं और स्थानीय निवासियों द्वारा कृषि की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए आरंभ किया गया था। वे जल-संचयन की उन्नत तकनीकों का उपयोग करते थे और ये स्वदेशी तकनीक आज भी महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास में जल संसाधनों की उपलब्धता ने निवास के मार्ग को प्रशस्त किया। जल की कमी वाले क्षेत्रों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मदद से उपलब्ध अल्प संसाधनों का उचित उपयोग करने के सभी प्रयास किए गए। जल विज्ञान इंजीनियरिंग के क्षेत्र में प्रगति हुई।

हड़प्पा सभ्यता

सिंधु घाटी सभ्यता प्रथम सभ्य, शहरी संस्कृति है जो भारतीय उपमहाद्वीप में फली-फूली। इसकी विशेषताएँ उच्च स्तर की तकनीक को दर्शाती है जिसका हड़प्पा के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किया गया था। मोहनजोदड़ों में पाया गया विशाल स्नानागार ऐसा ही एक उदाहरण है। यह एक तालाब है जिसके दोनों तरफ़ सीढ़ियाँ हैं जिनके माध्यम से इसके तल तक पहुंचा जा सकता है। स्नानागार की दीवारों और तल को जलरोधी बनाने के लिए चुना-गारा के मिश्रण में जिप्सम मिलाया गया था। स्नानागार को पूर्णतः जलरोधी बनाने के लिए दोहरी दीवार बनाई गयी और बीच की जगह को बिटुमिन के लेपन और मिट्टी से भरा गया। स्नानागार एक कुएँ से जुड़ा हुआ था जो पानी की आपूर्ति करता था। परिसर के खुले प्रांगण में स्थित एक कमरे में यह कुआँ था। तालाब में इस्तेमाल हुआ पानी पकी ईंटों की नाली द्वारा दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहा दिया जाता था। विशाल स्नानागार की निर्माण प्रक्रिया और जलरोधक तकनीक हड़प्पा के उच्चस्तर जल-विज्ञान अभियांत्रिकी (हाइड्रोलिक, इंजीनियरिंग) कौशल की ओर संकेत करती है।

लोथल में एक बंदरगाह की खोज की गयी है। यह हड़प्पावासियों के अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) कौशल का प्रमाण है। यह बंदरगाह पहला कृत्रिम जल-कुंड है जिसका निर्माण उच्च ज्वार के समय जहाजों को जलमार्ग से निकालने के लिए किया गया था। इसकी धारणा रोमन और फोनेसीयन द्वारा बनाए गए बंदरगाहों से उत्कृष्ट थी। इसके तटबंध की दीवारें पश्चिम में 212.4 मीटर, उत्तर की ओर 36.4 मीटर, पूर्व में 209.3 मीटर और दक्षिण में 34.7 मीटर थी। यह पंक्तिबद्ध संरचना जल के प्रवेश और निकासी के मार्ग का प्रमाण देती है। इस बंदरगाह की पूर्वी दीवार के दक्षिणी भाग की ओर एक 7 मीटर चौड़ी खाई है जो एक ढलाव मार्ग के रूप में कार्य करती है। इस मार्ग ने लोथल बंदरगाह को भोगावो नदी और फिर कैम्बे की खाड़ी से जोड़ दिया। पूरी संरचना इस तरह से बनाई गई है कि उच्च ज्वार-भाटा के समय यह मार्ग जल के प्राकृतिक प्रवाह को बढ़ाएगा और अतिरिक्त जल को ऊपर की ओर धकेल देगा। नौकाओं ने बंदरगाह में प्रवेश करने के लिए उच्च ज्वार का इस्तेमाल किया। जब ज्वार-भाटा उतरता तब नावो की वापसी की यात्रा होती। बंदरगाह की दक्षिणी दीवार में बनाए गए ढलाव मार्ग द्वारा अतिरिक्त जल बह जाता था। पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए ढलाव मार्ग पर एक लकड़ी के फाटक का इस्तेमाल किया गया था। बंदरगाह की पश्चिमी दीवार के साथ 260 मीटर लंबा जहाज-घाट था, इस घाट से वस्तुओं को बगल के गोदाम में ले जाया जा सकता था। गोदाम का क्षेत्रफल 1,930 वर्ग मीटर था, जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अन्न भंडार से बड़ा था। यह संरचना चार मीटर ऊँचे चबूतरे पर बनाई गयी थी, जिस पर इंटों के चौसट खंड थे और प्रत्येक 3.6 मीटर के वर्गाकार खंड की उंचाई एक मीटर थी। एक मीटर चौड़े मार्ग द्वारा इन खंडों को अलग-अलग किया गया था ताकि वायु-संचार और सामानों की आवाजाही में आसानी हो। खंडों के शीर्ष पर लकड़ी की अधिरचना बनाई गई थी।

इसी प्रकार, धोलावीरा में, कच्छ के रण में, बारिश के जल को एकत्र करने के लिए चट्टानों को काटकर जलाशयों का निर्माण किया गया था। धोलावीरा एक ऐसे ही क्षेत्र में स्थित है जहाँ पानी की भीषण कमी है। हड़प्पा वासियों ने वर्षा का जल जो धोलावीरा के निकट की दो नदियों से आता था, को 16 जलाशयों में एकत्र करने के लिए बहुत ही कुशल तरीकों का उपयोग किया। मनहर और मंदसर नामक दो मौसमी नदियों का उपयोग जलग्रहण क्षेत्रों से वर्षा का जल एकत्र करने के लिए किया जाता था। जल को रोकने के लिए नदियों में उपयुक्त स्थानों पर पत्थर की दीवारे बनाई गई। बस्ती के भीतरी और बाहरी दीवारों के बीच चट्टानी ढलान वाले क्षेत्रों में खुदाई कर, प्रवेश मार्गों की मदद से जलाशयों तक

मानसून जल प्रवाह को पहुंचाया गया। इन जलाशयों पर बांध, पुल बनाकर एक-दूसरे से अलग कर दिया गया था, इससे बस्ती के अलग-अलग हिस्सों तक जल पहुंचाना आसान हो गया। इसके अतिरिक्त, नगर में जल संग्रहण के लिए एक-दूसरे को काटती हुई नालियों का निर्माण किया गया। ये नाले पत्थर और ईंट के बने होते थे और इसका उपयोग गंदे पानी के लिए नहीं बल्कि बारिश के पानी को इक्ट्ठा करने के लिए किया जाता था। इसी तरह, धोलावीरा में घर की नालियों को शोष-गर्त से जोड़ा गया। इस प्रकार विवेकपूर्ण तरीकों और प्रौद्योगिकी की मदद से वर्षा के जल-संचयन के हर संभव प्रयास किये गए।

कालीबंगन, सुरकोटडा, चंहुदरों के अन्य हड़प्पा स्थलों पर किये गये जल प्रबंधन दैनिक जीवन में वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग को दर्शाता है। सार्वजनिक और निजी दोनों ही प्रकार के कुएं पाए गए हैं। कुशलता से निर्मित स्नानगृहों से निकलने वाली नालियों को सड़कों की नालियों से जोड़ा गया था, सफाई में आसानी के लिए इनमें नियमित अंतराल पर मोरीद्वार (मेनहोल) बनाये गये थे। नालियों का निर्माण भट्टे में पकी हुई ईंटों से हुआ था जो पट्टियों से ढकी हुई थी। इससे पता चलता है कि हड़प्पा स्थलों पर जल निकास और मल प्रवाह प्रणाली सबसे विकसित किस्म की थी और यह शहरी, उन्नत सभ्यता की एक विशेषता बन गई।

ऐतिहासिक काल

विभिन्न राजवंशों को जल संचयन उद्देश्य हेतु सिंचाई की नहरों, जलाशयों, तटबंधों और कुओं के निर्माण के लिए जाना जाता है। मौर्य शासकों ने न केवल सड़कों के किनारे सार्वजनिक उपयोग के लिए कुएँ खोदे, बल्कि नए बसे गाँवों के लिए सिंचाई के माध्यमों के निर्माण को भी सूचीबद्ध किया। कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* सिंचाई तकनीकों, वर्षा व्यवस्था और जल संचयन विधियों के बारे में जानकारी देने के लिए प्रसिद्ध है।

पहली शताब्दी बी.सी.ई. में प्रयागराज के पास श्रृंगवेरपुरा में निर्मित जलाशय, हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। यह 250 मीटर से अधिक लंबा एक विशाल जलाशय है। जिसका निर्माण गंगा नदी पर बांध बनाकर किया गया है; मानसून अवधि के दौरान जो समीपवर्ती धारा (नाले) में गिरता है, जहाँ से 11 मीटर चौड़ी और 5 मीटर गहरी नहर इस जलाशय में जल बहा कर ले जाती है। लेकिन पहले पानी को एक निःसादन में एकत्र कर लिया जाता है। इस पानी का उपयोग अनुष्ठान और स्नान के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। ज़मीन से पानी का अवशोषण करने वाले भूमिगत कुओं की वजह से जलाशय कभी सूखता नहीं था। यहाँ हम सुदर्शन झील नामक एक और प्रभावशाली जलाशय का उल्लेख कर सकते हैं। इसका निर्माण तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. गुजरात के गिरनार क्षेत्र में हुआ था। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान पुष्यगुप्त नामक एक अधिकारी द्वारा पहली बार खुदाई की गई थी। अशोक के शासनकाल में यवनराजा तुशस्य ने इसमें पूरक जलग्रीवा (नालियां) जोड़ी। 150 सी.ई. के जूनागढ़ गिरनार अभिलेख में वर्णित है कि चार शताब्दियों बाद, उज्जैन के शक राजा महाक्षत्रप रुद्रदामन ने झील की मरम्मत करवाई। 455 सी.ई. में स्कंदगुप्त के शासनकाल के एक शिलालेख से प्रमाण मिलते हैं कि यह झील बाद के समय में भी मौजूद रही। स्कंदगुप्त के प्रांतीय गवर्नर पर्णदत्त के बेटे, स्थानीय शहर के गवर्नर चक्रपलित ने तटबंध टूटने पर झील की मरम्मत करवाई। इस समय झील के तटबंध का आधार 100 फुट मोटा था। 9वीं शताब्दी सी.ई. में अंततः झील नष्ट होती गयी और इसकी मरम्मत नहीं करवाई गई। झील के जल को प्रतिरोपित मोड़ और अन्य माध्यमों द्वारा छोटे मार्गों में प्रवाहित होने दिया जाता था।

18.5.2 गणित

भारत में प्राचीन लोगों ने विज्ञान और गणित के क्षेत्र में अच्छा नियंत्रण स्थापित कर लिया था। वैदिक लोगों के बलिप्रथा में रुचि के परिणामस्वरूप दो विषय विकसित हुए, ज्यामिति और खगोल विज्ञान। बलि दिए जाने वाली वेदी का आकार और आकृति निश्चित होनी चाहिए थी। इसी से ज्यामिति विज्ञान उत्पन्न हुआ। बलिदान के लिए उचित समय तय करने की आवश्यकता ने खगोल विज्ञान के अध्ययन को विकसित किया। वैदिक साहित्य में *'गणिता'* शब्द मौजूद है जिसका अर्थ है गणना का विज्ञान। *छन्दोग्य उपनिषद्* में विज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ संख्याओं के विज्ञान का उल्लेख है। इस समय गणित में खगोल विज्ञान, अंकगणित और बीजगणित शामिल थे, लेकिन ज्यामिति नहीं। ज्यामिति उस समय विज्ञान के एक अलग समूह से संबंधित थी जिसे *'कल्प'* नाम से जाना जाता था। ज्यामिति पर छह छोटे ग्रंथ हैं जो वेदों की छह शाखाओं से संबंधित हैं। उत्तर वैदिक कालीन भारत में गणित का बड़ा हिस्सा खगोल विज्ञान के सहायक के रूप में विकसित हुआ। इस वर्ग के खगोलीय कार्यों को *'सिद्धांत'* कहा जाता है। सामान्य युग के कुछ ही पहले और बाद की शताब्दियों में खगोलीय विचारों और घटनाओं को उचित प्रकार से व्यक्त करने, वर्णन करने और लेखा-जोखा रखने के लिए गणित का विकास हुआ था।

जैन धर्म के आरंभ में पुजारियों ने गणित के विकास को प्रोत्साहित किया। उन्होंने *अनुयोग* (धार्मिक साहित्य) की चार शाखाओं में से एक शाखा को *गणितानुयोग* (गणितीय सिद्धांत), *संख्यान* (गण्ना) और *ज्योतिष* (खगोल विज्ञान) के ज्ञान को समर्पित किया। एक जैन पुजारी को इन तीनों का ज्ञान होना चाहिए था। महावीर के गणितसार-संग्रह (850 सी.ई.) और श्रीपति के *गणित तिलक* (999 सी.ई.) में वर्णित गणितज्ञय विचारों की छाप बहुत समय पहले *स्थागांग-सूत्र* (1 शताब्दी बी.सी.ई.) में मिलती है। इसमें *परिक्रमा* (मौलिक संचालन), *व्यवहार* (दृढ़ संकल्प), *रज्जु* (ज्यामिति), *कालसवार्ण* (भिन्नांक), *यवत-तवत* (रेखीय समीकरण), *वर्ग* (द्विघात समीकरण), *घन* (घन समीकरण), *वर्गावर्ग* (द्विवर्गात्मक समीकरण) और *विकल्प* (क्रमपरिवर्तन और संयोजन) को सूचीबद्ध किया गया है। इस समय गणित में तीन शाखाएँ सम्मिलित थी – अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति (सत्पथी, बी.बी., दिनांक नहीं)।

अंकगणित के क्षेत्र में, भारत में शून्य प्रणाली विकसित हुई और फिर दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल गयी। हिंदू शब्द 'शून्य' का अर्थ है – रिक्त, जो अरबी भाषा में *'सिफर'* के रूप में आया। शून्य के साथ दशमलव प्रणाली के अस्तित्व में होने के प्रमाण की पुष्टि करने के साक्ष्य भी उपलब्ध है। भोजदेव शासनकाल के ग्वालियर शिलालेख में छंदों को 1.26 तक दशमलव आंकड़े में दर्शाया गया है। इतना ही नहीं इस अभिलेख में शून्य के लिए एक गोलाकार प्रतीक भी दिखाई देता है।

इस प्रकार भारतीय गणित बहुत विकसित और जटिल था जिसमें संख्या सिद्धांत से लेकर दूसरे क्रम के बीजगणितीय समीकरण और सीमांत मान की अवधारणा शामिल थी।

18.5.3 खगोल विज्ञान

यद्यपि खगोल विज्ञान की उत्पत्ति वैदिक काल में हुई, किंतु एक अलग विज्ञान के रूप में *ब्राह्मणों* में इसका विकास हुआ। इसे *नक्षत्र विद्या* (सितारों का विज्ञान) कहा जाने लगा। एक खगोलशास्त्री को *नक्षत्र-दरिया* (नक्षत्र निरीक्षक) या *गणक* (कैलकुलेटर) कहा जाता था।

ऋग्वेद के अनुसार, ब्रह्मांड में पृथ्वी, अंतरिक्ष (आकाश, जिसका शाब्दिक अर्थ है सितारों के नीचे का क्षेत्र) और दिव या द्यायुस (स्वर्ग) शामिल हैं। ब्रह्मांड को अनंत माना गया।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पृथ्वी को परिमण्डल (ग्लोब या गोलाकार) के रूप में वर्णित किया गया है। *ऋग्वेद* में कहा गया है कि अक्षीय घूर्णन और वार्षिक परिक्रमा सूर्य के कारण होती है। सूर्य केवल एक है जिसके कारण दिन और रात, भौर (गोधूलि), महीने, वर्ष और मौसम होते हैं। इसमें सात किरणें हैं जो मुख्यतः सूर्य की किरणों के सात रंग हैं। *ऋग्वेद* में भूमध्य रेखा के साथ सूर्यपथ के झुकाव और पृथ्वी की धुरी का उल्लेख किया है।

सूर्य की प्रत्यक्ष वार्षिक श्रृंखला को दो भागों में बांटा गया था, उत्तरायण, जब सूर्य की गति उत्तर की ओर होती है तथा दक्षिणायन जब यह दक्षिण की ओर जाता है। सूर्य की राशि चक्र के विभिन्न भागों को अलग-अलग नामों से पुकारा गया, इस प्रकार बारह आदित्यों के सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। *ऋग्वेद* के अनुसार चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है।

हालांकि भारतीय खगोल विज्ञान के वैज्ञानिक पहलू का काल-अंकन टॉलेमी के समय की तुलना में बहुत बाद में हुआ, किंतु इसके तरीके और स्थिरांक सभी वास्तविक थे। भारतीय खगोल विज्ञान सटीक और व्यवहारिक दोनों था। उन्होंने पहली ज्या (साइन) और कोज्या (कोसाइन), टेबल और आरंभिक त्रिकोणमिति बनाई। भारतीय खगोलीय ग्रंथों में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ निहित हैं, आर्यभट्ट की व्यापक खगोलीय गणना से लेकर वराहमिहिर के खगोलीय विवरण के निर्धारण और विभिन्न अवधारणाओं के स्पष्टीकरण तक। ग्रहण और ग्रहों के संयोजन : मुहूर्त, तिथि, कैलेंडर, ग्रहण और ग्रह-संयोजन भारतीय खगोल विज्ञान और पंचांग-निर्माण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

18.5.4 औषधि

भारतीय चिकित्सा पद्धति की पारंपरिक प्रणाली मन और शरीर दोनों से संबंधित है। यह *'आयुर्वेद'* शब्द से ही स्पष्ट है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है – *'द्युस'* और *'वेद'*। *'द्युस'* का अर्थ है जीवन और बाद में ज्ञान-विज्ञान। *चरक संहिता* के अनुसार, *द्युस* में सुख, दुख, हित और अहित सम्मिलित हैं। शारीरिक और मानसिक रोग से मुक्त, जोश, शक्ति और ऊर्जा से भरा जीवन सुखी जीवन है। इसके विपरीत दुखी जीवन कष्टों और बीमारी से भरा होता है।

आयुर्वेद पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रिया द्वारा किसी व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करता है। इसकी दो शाखाएँ हैं – *शल्यक्रिया* (सर्जरी) और *औषधि* । आयुर्वेद के विशाल ज्ञान का काल निर्धारण आर्यों से पूर्व और आर्य युग के आधार पर किया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि इसके अनुमान, दर्शन, तर्क और बीमारियों के व्याधिनिदान को *न्याय-वैसेशिका* और *सांख्य दर्शन* शाखाओं से लिया गया था। वेदों के समान *आयुर्वेद* को उच्च स्थान प्राप्त है। इसे *अथर्ववेद* का उपांग और *ऋग्वेद* से जुड़ा *उपवेद* कहा जाता है। *अथर्ववेद* और *आयुर्वेद* के चिकित्सा पद्धति के बीच घनिष्ठ समानता है। *महाभारत* में वर्णित है कि *आयुर्वेद* की रचना कृष्णत्रेय ने की थी।

आयुर्वेद के इतिहास को निम्न में विभाजित किया जा सकता है :

1) प्रारंभिक अवधि (देवकाल)

2) संकलन की अवधि (ऋषिकाल या संहिताकाल)

3) सार संग्रह की अवधि (संग्रहकाल)

4) पतन की अवधि

आयुर्वेद के प्रारंभिक ग्रंथ लुप्त हो गए हैं। इसमें एक लाख सूक्ति (मोक) से बनी *ब्रह्मा-संहिता* शामिल थी। ये सभी ग्रंथ लुप्त हो गए हैं। इनमें प्रमुख थे– *ब्रह्म-संहिता, प्रजापति-संहिता, अल्वी-संहिता* और *बलाभित-संहिता* / 500 बी.सी.ई. से 500 सी.ई. के दौरान *आयुर्वेद* से संबंधित विभिन्न कार्यों का संकलन प्रवर्तक लेखकों द्वारा किया गया। आयुर्वेद के आठ भागों में *कायचिकित्सा* (चिकित्साशास्त्र), *शल्य-तंत्र* (प्रमुख शल्य चिकित्सा), *शालक्य-तंत्र* (लघु शल्य चिकित्सा), *भूतविद्या* (प्रेतशास्त्र), *कौमारभृत्य-तंत्र* (बाल रोग), *अगद-तंत्र* (विष विज्ञान), *रसायन-तंत्र* (जराचिकित्सा) और *वाजीकरण-तंत्र* (पुरुषत्व) सम्मिलित थे।

यूनीनी (ग्रीक) चिकित्सा पद्धति पर *आयुर्वेद* का गहरा प्रभाव था और इसकी अवधारणा हिप्पोक्रेटिक पुस्तिका से मिलती है। मेगस्थनीज़ (चौथी शताब्दी बी.सी.ई.) द्वारा हाथियों के नेत्र रोगों के उपचार का वर्णन पलकप्या के *हस्त्यायुर्वेदा* के विचारों पर आधारित पाया गया है। इसके विपरीत, यूनानी (ग्रीक) चिकित्सा से जुड़ी कुछ अवधारणाओं को *आयुर्वेद* में सम्मिलित किया गया है। *आयुर्वेदिक* ग्रंथों का अरबी में और अरबी से फारसी में अनुवाद किया गया। *सुश्रुत संहिता* का अनुवाद एक प्रवासी भारतीय चिकित्सक द्वारा किया गया था।

कुछ प्रसिद्ध *आयुर्वेदिक* ग्रंथों का अरबी में और अरबी से फारसी में अनुवाद किया गया था। आयुर्वेदिक सिद्धांत ईरान, मध्य एशिया, तिब्बत, इंडो-चीन, इंडोनेशिया और कंबोडिया तक फैले।

आयुर्वेद स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक अनोखे और समग्र दृष्टिकोण का विस्तार करता है। इसमें स्वास्थ्य और बीमारी के लिए आत्म अनुशासन, व्यायाम और पौधों पर आधारित चिकित्सा प्रणाली शामिल है। इसके सिद्धांत विश्लेषणात्मक, तर्कसंगत और व्यावहारिक हैं। इसने आधुनिक चिकित्सा को भी प्रभावित क्रिया है, मुख्यतः प्लास्टिक सर्जरी के क्षेत्र में।

18.5.5 वास्तुकला

हड़प्पा सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्रारंभिक, सबसे विकसित और नगरीय सभ्यता थी। इसके नगर जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, लोथल, कालीबंगन, धोलावीरा, राखीगढ़ी एक विस्तृत योजना और उत्कृष्ट सड़क और गृह निर्माण दर्शाते हैं। वे प्राचीन भारतीयों की उच्च तकनीकी कौशल के विकास के गवाह हैं। नगर-निर्माण के संदर्भ में, मोहनजोदड़ों की बड़ी इमारतें 73मी. × 34 मी. से भी बड़ी थीं। सड़के कुशलता से बनाई गई थीं तथा उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए एक-दूसरे को शतरंज के समान समकोण पर काटती थी। सड़कों की चौड़ाई 10 मीटर से लेकर 5.48 मीटर थी और कुछ सड़कों को पक्का किया गया था

मकान लंबे-चौड़े और अच्छी तरह से बनाए गए थे। वे पकी ईंटों के बने थे जो 1:2:3 या 1:2:4 के समान अनुपात में थी। कई घरों में एक से अधिक मंजिल थी, ऐसा लगता था कि जैसे उन्होंने भार वितरण के सिद्धांतों में विशेषज्ञता हासिल कर ली होगी। एक सामान्य घर में एक मुख्य आंगन के अलावा एक कमरा जिसमें एक कुआं, पक्का बाथरूम और कई नालियां थी। फर्श के नीचे एक नाली बनाई गयी थी जो गंदे पानी को सड़क की मुख्य नाली में बहा देती थी। इसी तरह से छत से गंदे पानी की निकासी के लिए दीवारों के साथ लंबवत् रूप से ऊर्ध्वाधर नालियां बनाई गयी थी। घिरनी द्वारा कुओं से पानी खींचने के लिए एक सुसज्जित प्रणाली भी थी।

कालीबंगन में तांबे की कुल्हाड़ियाँ मिली हैं, जो संकेत देती हैं कि 2450 बी.सी.ई. में तांबा धातुशोधन की शुरुआत हो चुकी थी। जल निकासी प्रणाली, सड़कें, अन्न भंडार, मकान, वज़न और माप, सील सभी वस्तु उत्कृष्ट कोटि का कौशल दर्शाते हैं। मोहनजोदड़ों और लोथल में पाए जाने वाले तोल के बाट चर्ट पत्थर को काट के बनाए गए थे। मोहनजोदड़ो में पाए गये सीप से बने क्रमवर्धी माप, हड़प्पा से मिली कांसे की छड़ और लोथल का हाथीदांत का काम हड़प्पाई लोगों की व्यावहारिक ज्यामिति और भूमि सर्वेक्षण के ज्ञान को दर्शाते हैं। माप के क्रमिक विभाजनों के बीच का अंतर क्रमशः 6.70 मिमी., 9.34 मिमी. और 1.70 मिमी. है। टेराकोटा का भूलंब (साहुल) और लोथल में 45°, 90° और 180° के कोणों को मापने के लिए सीप से बना एक उपकरण भी पाया गया है।

बाद के काल में बनी धार्मिक इमारतें जैसे स्तूप और चैत्य गृह का निर्माण बौद्धों के तकनीकी कौशल को दर्शाता है। चट्टान को काटकर बनाए गए चैत्य या विहार का डिज़ाइन पहले किसी श्रेष्ठ शिल्पकार या वास्तुकार द्वारा तैयार किया जाता था। एक उपयुक्त स्थान चुनने के लिए उसे चट्टान के प्रकार और उसके दोषमुक्त होने, एक उचित शिरानिक्षेप का होना जहां से गुफा की खुदाई शुरू की जा सके, स्नान और पीने के पानी के लिए झरने या नदी से निकटता जैसे कारकों को ध्यान में रखना पड़ता था। विस्तृत योजनाएँ बनाने के लिए और निर्माण कार्य आगे बढ़ाने के लिए चट्टानों की सही स्थिति और आकार को जानना आवश्यक था।

18.5.6 धातुशोधन में प्रगति

धातुशोधन परंपरा भारत में 7000 वर्ष प्राचीन है। इसमें प्रस्तर कर्म, कृषि, पशु-पालन, कुम्हकारी, धातुशोधन, वस्त्र निर्माण, मनके-निर्माण, लकड़ी पर नक्काशी, गाड़ी-निर्माण, नौका-निर्माण एवं नौचालन का समृद्ध इतिहास है।

ताम्र के प्रथम साक्ष्य तांबे के मनके के रूप में 6000 बी.सी.ई. में मेहरगढ़ से प्राप्त हुए। हालांकि यह किसी अयस्क से प्रगलित नहीं बल्कि कच्चे-तांबे के रूप में था। 1500 वर्ष पश्चात् बस्तियों ने तांबे के प्रगलन (धातु को पिघला कर शोधन करना) का परीक्षण करना आरंभ किया, इसमें कुछ शताब्दियों बाद हड़प्पा काल में और अधिक प्रगति हुई। हड़प्पाई लोग अरावली की पहाड़ियों, बलूचिस्तान और अन्य कई स्थानों से तांबे के अयस्क प्राप्त करते थे। शीघ्र ही उन्होंने तांबे में रांगा (टिन) धातु मिलाकर कांस्य धातु का आविष्कार कर लिया जो तांबे से अधिक ठोस और ढालने में आसान थी। उन्होंने अयस्क की अशुद्धियों में निकल, गिलट (निकल), संखिया (आर्सेनिक), सीसा (लेड) की भी खोज की जो कांसे से भी अधिक सख़्त थी जिनका उपयोग पत्थरों को तराशने के लिए किया गया। तांबे और कांसे को ढालने की प्रक्रिया में कई तकनीक शामिल थी जैसे ढलाई, नतोदरता, उत्थापन, शीतन-प्रक्रिया, धातु पर परत चढ़ाना (अनिलिंग), दरारों को भरना (रिवेटिंग), लपेटना और जोड़ना। हड़प्पाई बरछे का सिरा, बाण का सिरा, कुठार, छेनी, हसियां, ब्लेड्स (चाकू और रेज़र के लिए), सुई, हुक और बर्तन जैसे जार, पात्र, पैन (कड़ाही, तवा), इनके अतिरिक्त प्रसाधन के सामान जैसे कांसे के दर्पण जो आकार में हल्के अंडाकार होते थे, उभरा हुआ अग्रभाग और एक तरफ़ से अत्यधिक पोलिश की गई वस्तुओं का उत्पादन करते थे। हड़प्पा के शिल्पकारों ने आरा (true saw) की भी खोज कर ली, जिसके दांत और ब्लेड का संलग्न भाग वैकल्पिक तौर पर एक साथ लगे हुए थे, इस प्रकार के आरे की जानकारी रोमन युग तक अन्य किसी भी स्थान पर नहीं थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने हमें प्रसिद्ध 'डांसिंग गर्ल' दी, और भेडा, हिरण, बैल आदि अन्य जंतुओं की कृतियाँ भी इसमें सम्मिलित है जो भ्रष्ट मोम प्रक्रम द्वारा बनाई गयी थीं।

भारत : छठी शताब्दी बी.सी.ई. से 200 बी.सी.ई. तक

मोहनजोदड़ों के हड़प्पा क्षेत्र से सोने और चांदी के आभूषण प्राप्त हुए हैं (लगभग 3000 बी.सी.ई.)। सोने (स्वर्ण) का निर्माण थान संचय से जलोढ़ बालू द्वारा किया जाता था। कर्नाटक के मस्की की प्राचीन खादानें (लगभग सहस्त्राब्दी बी.सी.ई.) विश्व में सबसे अधिक गहरी है। हेरोडोटस भारत में सोने की खुदाई करने वाली चींटियों की बात करता है। इसका उल्लेख मारमोट की गतिविधि से किया जा सकता है। अफ़गानिस्तान में पाया जाने वाला यह एक प्रकार का क्रतक प्राणी है, जो नदी की बालू को खोद देता था जिससे बाद में निवासियों द्वारा सोना निथार लिया जाता है। पृष्ठ-तनाव का उपयोग पिघले हुए सोने को गोलाई देने के लिए किया जाता था।

उत्तर वैदिक काल के साथ उत्तर भारत में लोहे का उपयोग आरंभ हुआ। इससे पहले ऋग्वेद में 'अयस' शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ तांबा या कांसा है। बाद की अवधि में कृष्णअयस, कालअयस, श्यामअयस (काली धातु) का उपयोग संभवतः लोहे के लिए हुआ है। भारत में तांबा-कांस्य और लौह धातु विज्ञान का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ था। भारत में लोहे की दो उन्नत किस्मों का निर्माण किया गया था। इससे पता चलता है कि आविष्कारों के क्षेत्र में भारत अन्य देशों से आगे था। वुट्ज़ स्टील (इस्पात) दक्षिण भारत में 300 बी.सी.ई. में शुरू हुआ। नियंत्रित परिस्थितियों में इसे लोहे से कार्बनीकृत किया गया था। इसे दक्कन से सीरिया में निर्यात किया जाता था जहाँ इससे दमिश्क तलवारों का निर्माण किया गया जो ठोस और तेज़धार के लिए प्रसिद्ध थी। भारतीय इस्पात को ''पूरब की अद्भुत सामग्री'' कहा जाता था। रोमन इतिहासकार, क्विंटियस कर्टियस के अनुसार, महान अलेक्जेंडर को तक्षशिला के पोरस (326 बी.सी.ई.) ने ढाई टन 'वुट्ज़ स्टील' उपहार में दिया। 'वुट्ज स्टील' सोने या जवाहरात से अधिक कीमती था। वुट्ज़ स्टील में मुख्य रूप से कार्बन का उच्च अनुपात (1.0 - 1.9:) है, इस प्रकार के उच्च कार्बन मिश्र धातु का निर्माण क्रूसिबल प्रक्रम द्वारा होता है।

भारत जस्ता परिष्करण में महारत हासिल करने वाला पहला देश था। जस्ता का क्वथनांक कम होता है इसलिए इसके अयस्क को गलाते समय ही यह वाष्पीकृत हो जाता है, इस प्रकार यह गलाने के लिए सबसे कठिन धातु है। यह एक चमकदार सफेद धातु है जो तांबे के साथ मिलकर बहुमूल्य उत्कृष्ट पीतल का निर्माण करता है। छठी या पांचवी शताब्दी बी.सी.ई. राजस्थान के जावर की खानों में जस्ता उत्पादन के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। प्राचीन भारतीयों ने परिष्कृत आसवन तकनीक की मदद से जस्ता गलाने की कला में महारत हासिल की, जिसमें निचले पात्र में वाष्प को एकत्र और संघनित किया जाता था। प्राचीन ग्रंथों में भारत की प्राचीन धातुकर्म परंपरा के कई उदाहरण है। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में खानों के विभाग का उल्लेख आया है। खानों के निदेशक को विभिन्न प्रकार के धातु अयस्कों, धातुओं के परीक्षण और शुद्धिकरण, मिश्र धातु बनाने, पृथ्वी में धातु की उपस्थिति से परिचित होने, रत्नों को रंगने की कला आदि के बारे में गहन ज्ञान होना चाहिए। उसे धातुमल, क्रूसिबल, कोयला और राख की उपस्थिति से पुरानी खादान और रंग, भारीपन, मज़बूत गंध और स्वाद के साथ एक नई खादान का निरीक्षण करने में सक्षम होना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि यूरोप की औद्योगिक क्रांति से बहुत पहले ही भारत ने विभिन्न तत्वों को गलाने की कला, धातु प्रौद्योगिकी और इसके विज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल कर ली थी। यह कई नये आविष्कारों में भी आगे था।

बोध प्रश्न 2

1) प्राचीन भारत में गणित का विकास कैसे हुआ, विवेचन कीजिए।

2) दिये गए वाक्यों में सही या गलत की पहचान करें –

   क) प्राचीन भारत में पर्यावरण जागरूकता पहली प्रथम शताब्दी सी.ई. में शुरु हुई थी। ( )

   ख) भारतीय दर्शन प्रकृति के रक्षण और संरक्षण की पर्यावरणीय नैतिकता को प्रोत्साहित करता है। ( )

   ग) अशोक ने अपने अभिलेखों में पशुओं की हत्या पर पाबंदी का जिक्र किया है। ( )

   घ) प्राचीन भारत में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई की जाती थी। ( )

   ङ) भारतीयों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में सब कुछ युनानियों (ग्रीक) से सीखा। ( )

   च) भारतीय गणित में पाइथोगोरियन त्रिक को पश्चिम से उधार लिया गया था। ( )

   छ) भारतीय खगोल विज्ञान दोषपूर्ण और गलत था। ( )

   ज) महुरत, तिथि, कैलेंडर, ग्रहण और ग्रह संयोजन भारतीय खगोल विज्ञान और पंचांग-निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे। ( )

18.6 सारांश

पर्यावरण पर उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि भारतीय प्राचीन काल से पर्यावरण के संरक्षण और उसकी स्थिरता के बारे में बहुत सजग थे। भारत के प्राचीन साहित्य में *वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत* और *पुराण* शामिल हैं, ये उन उदाहरणों से परिपूर्ण हैं जो पर्यावरण के लिए सजग वातावरण को रेखांकित करते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथ जैसे *अर्थशास्त्र, शतपथ ब्राह्मण, वेद, मनुस्मृति, बृहत्-संहिता, रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी* आदि वन पारिस्थितिकी और संरक्षण की अवधारणाओं के संपोषणीय व्यवहार को दर्शाते हैं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, प्राचीन भारतीयों ने कई कलाओं में निपुणता हासिल की थी। हड़प्पा वासियों ने मोहनजोदड़ो, हड़प्पा जैसे विशाल शहरों का निर्माण किया और उपमहाद्वीप में पहली नगरीय सभ्यता की नींव रखी। उनके घर, जल निकास प्रणाली, सड़कें, अन्न भंडार, बंदरगाह, पानी के तालाब आदि उनके इंजीनियरिंग कौशल का प्रमाण हैं। आर्यभट्ट के लौह और जस्ता प्रगलन में अभूतपूर्व योगदान के कारण अनेक लोग उनकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होते रहे। अतीत में गणित, खगोल विज्ञान, भूगोल, चिकित्सा जैसे विभिन्न क्षेत्र फल-फूल रहे थे जिसमें प्राचीन भारतीयों ने बहुत योगदान दिया है। वास्तव में, यूनानियों (ग्रीक) के साथ प्राचीन भारतीय सभ्यता एकमात्र ऐसी सभ्यताएँ थीं जिसने विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर उच्च कौशल प्राप्त किया।

18.7 शब्दावली

आयुर्वेद : शाब्दिक रूप से ''दीर्घायु के लिए ज्ञान''।

हड़प्पा सभ्यता : हड़प्पा सभ्यता को सिंधु घाटी सभ्यता भी कहा जाता

है। 2600-1800 बी.सी.ई. में यह सभ्यता सिंधु.गंगा के मैदानी क्षेत्र में विकसित हुई।

धातुशोधन : यह धातुओं को उनके अयस्कों से निकालने की कला और संशोधित करने का विज्ञान है।

आसवन : एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें विभिन्न क्वथनांक वाले दो या दो से अधिक तत्वों के मिश्रण को एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है।

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) विवरण के लिए 18.2 और 18.3 देखें।

2) विवरण के लिए 18.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) विवरण के लिए 18.5.2 देखें।

2) सही या गलत

   क) गलत

   ख) सही

   ग) सही

   घ) गलत

   ङ) गलत

   च) गलत

   छ) गलत

   ज) सही

18.9 संदर्भ ग्रंथ

भट्टाचार्य, सायन (2014). फारेस्ट एंड बायोडायवर्सिटी इन एशियेंट इंडियन कल्चर : ए रिव्यू बेस्ड ऑन ओल्ड टेक्स्ट एंड आर्कियोलॉजिकल एविडेंसेस. *इंटरनेशनल लेटर्स ऑफ सोशल एंड ह्युमनिस्टिक साइंस,* 19, (2014), 35-46.

नारायणन, वसुधा (2001). वाटर, वुड एंड विज़डम : इकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम द हिंदू ट्रेडिशन. *डीयोडेलस,* खंड 130 (4), 179-206.

निपुणेज, डी.एस. और कुलकर्णी, डी.के. (2010). देव-रहाती : एन एन्शिएंट कांसेप्ट ऑफ बायोडायवर्सिटी कंजरवेशन. *एशियन एग्री-हिस्ट्री.* वॉल्यूम 14 (2), 185-196.

पांडे, अर्चना (2016). सोसाइटी एंड एनवायरनमेंट इन एशियंट इंडिया (स्टडी ऑफ हाइड्रोलॉजी). *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंस इन्वेंशन.* वॉल्यूम 5 (2), 26-31. ISSN (online) 2319-7722. www.ijhssi.org/

सत्पथी, विनोद बिहारी (अदिनांकित). *हिस्ट्री ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन इंडिया.* DDCE/History (M.A.)/SLM/Paper

तंवर, रेणु (2016). एनवायरनमेंट कंजरवेशन इन एन्शिएंट इंडिया. *आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्युमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसिस.* वाल्यूम 21(9), Ver.11, 01-04

वाहिया, मयंक (2015). इवेल्यूएटिंग द क्लेम्स ऑफ एन्शिएंट इंडियन एचीवमेंट्स इन साइंस. *करंट साइंस.* वॉल्यूम 108 (12), 25 जून 2015, 2145-48.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 19 लिंग-भेद के परिप्रेक्ष्य : प्रारंभिक भारत में स्त्रियाँ*

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लिंग-भेद के इतिहास को समझने के स्रोत

19.3 लिंग-भेद पर इतिहास लेखन

19.4 प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति

19.5 लिंग-भेद के अध्ययनों का महत्व

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.9 संदर्भ ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आप इनके बारे में सीखेंगे :

- इतिहास को समझने और इसका विश्लेषण करने के लिए एक उपकरण के रूप में लिंग भेद;
- प्रारंभिक भारत के संदर्भ में लिंग-भेदी इतिहास लेखन;
- लिंग-भेद आधारित इतिहास को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत; और
- प्रारंभिक भारत में महिलाओं की झलक।

19.1 प्रस्तावना

चूंकि अधिकांश प्रारंभिक विद्वान, शोधकर्ता और इतिहासकार पुरुष थे, इसलिए समाज के अनेक पहलुओं को इतिहास की किताबों में जगह नहीं मिली। उदाहरण के तौर पर, बच्चे का जन्म, मासिक धर्म, महिलाओं के कार्य, लिंग-भेद से परे के लोग (ट्रांसजेंडर) पारिवारिक जीवन आदि का अधिक उल्लेख नहीं किया गया है। अतीत की एक समग्र तस्वीर प्रस्तुत करने के बजाए कुछ चुनिंदा पहलु जैसे कि राज्य-व्यवस्था और पुरुषों की अलग-अलग भूमिकाएं इतिहास लेखन के केन्द्र बिन्दु बन गए। महिलाएं, इन किताबों के अध्यामों में एक हासिये तक सीमित थी जहाँ एक दो अनुच्छेद महिलाओं की स्थिति और ओहदे पर समर्पित थे। यहाँ तक कि इन अनुच्छेदों के विवरण भी शायद ही एक-दूसरे से अलग थे। इससे ऐसा लगता था कि जैसे इतिहास (और उसी तरह समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और सभी संस्कृति) पुरुषों का था, जबकि महिलाओं का उल्लेख केवल अलग से एक छोटी गतिहीन इकाई के रूप में किया जाता था। बेशक, कुछ अपवाद भी थे, लेकिन ये हालांकि दुर्लभ थे। इस अभ्यास को अब ठीक किया जा रहा है और महिलाओं की भूमिका और उपस्थिति को ऐतिहासिक सवालों के सभी भागों में पढ़ा जा रहा है।

* उपासना धनकड़, फाउंडर एन्ड सी. ई. ओ. ऑफ मेलोड़ी पाइपर सर्विसिस प्राइवेट लिमिटिड गुड़गाँव।

इस इकाई में हम प्रारंभिक भारतीय इतिहास के अध्ययन में लैंगिंक परिप्रेक्ष्य के उपयोग और विकास के बारे में और अधिक जानेंगे। लैंगिक इतिहास महिलाओं, पुरुषों और अन्य लिंग आधारित पहचानों को एक ऐतिहासिक संदर्भ में देखता है और सांस्कृतिक विचारों और संस्थाओं को प्रभावित करने के तरीके की व्याख्या करते हुए यह समझने की कोशिश भी करता है कि इतिहास किस प्रकार लैंगिक भूमिकाओं से प्रभावित होता है।

19.2 लिंग-भेद के इतिहास को समझने के स्रोत

स्रोत इतिहास लेखन के आधार हैं। पूर्व-ऐतिहासिक सरल औजारों से लेकर दुर्बोध ग्रन्थों तक, सब कुछ का उपयोग इतिहास में महिलाओं के जीवन और भूमिकाओं को समझने के लिए किया जा सकता है। स्रोतों में स्त्रियों की उपस्थिति के साथ-साथ उनकी गैर-मौजूदगी पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है और विवेचन और तर्क करके ही कोई सिद्धांत बनाया जा सकता है। महिलाओं के जीवन से संबंधित कुछ वस्तुएँ या स्त्री सिद्धान्त के विचार का चित्रण, इनका प्रमुख महत्व है। इसमें यह सब शामिल होंगी – स्त्रियों की लघुमुर्त्तियों, कला वस्तुएं, महिलाओं द्वारा लिखित और संकलित ग्रन्थ, महिलाओं द्वारा बनाए गए स्मारक या उनके लिए बनाए गए स्मारक, उनके जीवन से संबंधित वस्तुएँ, महिलाओं की सांस्कृतिक भूमिका के आधार पर उनसे जुड़ी वस्तुएँ; और यह इन सब वस्तुओं तक भी सीमित नहीं है।

यह महत्वपूर्ण है कि स्रोतों को राजनीतिक संरचनाओं, सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक गतिविधियों और उस समय के अन्य विभिन्न विचारों और संस्थाओं के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। इसके अलावा, हमें स्थानीक संदर्भ और शब्दार्थ परिवर्तन, जो एक ग्रन्थ में समय के साथ आते हैं, के प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है। ग्रन्थों की सीमाएं हैं। लैंगिक इतिहास को समझने के लिए इनका आलोचनात्मक अध्ययन करने की ज़रूरत है। उमा चक्रवर्ती द्वारा यह उचित ही संकेत दिया गया है कि प्रारंभिक चरण में लिखा गया अधिकांश लैंगिक इतिहास 'ऊपर से एक पक्षपात पूर्ण नजरिया' था। इसने चुनिदां पाठय स्रोतों का अनुकरण किया और महिलाओं की संबंधपरक पहचान पर ध्यान केन्द्रित किया, हालांकि, कुछ अपवाद थे।

मानव विज्ञान, कला इतिहास, नृवंश विज्ञान, साहित्यिक अध्ययन और अन्य विषयों के स्रोतों और विधियों को शामिल करने वाले अर्न्त-अनुशासनात्मक शोध समग्र इतिहास और लैंगिक भूमिकाओं को उजागर कर सकते हैं।

19.3 लिंग-भेद पर इतिहास लेखन

बिट्रिश औपनिवेशिक शासकों द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को कलंकित करने के लिए प्रचारित अनेक वृत्तांतों के बीच, भारतीय महिलाओं की स्थिति एक केन्द्रीय बिन्दु बन गई। महिलाओं के जीवन को दयनीय बनाने वाली विभिन्न सामाजिक बुराईयों को इंगित किया गया और 'सुधारों' को शुरू करने का भी प्रयास किया गया। सती, बाल-विवाह, अधिरोपित विधवापन, बहु-विवाह, दहेज, शैक्षणिक और आर्थिक असमानता, पर्दा (*घूघंट*) और कई अन्य प्रथाओं ने औपनिवेशिक काल के दौरान महिलाओं के जीवन को कठिन और दयनीय बना दिया था। कुछ प्रथाएं उच्च सामाजिक और आर्थिक परिवारों की महिलाओं को प्रभावित करती थी जबकि अन्य ने गरीब महिलाओं की दुर्गति की। इन मुद्दों को हल करने के लिए 19वीं शताब्दी में कई सामाजिक सुधार आन्दोलन शुरू किये गये थे और भारतीय सुधारकों और बिट्रिश अधिकारियों के साथ-साथ इनमें अन्य यूरोप के लोगों द्वारा योगदान

दिया गया था। महिलाओं की स्थिति के सुधार की दिशा में ये प्रयास एक महत्वपूर्ण और स्वागत योग्य बदलाव थे।

महिलाओं की स्थिति को राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय चरित्र के संलाप में एक आधार-भूत स्थान प्राप्त हुआ। महिलाओं की स्थिति का विवादास्पद मुद्दा विविध प्रकार के इतिहासकारों के लिए एक प्रतीकात्मक युद्ध का मैदान बन गया। उनका या तो राष्ट्रवादियों द्वारा बचाव किया जाना था या उन्हें ब्रिटिश या भारतीय सुधारकों द्वारा सुधार किया जाना था। *भारत में महिलाओं को एक समरूप श्रेणी के रूप में माना जाने लगा और उनके बारे में अत्यधिक सामान्यीकरण प्रतिमान बन गया*। जबकि भारत में कई समुदायों ने विधवा पुर्नविवाह का अभ्यास किया था और सती प्रथा का अभ्यास नहीं किया और जबकि कुछ समुदायों ने विवाह-विच्छेद या प्रथक्कन का अभ्यास किया। भारतीय स्त्री की छवि, जिसको स्त्री, पत्नी और विधवा के रूप में नियंत्रित किया गया था वह छवि इतिहास लेखन में एक प्रमुख विषय बन गई।

दूसरे, *पश्चिमी दृष्टि को गैर-पश्चिमी समाजों को समझने के लिए इस्तेमाल किया गया इसलिए व्याख्याएँ संदर्भ से दूर हटकर थी*। उदाहरण के लिए, *स्त्री-धन* को दहेज के समान माना गया था और महिलाओं द्वारा इसके उपयोग और स्वामित्व के प्रावधानों पर बहुत कम ध्यान दिया गया था। परिवार के आभुषणों की बिक्री (स्त्री-धन के मुख्य घटकों में से एक) से जुड़े बड़े सामाजिक कलंक पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसी प्रकार, महिलाओं की संपति को हड़पे जाने पर प्राचीन ग्रन्थों द्वारा सूचीबद्ध दंडात्मक प्रावधानों पर भी ध्यान नहीं दिया गया। स्वतन्त्रता से बहुत पहले पश्चिमी विद्वानों द्वारा विशेष खंडों में धर्म और समाज पर लिखना या हिन्दु कानून में महिलाओं की स्थिति का आंकलन करना शुरू कर दिया था, हालाँकि उनमें से अनेकों ने एक बार भी भारत का दौरा नहीं किया था। इस बिन्दु को स्पष्ट करने के लिए, आइए हम *मनुस्मृति* का उदाहरण ले। यह ग्रन्थ धर्मशास्त्र परंपरा से आता है और स्पष्ट रूप से कहता है कि इसकी व्याख्या मीमांसा के संदर्भ में की जानी जाहिए। और फिर भी, इस तरह का अभ्यास कभी नहीं किया गया था। ग्रन्थ के चुनिंदा छंदों का उपयोग विद्वानों और शोधकत्ताओं द्वारा अपनी पंसद के अनुसार एक विशेष छवि बनाने के लिए किया गया था।

तीसरा, *एकरेखीय व्याख्याओं ने न केवल भारतीय महिलाओं की एक अखंड (समरूप) तस्वीर बनाई, बल्कि इस छवि को अतीत की सदियों और सहस्त्राब्दियों तक पीछे खींच दिया*। जहाँ तक कि इतिहास के स्रोत कुछ ही थे और इतिहास का विषय अपने आरंभिक अवस्था में था, तब भी भारत के इतिहास और संस्कृति को समझने के बारे में लम्बे-लम्बे दावे किये गये थे। केवल कुछ ही ग्रन्थों का अनुवाद किया गया था, और उन्हें पूरा इतिहास को समझने का आधार बनाया जा रहा था। महिलाओं पर रचनाएँ चयनात्मक पाठ्य सामग्री पर आधारित थी। भारतीय महिलाओं का इतिहास होने का दावा करने वाली एक अकेली अपूर्व और एक समान विलक्षण कथा समस्यात्मक है।

एक बड़े संदर्भ में, मानव जाति के विकास पर शोध दिखाता है कि लिंग-तटस्थ शब्दावली का उपयोग नहीं किया गया था, उदाहरण के लिए, 'मनुष्यता' (Human kind) के स्थान पर 'आदमजात' (Mankind) शब्द का उपयोग, संग्रहण के स्थान पर आखेट को विशेष मानना, एक इस तरह की मानसिकता को दर्शाता है जो पुरुष को अस्तित्व के केन्द्र में रखती है। हालाँकि अध्ययन दिखाते हैं कि शिकार आहार का केवल 35 प्रतिशत भाग होता था, जबकि फलों और अन्य खाद्य पदार्थों का संग्रहण बाकी प्रमुख भाग की आपूर्ति करता था। खाद्य संसाधनों का संग्रहण सामान्यतः महिलाओं द्वारा किया जाता था। चूंकि संग्रहण एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी, जिसका महत्व शिकार के लिए आखेट से अधिक था, इसलिए यह

महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को इंगित कर सकता है। पुरुष पूर्वाग्रह इतना मजबूत था कि बिना किसी वैधानिक या प्रमाण के आनुमानिक परिकल्पनाएँ पेश की गई। उदाहरण के लिए, डेविड़ क्लार्क ने ग्लेस्टोनबरी की बस्तियों में प्रमुख और गौण घरों को क्रमशः पुरुषों और महिलाओं के साथ सम्बन्धित करके देखा, यह केवल इस धारणा पर आधारित था कि महिलाएं केवल घरेलू दैनिक कामकाज तक ही सीमित थी।

अब यह महसूस किया जाने लगा है कि न केवल पुरा-पाषाण आखेट में बल्कि 'नव-पाषाण क्रांन्ति' में भी महिलाओं का बहुत योगदान था। जबकि प्रागैतिहासिक काल के लैंगिक अध्ययन बहुत कम हैं, हमारे पास आद्य-ऐतिहासिक चरण से मिलने वाली भौतिक सामग्री अधिक है। हड़प्पा सभ्यता के बारे में लैंगिक समझ का निर्माण किया जा रहा है और इस संबंध में विभिन्न पुरातात्विक अवशेषों का अध्ययन किया गया है। विभिन्न स्थलों से महिला लघुमूत्तियों, गर्भवती महिलाओं की मूत्तियों, नाचने वाली लड़की की मूर्ति, विभिन्न प्रकार के आभूषण और व्यक्तिगत सामान जिनकी खोज की गई है, वह महिला और पुरुषों के सार्वजनिक और निजी-जीवन पर उपयोगी अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक युवती की मूर्ति को बाद के समय में देवदासियों की संस्था के बारे में जानकारी होने के आधार पर 'डासिंग गर्ल' कहा गया है। इस तरह के पश्चवर्ति स्पष्टीकरण समस्याग्रस्त हैं। दीक्षा भारद्वाज ने भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम भागों से प्राप्त एक विशाल और विविध परिमाण में प्राप्त महिला लघु मूत्तियों के आधार पर, एक विस्तष्त्व इतिहास जिस पर काम किया जा सकता था उसकी उपेक्षा के बारे में प्रासंगिक सवाल उठाये हैं। उनके विस्तृत प्रसंगों पर ध्यान देते हुए उन्होंने उर्वरता और प्रजनन को प्रच्छन द्वेष-भाव या बिलैयान्पन से जोड़ा है। वह श्रम साध्य तरीके से उन विभिन्न प्रक्रियाओं और उद्देश्य को सामने लाती हैं जिन्हें बेहतर तरीके से समझा जा सकता है अगर एक लैंगिक नजरिये से उनका विश्लेषण किया जाए। अब तक इन लघु-मूत्तियों को सरलीकृत तरीके से उर्वरता और दिव्यता से जोड़ा गया था।

टेराकोटा (पकी मिट्टी की मूर्तियां) की महिला लघु आकृतियों की एक विस्तृत विविधता है जो पूर्व हड़प्पा काल से ही विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई है। इन स्त्री आकृतियों में बच्चे को दूध पिलाते, बर्तन पकड़े हुए, आटा गूथनें, शिशुओं को पालते, ड्रम जैसी वस्तुएँ ले जाते हुए, बोर्ड गेम के लिए बैठे हुए, *स्टिटोपेजिया* (कुल्हों और अन्य अंगों पर वसा के जमाव के साथ) पुष्प के साथ शीर्ष परिधान के साथ और अनेक अन्य रूपों में आकृतियों मिली हैं। यहाँ तक कि गर्भवती महिलाओं की लघुमूर्त्तियों भी काफ़ी आम हैं। हालाँकि, इनमें से अधिकांश को बिना आलोचनात्मक मूल्याँकन के प्रजनन, धार्मिकता और प्रजनन विचारों से जुड़ा हुआ मानकर मातृदेवी का निरूपण मान लिया गया है। जहाँ उनमें से कुछ मन्नत या व्रत की वस्तुएँ थी, अन्य को खिलौने या अन्य उपयोगिता की वस्तुएँ माना जाता है।

महिला रूप पर ध्यान रखना इतना घिसा-पिटा रहा है कि महिलाओं को केवल घर, चुल्हा, प्रजनन, लैंगिकता और दिव्यता के साथ जोड़ा गया है। यहाँ तक कि कभी-कभी कल्पित स्त्री भूमिकाओं में पुरुष आकृतियों को भी महिला लघु रूप में वर्गीकृत किया जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) प्रारंभिक भारत में लिंग-भेद को समझने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत क्या हैं?

.....

.....

.....

2) ब्रिटिश औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा महिलाओं पर किये गये अध्ययनों के क्या परिणाम थे?

.....

.....

.....

.....

.....

19.4 प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति

भारतीय उप-महाद्वीप में पहली साहित्यिक परंपरा वैदिक ग्रन्थ संग्रह (और दुनियाँ में सबसे प्राचीन) की है। चार संहिताओं से लेकर *उपनिषदों* तक, हमें विभिन्न भूमिकाओं में महिलाओं के अनेक दिलचस्प संदर्भ मिलते हैं। इन महिलाओं में से कुछ ने आज की सांस्कृतिक विरासत पर अपनी छाप छोड़ी है और उन्हें विभिन्न अनुष्ठानों और सामाजिक संदर्भों में याद किया जाता है। उनके नाम, कहानियाँ, कुछ अत्यधिक श्रद्वेय स्तुतियों और कुछ अन्य दिलचस्प पहलुओं का उल्लेख वैदिक कोष में किया गया है। महिलाओं को ना केवल सामाजिक भूमिकाओं के सन्दर्भ में बल्कि अनेक महत्वपूर्ण स्तुतियों के प्रर्वतकों के रूप में जाना जाता है। वैदिक कोष में न केवल स्त्रियोचित और पुर्ल्लिंग बल्कि विभिन्न नपुंसक पात्रों और श्रेणियों की पहचान की जा सकती है।

वैदिक साहित्य को प्रारंभिक वैदिक और उत्तर वैदिक के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ऋग्वेदिक समाज और राजनैतिक व्यवस्था जीवन से परिपूर्ण दिखाई पड़ती है और कृषि-चरागाही अर्थव्यवस्था घनिष्ट नातेदारी सम्बन्धों पर आधारित थी। महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों ने भी समाज, अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था में भाग लिया। गायत्री मन्त्र सहित कुछ सबसे श्रद्वेय स्तुतियाँ का श्रेय महिलाओं को दिया गया है। विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं को देवियों के रूप में चित्रित किया गया है और उन्हें प्रार्थनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। जबकि संख्यात्मक विश्लेषण में इन्द्र, अग्नि, वरूण और अन्य कुछ देवताओं की प्रधानता विशिष्ट रूप से दर्शाई गई है, लेकिन देवियों की शक्ति और महत्ता समान रूप से सुस्थापित हैं।

न केवल दिव्यता के संदर्भ में, बल्कि लौकिक दुनियाँ के विवरणों में भी महिलाओं को अपने जीवन के बारे में स्वयं के चुनाव करने और निर्णय लेने वाले निकायों में हिस्सेदारी करते हुए देखते हैं। महिलाओं ने तीनों वैदिक/सामाजिक, राजनैतिक सभाओं में भागीदारी की अर्थात् *सभा, स्मीति* और *विधाता* में। उनकी शिक्षा तक पहुँच थी और वे ज्ञान सर्जन में भी सलंग्न थी। वे विवाह के साथ या उसके बिना *ब्रह्मवादिनी* होने का चुनाव कर सकती थी। इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि वे केवल घर और चुल्हे तक सीमित थी।

इतिहासकार उमा चक्रवर्ती ने प्राचीन भारत में पितृ-सत्ता के अपने वर्णन में जाति को आवश्यक मानकर पितृ-सत्ता के चिन्हों के लिए प्रारंभिक भारतीय इतिहास की जाँच पड़ताल की है। वह जिस पारिभाषिक शब्द का उपयोग करती हैं, वह हैः 'ब्राह्मणवादी पितृ-सत्ता'। *धर्म-शास्त्रों* (*मनुस्मृति* सहित) जैसे प्राचीन ग्रन्थों, साथ ही साथ बाद के बौद्ध स्रोतों को देखते हुए, चक्रवर्ती लगभग 1000 बी. सी. ई. से प्रारंभिक भारतीय समाज का पुनर्निर्माण करती हैं। सामाजिक संगठन को इन ग्रन्थों के माध्यम से, यह दिखाने के लिए कि पुरुषों द्वारा महिलाओं का जाति और वर्ग पदानुक्रम और अन्तरों के निर्माण के माध्यम से कैसे

नियन्त्रण किया गया था, उस प्रक्रिया को पुनर्निर्मित किया है। स्त्रियाँ पुरुषों के अधीनस्थ थी। उनके व्यवहार, प्रजनन और लैंगिकता को पुरुषों द्वारा नियंत्रित और संरक्षित किया गया था। इसके अलावा, महिलाओं को पुरुषों की निजी संपत्ति के रूप में देखा जाता था, जिनका अपना कोई अस्तित्व नहीं था। पुत्रों की मनोकामना की जाती थी और पुत्र के जन्म का उत्सव मनाया जाता था। ब्राह्मणवादी ग्रन्थों में बताया गया है कि महिलाओं की आर्थिक संसाधनों तक कोई पहुँच नहीं थी। एक स्त्री को केवल प्रजनन में उसकी भूमिका के लिए महत्व दिया गया था।

उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि *मनुस्मृति* जैसे ग्रन्थ महिलाओं की इस तरह की तस्वीर चित्रित करते हैं जिनके पास कोई अधिकार नहीं था और जो अधीनता की स्थिति में थी। टी. एस. रूक्मणी ने हालाँकि यह समझने का प्रयास किया की क्या महिलाओं का कोई अभिकर्तत्व (एजेंसी) प्रारंभिक भारत में था या नहीं? उनके शोध कार्य ने अनेक दिलचस्प विवरणों को उजागर किया है। लेखिका इस तथ्य को स्वीकार करती हैं कि यद्यपि पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था ने महिलाओं को क्षति पहुंचाई, लेकिन ऐसे उदाहरण है जिनमें महिलाओं ने अपनी स्वतंत्रता जाहिर करने के लिए अपना स्थान बनाया। वह बताती हैं कि यद्यपि *कल्पसूत्र* (*श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र, गृह सूत्र*) जैसे ग्रन्थ धर्म की विचारधारा के इर्द-गिर्द घुमते थे और वैकल्पिक विचारों को व्यक्त करने के लिए ज्यादा जगह नहीं थी, फिर भी ये रचनाएं बदली हुई परिस्थितियों को दर्शाते हुए, विचारों को व्यक्त करने के लिए कुछ अपमार्ग तलाशे हैं। उदाहरण के लिए, *आपस्तम्ब धर्मसूत्र* में एक कथन है कि व्यक्ति को अन्तिम संस्कार में स्त्रियों की राय का अनुगमन करना चाहिए। स्टेफनी जैमिसन का मानना है कि आतिथ्य और विनिमय संबंधों में महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह कहती हैं कि सोम की बलि का सफलतापूर्व समापन होने में पत्नी की स्वीकृति महत्वपूर्ण थी। एक अन्य अध्ययन में यह दिखाया गया है कि महिलाओं को यह निर्णय लेने का अधिकार था कि एक बलि में ब्रह्मचारिणी या सन्यासिन को भिक्षा में क्या दिया जाए। इन परिस्थितियों में उसे क्या करना है, यह बताने का पुरुषों को कोई अधिकार नहीं था।

वैदिक समाज वह था जिसमें विवाह का अत्यधिक महत्व था। इस तरह के संदर्भो में, यदि कोई महिला विवाह नहीं करना चाहती थी, तो स्वभाव के विरूद्ध जाकर अविवाहित रहने का निर्णय करना उसके स्वयं के चुनाव को इंगित करेगा। यहाँ गार्गी का उल्लेख हो सकता है। वह स्तुतियों की रचयिता थी और उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता है (रूक्मणी, 2009)।

यह शब्द उस महिला पर लागू होता है, जो स्तुतियों की रचयिता थी और जिसने अविवाहित रहने का चुनाव करके स्वयं को शिक्षा के लक्ष्य के लिए समर्पित किया। इसी तरह, मैत्रेयी के मामले में, वह जानबूझवार *उपनिषदों* की विद्या में शिक्षित होने का चयन करती है और याज्ञवलक्य उसे अपने चयन के विरूद्ध सलाह नहीं देते। ऋग्वेद 111, 55.16 में कहा गया है कि विज्ञ और शिक्षित पुत्रियों को शिक्षित वर के साथ विवाह करना चाहिए। यह दर्शाता है कि विवाह में स्त्रियों की अपनी राय मानी जाती थी। *ऋग्वेद* में एक मन्त्र है जिसके सस्वर पाठ से विज्ञ पुत्री का जन्म सुनिश्चित होता है।

आल्तेकर सीता यज्ञ, रूद्र यज्ञ आदि का उल्लेख करते हैं जो विशेष रूप से महिलाओं द्वारा किये जाते थे। कुछ महिलाओं को उनकी असाधारण सामर्थ्य के लिए जाना जाता था। उदाहरण के लिए *ऋग्वेद* संहिता में हमें अपाला, घोषा, लोपमुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, शचि-विशुवारा अत्रि, सुलभ और अन्य महिलाओं का उल्लेख मिलता है। महिलाओं की न केवल स्वतंत्र व्यक्तियों के रूप से प्रशंसा की गई है बल्कि उनके जन्म संबंधी या वैवाहिक परिवारों के प्रति उनके योगदान के संदर्भ में भी।

उत्तर वैदिक साहित्य समाज और राजनैतिक व्यवस्था में हो रहे परिवर्तन के साथ एक राज्य समाज की तरफ़ प्रगति को दिखाता है। अब मुखिया को *गोपति* के स्थान पर *भू-पति* कहा जाने लगा था। हालाँकि उल्लेखित बारह महत्वपूर्ण पदों (रतनियों) में प्रमुख रानी महिषी विशेष स्थान रखती हैं। मुख्य रानी का महत्व महाकाव्यों, *अर्थशास्त्र* और यहाँ तक कि प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के सिक्कों और अभिलेखों के अनेक संदर्भों को देखने से पता लगता है, कायम रहा। अन्य संहिताओं में ज्ञानी स्त्री जैसे *ऋषिका* का सन्दर्भ मिलता है। पत्नी को सहधर्मिनी भी कहा जाता है। *ब्राह्मण* या ऐसे ग्रन्थ जो यज्ञ के आयोजन से संबंधित हैं (वैदिक अनुष्ठान), यह उल्लेख करते हैं कि एक व्यक्ति द्वारा अनुष्ठान करने में सक्षम होने के लिए पत्नी के साथ की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, *ऐतरेय ब्राह्मण* पत्नी को पति की आध्यात्मिक पूर्णता के लिए आवश्यक मानता है। हालाँकि, कुछ समस्याजनक संस्थाओं का भी उल्लेख है। उमा चक्रवर्ती ने वैदिक दासियों (महिला सेवक/दास) की स्थिति की ओर संकेत किया जिनको अनेकों उदाहरणों में संदर्भित किया जाता है। वे दान (भेंट/उपहार) और दक्षिणा (शुल्क) की वस्तुएँ थी। क्या महिलाओं को संपत्ति के रूप में संपत्ति की एक वस्तु माना जाता था या नहीं, यह पासे के खेल में द्रौपदी दाँव पर लगाने के उदाहरण के सन्दर्भ में, आगे शोध का विषय है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि वैदिक काल के बाद से महिलाओं की स्थिति बिगड़ती चली गई। हालाँकि, पाणिनी की *अष्टाध्यायी* और उसके बाद के व्याकरणिक साहित्य में महिला आचार्यों और उपाध्यायों की प्रशंसा की गई है। इस प्रकार, एक *ब्रह्मवादिनी* वैदिक काल के बाद भी अहम् भूमिका निभाती रही है। *रामायण, महाभारत* और यहाँ तक कि *पुराणों* ने भी *ब्रह्मवादिनी* को जीवित रखा। यहाँ अनुसूया, कुन्ती, दमयन्ती, द्रौपदी, गांधारी, रूकमणी का जिक्र हो सकता है जिन्होंने कवियों की कल्पना को जीवित रखा। ग्रन्थ दिखाते है कि कुनी-गार्गा की पुत्री ने विवाह से इन्कार कर दिया क्योंकि उसने किसी को अपने योग्य नहीं पाया (शाल्य पर्व 52. 3-25)।

महाकाव्य में उन महिलाओं का भी उल्लेख किया गया है जिनसे प्रमुख घटनाओं के सम्बन्ध में सलाह माँगी गई थी। उदाहरण के लिए, तेरह साल के निर्वासन के बाद, अपने भाग की बहाली के सम्बन्ध में भविष्य की कार्यवाही पर विवाद में पांडव कृष्ण के साथ द्रौपदी से उसके विचार पूछते हैं। इसी तरह, जब कृष्ण पांडवों के मामले की पैरवी करने कौरव के दरबार में जाते हैं, तो गांधारी को अपने पुत्रों को समझाने के लिए बुलाया जाता है।

चूंकि सन्यास लेना एक स्त्री के लिए अतिक्रमण की क्रिया थी, ऐसे उदाहरणों के माध्यम से हम महिलाओं की क्रियाशीलता का पता लगा सकते हैं। *रामायण* में शबरी जो ऋषि मंतग की शिष्या थी और जिनकी कुटी पम्पा नदी के किनारे थी, ऐसी ही एक सन्यासिन थी। *स्मृति* साहित्य और *अर्थशास्त्र* में भी ऐसी महिलाओं का उल्लेख मिलता है। महिलाओं को सन्यास की दीक्षा लेने के खिलाफ कौटिल्य का निषेध केवल तभी समझ में आता है जब महिलाएँ सन्यास की दीक्षा ले रही थी। कौटिल्य राजा को जासूस के रूप में महिला परिव्राजकों को रोजगार देने की सलाह देता है। मैगस्थनीज़ उन महिलाओं का उल्लेख करता है जो अपने पति के साथ वन की ओर जाती थी, संभवतः वह वानप्रस्थ अवस्था का जिक्र करता है।

उत्तर वैदिक काल में साहित्य की एक ओर श्रेणी जिनको शास्त्र कहा जाता था, जिसमें *सूत्र* (सूक्ति) शामिल हैं और *स्मृति* ग्रन्थ (जिसे याद किया जाता है), महत्वपूर्ण हो जाते हैं। ये पाठ्य परंपरायें जीवन के चार लक्ष्यों से संबंधित अनेक विषयों से संबंधित हैं। ये चार लक्ष्य पुरुषार्थ (धर्म-कर्म, काम-मोक्ष) हैं। इन सब ग्रन्थों में हमें महिला और पुरुष दोनों के लिए बहुत उदार मूल्य और स्वतंत्रता मिलती है।

एक परिवार की स्थापना को पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं के लिए भी एक आदर्श के रूप में देखा जाता है (हालांकि शिक्षा के लिए तपश्चर्या की दोनों के लिए समान रूप से प्रशंसा की जाती है)। उदाहरण के लिए, *आपस्तम्ब सूत्र* यह बताता है कि एक अविवाहित पुरुष के द्वारा किये गये अनुष्ठानों से देवता खुश नहीं होते हैं। इसी तरह, *मनुस्मृति* में यह प्रावधान है कि यौन-आरंभ के तीन साल बाद तक लड़की इन्तजार करेगी और उस समय के बाद वह अपने लिए एक समान सामाजिक स्थिति का पति ढूंढ सकती है। यदि कोई अविवाहित महिला स्वयं अपना पति ढूंढ लेती है, तो उसे कोई पाप नहीं लगता है और ना ही उस पुरुष को जिसे उसने ढूंढा है (*मनुस्मृति* IXI 190-91)। इस प्रकार, हम देखते हैं कि महिलाओं को विवाह के मामलों में चुनाव की स्वतंत्रता थी। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि अविवाहित पुत्रियों की देखरेख पिता द्वारा की जानी थी। वास्तव में, पुत्री को अत्यन्त स्नेह की वस्तु कहा जाता है (*मनुस्मृति* IV 185)। अगर एक कन्या अपने माता-पिता को खो दे, तो उसकी आर्थिक हितों की अच्छी तरह से देखभाल की जाती थी। यह प्रावधान रखा गया कि अपनी सम्पत्ति के भाग में से उसके भाईयों द्वारा व्यक्तिगत तौर पर अविवाहित लड़कियों को प्रत्येक के हिस्से से एक चौथाई दिया जाएगा। जो देने के लिए तैयार नहीं होंगे उन्हें जाति से बहिष्कृत माना जाएगा (*मनुस्मृति* IX 118)।

महिलाओं के प्रति समकालीन दृष्टिकोण को परिभाषित करने के सम्बन्ध में, *आपस्तम्ब सूत्र* ने निर्धारित किया कि जब वह मार्ग पर चल रही हो तब सभी को एक महिला के लिए रास्ता बनाना चाहिए। बाद के *धर्म-शास्त्रों* में भी इसी तरह के कथन है। *याज्ञवलक्य स्मृति* में कहा गया है कि 'महिलाएँ पृथ्वी पर सभी दिव्य गुणों का मूर्त्त रूप है' हालाँकि, कई तरह के प्रावधान हैं जो समस्यामूलक लगते हैं। एक तरफ़ हमारे पास स्त्रियोचित (दिव्य और सांसारिक) और उनके द्वारा निभाई जा रही महत्वपूर्ण भूमिकाओं के प्रति श्रद्धा-भाव है, दूसरी तरफ़ इस तरह के संदेह युक्त प्रावधान हैं कि उन्हें अनुशासित करने के लिए उनकी पिटाई या परित्याग करने का अधिकार दिया जाता था।

वैदिक काल के बाद से छठी शताब्दी बी. सी. ई. के उपरांत महिलाओं के पर्याप्त चित्रण के साथ साहित्यिक परंपराओं के अनेक संदर्भ है। शास्त्रीय संस्कृत, पाली, अर्द्धमगधी और अन्य प्राकृत भाषाओं की इस चरण से एक समृद्ध पाठ्य परंपरा है। भाषाओं की विविधता के साथ-साथ बौद्धिक परंपराओं की विविधता भी दिखाई पड़ती है। न केवल मौखिक परम्पराएँ जारी रहती हैं, बल्कि विभिन्न पुरातात्विक अवशेष भी बरामद किये गये हैं। दिलचस्प बात यह है कि हमारे पास साहित्य का एक पूरा संग्रह है जिसका सम्बन्ध पूरी तरह से उन महिलाओं के साथ बताया गया है जो बौद्ध भिक्षुणी बन गई थी। इन्हें *थेरीगाथा* के रूप में संदर्भित किया जाता है अर्थात् अग्रज भिखुनियों के गीत (बौद्ध महिलाएँ जो संघ में शामिल हुई)।

अर्थशास्त्र हमें उन महिलाओं के बारे में जानकारी देता है जो विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में संलग्न थी। वे कुशल और अकुशल दोनों प्रकार की श्रम शक्ति का भाग थी। वे पेशेवर के साथ-साथ गैर-पेशेवर रोजगार में भी थी। उनके कुछ व्यवसाय उनके लिंग से संबंधित थे, जबकि अन्य नहीं थे। महिलाएँ राजकीय कर्मचारियों के साथ-साथ स्वतन्त्र कामकाजी महिलाएँ भी थी। इसी तरह, उनमें से कुछ उन गतिविधियों में लगी थी, जो हालाँकि उनकी जैविक संरचना पर निर्भर नहीं थी, लेकिन फिर भी उन्हें महिलाओं के क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत किया जाता था जैसे घरेलू सेवाएँ। उनमें से कुछ वास्तविक राजकीय कर्मचारी थी, जबकि कुछ अन्य के राज्य के साथ समझौते के तौर पर संबंध थे। उदाहरण के लिए, महिलाएँ राजकीय रोजगार में अंगरक्षक और जासूसों के रूप में कार्यरत थी। जयसवाल सुझाव देते हैं कि शायद ये महिलाएँ भील या कीरट जन-जाति से आई होगीं। महिला जासूसों को ना केवल जानकारी इकट्ठा करने और उसे उचित स्रोत तक पहुँचाने के

लिए रखा जाता था, बल्कि हत्याओं को अंजाम देने के लिए भी। हालाँकि ग्रन्थ पर गंभीरता से नज़र डालने से पता चलता है कि विभिन्न उद्देश्यों के लिए विभिन्न महिला जासूसों को इस्तेमाल किया जाता था। अन्य के अलावा जो महिलाएँ कलाओं में दक्ष थी उन्हें उनके घरों के अन्दर रहने वाले जासूसों के रूप में काम दिया जाता था (कौटिल्य *अर्थशास्त्र* I.12.21)। अन्य को हत्यारों के रूप में काम करना पड़ता था (कौटिल्य *अर्थ शास्त्र* V.19, XII.5.48)। कुछ को लालची शत्रुओं को मुग्ध करने के लिए युवा और सुन्दर विधवाओं की भूमिका दी जाती थी (कौटिल्य *अर्थशास्त्र,* XIII.2.42)। महिला दासियां शाही प्रतिष्ठान और आम परिवारों में कार्यदल का एक महत्वपूर्ण भाग बनी। शाही प्रतिष्ठान में प्रमाणित ईमानदार महिला दासियों को स्नान परिचारक, बाल धोने वाली, बिस्तर तैयार करने वाली, धोबिन और माला बनाने वाली के रूप में काम करने वाले कर्मचारियों के निरक्षण के लिए रखा जाता था (कौटिल्य *अर्थशास्त्र* I.21.13)। इसके अलावा उन्हें कपड़े, पुष्प और अन्य श्रृंगार प्रसाधन पहले स्वयं अपनी आँखों, छाती और बाजुओं में धारण करके उन्हें पेश करना होता था (कौटिल्य *अर्थशास्त्र* XXI.14-15)। इस प्रकार, वे न केवल व्यक्तिगत अनुचर के रूप में काम कर रही थी बल्कि सुरक्षा जाँच के लिए भी काम कर रही थी।

हमारे पास विभिन्न बौद्ध और जैन परम्पराएँ भी हैं जो हमें उस समय के विचारों और संस्थाओं की कुछ झलक देती हैं। रूढ़िवादी (वैदिक और ब्राह्मणवादी) और विधर्मी निर्देशात्मक परंम्परा के अलावा हमारे पास अनेक लोकप्रिय ग्रन्थ जैसे संस्कृत में महाकाव्य और पाली में *जातक* भी हैं। यहाँ तक कि प्राकृत भाषा में भी अनेक वृतान्त और काव्य रचनाएँ हैं। बौद्ध भिक्षुणीयों द्वारा लिखी *थेरी-गाथा* एक दिलचस्प साहित्यिक स्रोत है जो हमें उन विभिन्न महिलाओं की एक झलक प्रदान करता है जिन्होंने अरहन्त की पदवी या उसी प्रकार की अनुभूति की अवस्थाएं प्राप्त की थी। आम्बपाली द्वारा आयु और शरीर के क्षय पर विवेचना, नन्दा, विमला और शुभा आदि द्वारा शारीरिक या इन्द्रिय विषयक आनंदों को कम महत्व देना इसको इंगित करता है कि महिलाऐं बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में उपलब्धियाँ हासिल कर रही थी। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि एक बिल्कुल विपरीत तस्वीर *जातक* द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिसमें अक्सर महिलाओं को अशुभ के रूप में दर्शाया गया है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि महिलाओं को पत्नियों या प्रेमिकाओं के रूप में दिखाई जाने वाली भूमिकाओं में एक अमंगलकारी आभा दी गई थी। यद्यपि हमारे पास ऐसे उदाहरण भी हैं जिसमें वह माँ की भूमिका में भी समान रूप से विद्वेशपूर्ण हैं, लेकिन इस तरह के संदर्भ दुर्लभ हैं। एक ही कहानी में हमें महिलाओं पर मढ़ें विभिन्न स्वभावों का संकेत मिलता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि *जातक* कथाएं स्त्री और पुरुष के बीच के आवेश पूर्ण या स्नेह पूर्ण संबंधों के प्रति विशेष तौर पर पक्षपात पूर्ण हैं। उदाहरण के लिए *सुवन्नाह हंस जातक* कथा हमें एक सोने के पंख वाले पक्षी का विवरण देती है, जो पिछले जन्म की अपनी पत्नी से मिलने आता है ताकि निराश्रित स्थिति में उसकी मदद कर सके। इस कहानी में, लालच के कारण पत्नी अधम काम करती है और पक्षी को टुकड़ों में काट देती है जबकि बेटी ऐसा करने से मना करती है। हालाँकि यहाँ दोष लालच का है, लेकिन हमारे पास कई कहानियाँ है जिनमें व्याभिचार या परगमन को एक बुराई के रूप में विशेष रूप से महिलाओं से जोड़ा गया था। उदाहरण के लिए, कई कहानियों में हमारे पास एक ब्राह्मण की पत्नी की है जो व्याभिचार कर रही है और उसका पाप या तो पालतू जानवरों द्वारा बताया जा रहा है या स्वयं पति द्वारा खोजा जा रहा है। इसलिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि इन कहानियों को एक नयी संगठित सामाजिक व्यवस्था में और उसके द्वारा स्त्री और पुरुषों पर लादे गये तकाजे के संदर्भ में प्रासंगिक बनाया जाए। इस तरह के प्रासंगिक कारण और लैंगिक समझ के उपयोग से हमें पाठ्य-रचनाओं से परे ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिलेगी।

ग्रन्थों और पुरातात्विक अवशेषों दोनों का अध्ययन विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है और विरोधी व्याख्याएँ कम नहीं हैं। उदाहरण के लिए, एक तरफ़ सीता (रामायण से) और द्रौपदी (महाभारत से) को पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था से पीड़ित के रूप में देखा गया है : दूसरी ओर, उन्हें स्व-इच्छाधारी महिलाओं के रूप में भी दर्शाया गया है। पासे के खेल के बाद द्रौपदी स्वयं को एक बलशाली और मुखर महिला के रूप में प्रस्तुत करती है। यह उसकी वाकपटुता है। अपनी शालीनता पर हमले से उसका क्रोध, कृष्ण के सामने उसके कटु विलाप, युधिष्ठर के प्रति उसके सम्मान की रक्षा करने में असमर्थता के लिए उसके तीखे तेवर और इस प्रकार के अन्य उदाहरणों से पता चलता है कि वह एक आक्रमणशील महिला है। उनका यह व्यक्तित्व कहीं ओर उनके आदर्श पत्नी के रूप में निरूपण के मुकाबले अलग है। हालाँकि द्रौपदी को एक परिपूर्ण पत्नी के रूप में, जो बिना किसी शिकायत के सबसे कठोर परिक्षणों को स्वीकार कर लेती हो, कभी आदर्श स्त्री नहीं समझा गया है। यह सम्मान रामायण में सीता के लिए आरक्षित है। उसे भी द्रौपदी की तरह एक पीड़ित के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और वह अपने भाग्य पर चिन्ता व्यक्त करती है हालाँकि, उसकी आक्रमणता उसके स्वयं के अंदर की तरफ़ निर्देशित होती है। जिसका परिणाम पृथ्वी माता से उसके मिलन के रूप में होता है। इस प्रकार न केवल प्राचीन भारत के सामाजिक मानदंड, बल्कि आज भी सीता को एक आदर्श महिला के रूप में महिमामंडित किया जाता हैं, क्योंकि उसने अपने क्रोध और आक्रमणता को सामाजिक रूप से स्वीकार्य मानदंडों के माध्यम से, अपने दुख को अन्दर समेटकर और स्वपीड़न को अपने विरूद्ध इस्तेमाल कर, एक अनुष्ठानिक आत्महत्या के माध्यम से व्यक्त किया। एक महिला की कट्टर आक्रमणता को पितृ-सत्तात्मक समाज में सांस्कृतिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया था और इस तरह हम पाते हैं कि पितृ-सत्तात्मक मानदंडों ने तय किया कि महिला के व्यवहार के सन्दर्भ में क्या स्वीकार्य था और क्या नहीं।

क्या वैदिक महिलाओं द्वारा एक सीमित संख्या में स्तुतियाँ उनकी सामान्य स्थिति को प्रदर्शित करती है? क्या देवियाँ केवल चित्रण के लिए हैं जिसका महिलाओं के प्रति विचार और व्यवहार से कोई संबंध नहीं था? क्या केवल राजकुमारियों ने अपने जीवन साथी का चुनाव किया? क्या योद्धा महिलाएँ केवल अपवाद हैं? इस प्रकार के मर्मज्ञ प्रश्नों पर तत्परता से विचार करने की आवश्यकता है। जबकि महिला अध्ययन एक अच्छा विकास है, लेकिन ज्ञान की सीमाओं को विस्तृत करके मानवीय अस्तित्व के अन्य प्रकारों को भी सम्मिलित करने की ज़रूरत है। हमारे पास विभिन्न ग्रन्थों में लैंगिकता की तरलता के वर्तान्त हैं। अर्जुन द्वारा जीवन का एक वर्ष बृहन्नला और अम्बा का शिखंडी के रूप में पुनर्जन्म जैसे कुछ दिलचस्प उदाहरण हैं। शेरी खान तारकई के स्थल पर पाई जाने वाली कलाकृतियाँ में दृश्यमान रूप से अभयलिंगी लघुमूर्तियां शामिल हैं। स्त्रियोचित, पोरूषता, नपुसंकता और लैंगिकता की पहचान के अन्य रूपों की धारणाओं को समझने की आवश्यकता है। इससे हमें संयुग्मता, परिवार, समुदाय और यहाँ तक कि राज्य व्यवस्था और आध्यात्मिकता के विचारों को समझने में मदद मिलेगी।

इस इकाई में वर्णित स्रोत लगभग 200 बी. सी. ई. तक की अवधि के लिए प्रासंगिक है। यह न तो सम्पूर्ण सूची है और न ही सभी क्षेत्रों के लिए प्रासंगिक है। इनमें से कुछ ग्रन्थों में विभिन्न परतें हैं और कुछ सदियों के बाद भी प्रासंगिक है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि सभी स्रोतों का उपयोग लैंगिक इतिहास को समझने के लिए किया जा सकता है। हमने यह भी सीखा कि महिलाओं के इतिहास को समझना समग्र इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है।

19.5 लिंग-भेद के अध्ययनों का महत्व

प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति के बारे में व्यापक कथन या सामान्यीकरण समस्या मूलक बन गया है। महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए पाठ्य-सामग्री का बारीकी से अध्ययन महत्वपूर्ण है। इसमें विविध तरह के स्वर हैं और व्याख्या का एक एकल प्रतिमान सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें महिलाओं को पश्चिमी पूर्वाग्रह के अनुरूप पूर्णतः अधीनस्थ और स्वरहीन मानने की भूल से भी बचना चाहिए। सबसे अच्छी रणनीति खंड-खंड करके विश्लेषण करने की है। हमें यह समझना चाहिए कि हिन्दु धर्म, तन्त्र, महिला जैसी व्यापक श्रेणियां एक रूपी नहीं थी।

हमें उन स्वरों को मुखारित करने की ज़रूरत है जो स्वभाव के विरूद्ध थी और जो इसकी एक वैकल्पिक झलक देती हैं कि क्या अभ्यास किया गया था ना कि मानदंड क्या थे। प्रमुख प्रतिमान *मनुस्मृति* द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि महिलाओं को जीवन के सभी चरणों में कोई स्वतंत्रता नहीं थी, लेकिन हम अन्य ग्रन्थों में और यहाँ तक कि स्वयं *मनुस्मृति* में ऐसे उदाहरण पाते हैं, जो इस भावना के विपरीत हैं। हमें यह भी जाचँना होगा कि इन विभिन्न ग्रन्थों के लेखक एक अधिक महत्वपूर्ण विचारधारा के साथ काम कर रहे हैं। हालाँकि *स्मृति* साहित्य जैसे ऐसे ग्रन्थ हैं जो न केवल विभिन्न दृष्टिकोणों को पेश करते हैं परन्तु साथ ही साथ लेखक को अपनी नैतिकता को व्यक्त करने की अनुमति देते हैं। जैसे-जैसे समाज बदला, नये विचारों और मूल्यों को सम्मिलित किया गया और हम पाते हैं अनेक प्रश्न अनसुलझे रह गये। हमें इस तनाव की जाँच-पड़ताल की आवश्यकता है। हमें यह जानने की आवश्यकता है कि निर्देशात्मक मानदंड क्या थे और वास्तव में क्या अभ्यास किया जा रहा था। ब्राह्मणवादी ग्रन्थों ने सोच समझकर धर्म की विचारधारा को सुदृढ़ किया है और हमें उनके इन लक्ष्यों के बारे में अवगत होना चाहिए और सब-कुछ शाब्दिक अर्थ के रूप में नहीं लेना चाहिए (रूकमणी, 2009)।

इतिहास में लैंगिक अध्ययन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। मानव समाज के विकास में महिलाओं की भूमिका को समझने पर सूक्ष्मता से ध्यान देने के साथ इतिहास को देखने से न केवल इतिहास में महिलाओं को स्वयं के लिए एक जगह दुबारा बनाने में योगदान मिला है, बल्कि इससे हमें कई अन्य प्रक्रियाओं को एक नये रोशनी में समझने में मदद मिली है। इसके अलावा, इतिहास में पहले से नजरअंदाज़ किये गये स्वरों को खोजने के प्रयास और चिन्ता ने कई गहरे प्रश्नों और पद्धतिगत विकासों को जन्म दिया है। पहले की रचनाओं में निहित पूर्वाग्रहों को भी पहचान लिया गया है और वस्तुनिष्ट इतिहासलेखन का आदर्श अब नए सिरे से अपनाया जा रहा है।

बोध प्रश्न 2

1) प्रारंभिक भारत में महिलाओं की स्थिति के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) लैंगिक अध्ययनों का क्या महत्व है?

.....

.....

.....

.....

.....

19.6 सारांश

मानवीय सभ्यताओं को पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं द्वारा बनाया गया था, हालाँकि, इतिहास लेखन में एक बड़ा पुरुष पूर्वाग्रह है। महिलाओं को उनकी स्थिति के सवालों तक सीमित कर दिया गया था, जिनका घरेलू क्षेत्र में उनकी भूमिकाओं के संदर्भ में बड़े पैमाने पर मूल्यांकन किया गया था। शोध में स्त्री को पत्नी और विधवाओं के रूप में, व उनके व्यवहार, अनुष्ठानिक या धार्मिक संदर्भ में उनके स्थान को एक केन्द्रीय बिन्दु बना दिया गया है। इसने उन्हें मुख्यधारा के इतिहास में परिधि पर धकेल दिया। इस पर समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा सवाल उठाए गए और इससे इतिहास की लैंगिक समझ का विकास हुआ। महिलाओं के इतिहास पर ध्यान केन्द्रित करने से उस पद्धति को सुधारने में मदद मिलती है जो महिलाओं को एक अखंड, एकरूपी श्रेणी के रूप में देखती है। लैंगिक इतिहास को लिखने से अतीत की एक ऐसी छवि बनाने में मदद मिली है जो पुष्टिकर और सूक्ष्म भेद करती है।

19.7 शब्दावली

लिंग-भेद : मानवों की भूमिका को जैविक यौनतन्त्र के आधार पर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से परिभाषित होता है। यह शारीरिक यौन सम्बन्धी धारणा से अलग है। काम जैविक प्रजनन तन्त्र से संबंधित है। कामुकता से तात्पर्य किसी व्यक्ति की सहचर्या के लिए पंसद से है।

लैंगिक इतिहास : अलग-अलग समय में महिलाओं और पुरुषों के जीवन को आकार देने वाले विभिन्न ऐतिहासिक अध्ययन। यह अब कामुकता के अन्य रूपों और लैंगिक भूमिकाओं की समझ के रूप में विस्तार कर रहा है।

अन्तः प्रतिछेदन्ता (Intersectionality) : लिंग वर्ग और धार्मिक, सामाजिक पहचान चिन्हों (श्रेणीकरण) का पारस्परिक संबंध जो समूहों और व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करता है। यह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक या अनुष्ठानिक पदानुक्रम में व्यक्ति के लिए आधार या शोषण की एक परस्पर निर्भर प्रणाली बनाती है।

प्रक्षेपण (Interpolation) : प्रक्षेपण साहित्य और विशेष रूप से प्राचीन पांडुलिपियों के सन्दर्भ में कोई प्रविष्टि या ग्रन्थ का भाग जोड़ना है जो मूल लेखक/संकलनकर्त्ता द्वारा नहीं लिखा या संकलित किया गया था।

अर्थ-सम्बन्धी इतिहास (Semantic History) : समय के साथ शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। किसी शब्द के अर्थ और निहितार्थ और उसके उपयोग के इतिहास को अर्थ-सम्बन्धी इतिहास कहा जाता है।

19.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको उत्तर में विभिन्न साहित्यिक स्रोतों और पुरातात्विक स्रोतों को शामिल करना चाहिए, जिनका उपयोग प्रारंभिक भारत में लिंग भेद को समझने के लिए किया जा सकता है। विवरण के लिए भाग 19.2 देखें।

2) कृपया भाग 19.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 19.4 देखें।

2) भाग 19.5 देखें।

19.9 संदर्भ ग्रन्थ

आल्तेकर, ए. एस. (1959). *द पोज़िशन ऑफ विमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास.

चक्रवर्ती, यू. (2005). *जेन्डरिंग कॉस्ट : थरू ए फेमिनिस्ट लैंस.* पॉपुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटिड.

चक्रवर्ती, उमा (1988). बियोंड द आल्तेकरियन पैराडाइम : टूवर्डस ए न्यू अंडरस्टेडिंग ऑफ जेंडर रिलेशन्स इन अरली इंडियन हिस्ट्री. *सोशल साइंटिस्ट,* वाल्यूम 16 न. 8.

धनखड़, उपासना (2015). बियोंड द आइडियल रोल्स एन्ड इग्जाल्टेड़ रिचवेल्स : इकोनोमिक रेगुलेशनस फॉर विमन इन मनुस्मृति. इन रजनी जोशी चौधरी (एडिटिड) *इमेजिज ऑफ विमेन एन्ड विमेन इम्पॉवरमेन्ट इन इंडियन लिटरेचर.* एस. एल. बी. एस. आर. एस. विद्यापीठ.

होमेर, आई. वी. (2005). *विमेन अंडर प्रिमिटिव बुधिज्म.* कास्मोस पब्लिकेशन.

रॉय, कुमकुम (1994). डिफांइनिंग द हाउस होल्ड : सम आस्पेक्टस ऑफ परीस्क्रप्शन एन्ड प्रेक्टिस इन अरली इंडिया. *सोशल साइटिस्ट,* वाल्यूम 22, नम्बर 1/2.

रूकमणी, टी. एस. (2009). *सीकींग जेन्ड़र वाएस इन संस्कृत टैक्स्ट्स्,* एनाल्स ऑफ द भंडारकर ऑरियन्टल रिसर्च इन्सटीटयूट, वाल्यूम 90।